सृष्टि उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना

विष्णुकान्त वर्मा

दो भागों में प्रकाशित वैदिक विज्ञान की पूर्वपीठिका पर प्रस्तुत '**सृष्टि-उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना**' नामक ग्रन्थ कतिपय नवतम वैज्ञानिक एवं वैदिक अनुसन्धानों को समाहित करते हुये नवीन कलेवर के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। ग्रन्थ में प्रकाश में लाया गया वैदिक विज्ञान लेखक की कल्पना नहीं है अपितु वेद में निहित सृष्टि-विज्ञान वैदिक द्रष्टाओं का अक्षय ज्ञान है जो उन्होंने आज से हजारों वर्षों (8 से 10 हजार) पूर्व अपनी कालजयी वाणी में साक्षात्कृत दर्शन के आधार पर मन्त्रों की अद्भुत भाषा में विन्यस्त किया और संजोया था। वह विज्ञान जैसा ऋषियों के काल में सत्य दर्शन था वैसा आज भी है और आगे भी रहेगा।

ज्ञान दिव्य प्रेरणा के फलस्वरूप ान है। क्योंकि सुदूर भूतकाल का अभाव सिद्ध है तब जिसके बिना इतनी निक प्रयोग होना

सृष्टि-उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना

(प्रथम भाग)

डॉ० विष्णुकान्त वर्मा

प्रतिभा प्रकाशन

दिल्ली भारत

प्रथम संस्करण : 2008

ISBN : 81-7702-154-0 (सेट)
81-7702-155-9 (प्रथम भाग)

मूल्य : 495.00

प्रकाशक :
डॉ० राधेश्याम शुक्ल
एम.ए., पी-एच.डी.
प्रतिभा प्रकाशन
(प्राच्यविद्या-प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता)
29/5, शक्तिनगर
दिल्ली-110007
Ph. : 23848485, 9350884227
e-mail : info@pratibhabooks.com
Web : www.pratibhabooks.com

मुद्रक : रुचिका ऑफसेट, दिल्ली

समर्पण

पूजनीया माता
(स्व०) श्रीमती शकुन्तला देवी वर्मा
की
पुण्य स्मृति में
सादर समर्पित

प्राक्कथन

लगभग बीस वर्ष पूर्व वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य नामक ग्रन्थ हमने प्रकाशित किया था। तब से अब तक विज्ञान की परिकल्पनाओं और अन्वेषणों में आशातीत प्रगति हुई है पर इन खोजों से इन दो भागों में प्रकाशित वैदिक विज्ञान अपने स्थल पर अचल और अप्रभावित है।

उन्हीं दो भागों में प्रकाशित वैदिक विज्ञान की पूर्वपीठिका पर प्रस्तुत 'सृष्टि-उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना' नामक ग्रन्थ कतिपय नवीन वैज्ञानिक एवं वैदिक अनुसन्धानों को समाहित करते हुये नवीन कलेवर के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। ग्रन्थ में प्रकाश में लाया गया वैदिक विज्ञान मेरी कल्पना नहीं है। वेद में निहित सृष्टि-विज्ञान वैदिक द्रष्टाओं का अक्षय ज्ञान है जो उन्होंने आज से हजारों वर्षों (8 से 10 हजार) पूर्व अपनी कालजयी वाणी में साक्षात्कृत दर्शन के आधार पर मन्त्रों की अद्‌भुत भाषा में विन्यस्त किया और संजोया था वह ज्ञान-विज्ञान जैसा ऋषियों के काल में सत्य दर्शन का प्रवक्ता था वैसा आज भी है और आगे भी रहेगा।

यह सृष्टि-विज्ञान दिव्य प्रेरणा के फलस्वरूप ऋषियों को प्राप्त हुआ ज्ञान है। क्योंकि सुदूर भूतकाल में प्रयोग सिद्ध ज्ञान के साधन का अभाव सिद्ध है तब दूसरा स्रोत दिव्य प्रेरणा ही है जिसके बिना इतनी सटीक विज्ञान की जानकारी जो आधुनिक प्रयोग सिद्ध मन्तव्यों को निहित कर रही है प्राप्त होना असम्भव है। अतः इस ज्ञान में परिमार्जन परिवर्तन का प्रश्न नहीं उठता।

सन् 1985 में दिक् काल (space time)संबंधी जो वैज्ञानिक जगत् की मान्यताएँ थीं उनके विपरीत मैंने प्रथम भाग के अध्याय 16 में वैदिक मन्तव्य के आधार पर व्याख्या प्रस्तुत की थी। वैज्ञानिक जगत् में 20 वर्ष के वैचारिक आत्म निरीक्षण ऑक्सफोर्ड की न्यूटन चेयर पर आसीन जगत् के मूर्धन्य वैज्ञानिक सर स्टीफेन्स हाकिन्स द्वारा अपने (टाईम कोलेट्स) समय ध्वस्त के मन्तव्य का वापिस

लेना। अध्याय 16 में व्याख्यात् दिक् काल संबंधी वैदिक मन्तव्य अक्षुण्ण हैं और वैज्ञानिक घूमकर वैदिक परिकल्पना पर आ रहे हैं। विशेष ग्रन्थान्त विज्ञान वेद मन्तव्य पुनरावलोकन प्रकरण में देखें।

इस प्रकार वैदिक ज्ञान ईश्वरीय मार्गदर्शक है, एक (लाईट हाऊस) प्रकाश स्तम्भ है, एक मानक है, एक आदर्श है।

विष्णुकान्त वर्मा

भूमिका

प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तर्गत वेद में विद्यमान रासायनिक विद्या व नाभिकीय विज्ञान को एक क्रमबद्ध व्यवस्थित विषय के रूप में 36 अध्यायों में प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरा यह आग्रह नहीं है कि वेद में यह विद्या इतनी ही है किन्तु यह अवश्य है कि मन्त्रों में निहित विज्ञान को विज्ञान का ज्ञाता ही समझ सकता है जैसे भौतिकी शास्त्र या गणित शास्त्र की पुस्तक को साहित्यकार नहीं समझ सकता।

संस्कृत क्या, मैं हिन्दी, अंग्रेजी किसी भाषा में पारंगत नहीं हूँ, सम्पूर्ण सेवाकाल गणित शास्त्र पढ़ने-पढ़ाने से संबंधित रहा। हाँ, दर्शन व उपनिषद् साहित्य से लगाव रहा तथा गणित शास्त्र में शोधकार्य करने का प्रर्याप्त अनुभव रहा।

दीर्घ अवधि तक वैज्ञानिक अनुशासन में रहने के कारण तर्क, परीक्षण, प्रमाण के आधार पर वस्तुस्थिति को स्वीकार करना एक स्वभाव-सा हो गया है। वेद के अनुसार भौतिक जगत् का उद्भव शनैःशनैः अदिति नाम्नी मूल आद्या शक्ति रूप उपादान कारण से चेतन अधिष्ठाता ईश्वर की योजना के अनुरूप होता है। अव्यक्त मूल कारण से जगत् रूप में परिणति की इस लम्बी प्रक्रिया में प्रकृति अनेक चरणों में अनेक अवस्थाओं में परिणत होती हुई निर्गमन करती है। वेद ने अपनी शैली में उन चरणों, उन अवस्थाओं को पारिभाषित शब्दावली (technical words) में व्यक्त किया है। इन शब्दों को लेखक ने प्रतीकात्मक शब्द (symbolic terms) कहा है। वैदिक परिकल्पना द्वारा किसी प्रतीक में कौन-सी विशिष्ट भौतिक स्थिति या अवस्था इंगित की गयी है विभिन्न अध्यायों के अन्तर्गत इसके प्रत्येक पहलू का अध्ययन इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। इसमें वेद के आन्तरिक साक्षीभूत व ब्राह्मणादि ग्रन्थों के प्रमाणों के आधार पर प्रतीकों से निर्दिष्ट भौतिक पक्ष, अवस्था के स्वरूप का अनावरण किया गया है। तदन्तर वैज्ञानिक पद्धति से ही विषय का विस्तार किया गया है अर्थात् एक अध्याय में प्रस्थापित तथ्यों का आगामी अध्यायों की चर्चा में व ऋचाओं के भाष्य में मुक्त प्रयोग किया गया है। इस प्रकार विज्ञान की

तरह विषय का वैसा ही क्रमागत विकास हुआ है जैसा कि क्रमागत विकास प्रकृति के सृष्टि उत्पत्ति क्रम में मूल सत्ता में होता है।

वेद में विज्ञान प्रतिरोपित करना लेखक का लक्ष्य नहीं है, ऋचाओं की सत्य विषय वस्तु को ही प्रकाश में लाना उद्देश्य है। एक-दो मन्त्रों को तोड़-मरोड़ कर विज्ञान का कोई तथ्य निकाला जा सके यह तो संभव है पर सैकड़ों ऋचाओं से विज्ञान के विषय का व्यवस्थित प्रतिपादन एक असम्भव कार्य है। इस दिशा में प्रो. मैक्समूलर की चेतावनी उल्लेखनीय है -

> In all such matters, however, we must be careful not to go beyond the evidence before us, and abstain as much as possible from attempting to systematise and generalise what comes to us in an unsystematised may often chaotic form. (Six systems of Indian Philosophy, p. 42)

प्रो. साहब का यह अभिमत है कि वेद मन्त्रों में व्यक्त विचारों को व्यवस्थित क्रम में प्रस्तुत करना असम्भव है।

वर्तमान ग्रन्थ में वैदिक प्रकृति (cosmology) के नियमों के विषय में वैदिक मत प्रस्तुत किया गया है। लगभग 215 ऋचाओं की व्याख्या के माध्यम से वैदिक रासायनिक विज्ञान का एक व्यवस्थित प्रबंध आपके समक्ष प्रस्तुत है। अदिति, आप: आदि प्रतीकों में निहित भौतिक पक्ष को प्रकाश में लाया गया है। प्रतीकों के उन अर्थों को स्वीकार कर अन्य ऋचाओं में जो उन अर्थों के प्रयोग किये गये हैं (जिसकी एक सूची ग्रन्थ के अन्त में दी गयी है) उससे ऋचाओं के सारगर्भित भाष्य उभरकर आये हैं तथा सामान्यत: ऋचाओं के व विशेषकर सूक्त के विषय में न केवल तारतम्य (continuity) बना रहता है वरन् ऋचाओं के विचारों में परस्पर तालमेल, एक व्यवस्था, एक क्रम, एक सिलसिला दृष्टिगोचर होता है। यदि संक्षेप लक्ष्य न होता तो अनेक ऋचाओं को इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता था। क्योंकि प्रो. मैक्समूलर के अनुसार मंत्रों में व्यवस्था असम्भव है। अत: ग्रन्थोपलब्ध व्यवस्था कृत्रिम नहीं है स्वाभाविक है जो ऋचाओं की विषयवस्तु के प्रकाश में आने से स्वयमेव उभरकर आयी है। फलत: प्रो. मेक्समूलर साहब का मत अन्तिम शब्द (last word) नहीं है। वैज्ञानिक अनुशासन में कभी शोधवृत्ति पर विराम नहीं लगाया जाता। इसका तात्पर्य यह है कि वेद की विचारधारा अव्यवस्थित नहीं है, दुर्बोध अवश्य है तथा मन्त्रों में निहित सत्य विषयवस्तु के प्रकाश में न आने तक व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती।

अध्याय की विषयवस्तु के गौण हो जाने की आशंका से सूक्तों का भाष्य नहीं किया गया वरन् प्रतिपाद्य विषय संबंधी ऋचा को ही लिया गया। जहाँ कहीं आवश्यक था सूक्त की अधिकांश ऋचाओं पर चर्चा की गयी है। जैसे–**अपां नपात् सूक्त** (अ. 6), **अश्व सूक्त** (अ. 7), **पुरूरवा सूक्त** (अ. 12), **सोमपूषण सूक्त** (अ. 14)।

यदि वैदिक विज्ञान को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में न देखकर स्वतंत्र रूप में देखा जाय, तो वैदिक विज्ञान की क्या रूपरेखा होगी? इसे ग्रन्थ के अन्त में दिया गया है। निस्संदेह वैदिक विज्ञान सृष्टि उत्पत्ति की एक बाह्य रेखा (outline) प्रस्तुत करती है। किन्तु यह अपने आप में विकसित विज्ञान न होकर विज्ञान की निर्देशिका ही है।

उदाहरण के लिए वैदिक विज्ञान में कहा गया है (क्र. 198) कि समान मात्रा में विपरीत विद्युत् वहन करने वाले मित्र-वरुण के कण परस्पर संयोग करके (क्र. 199) एक उदासीन कण बनाते हैं जो आगामी यौगिक रचना का महत्त्वपूर्ण घटक है। यह सूचना इलेक्ट्रान, प्रोट्रान न्यूट्रान की खोज के लिए महत्त्वपूर्ण निर्देश है किन्तु यह अपने आप में इलेक्ट्रान, न्यूट्रान आदि का विज्ञान नहीं है इसके लिए प्रायोगिक पृष्ठभूमि तैयार करना आवश्यक है। इसी प्रकार अन्य विज्ञान संबंधी महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शक संकेत (guide lines) यत्र-तत्र पाये जाते हैं इनका समुचित लाभ प्राचीन विद्वानों ने कहाँ तक उठाया यह तथ्य अंधकार के गर्भ में हैं। क्योंकि अति प्राचीनकाल के इतिहास की स्पष्ट रूपरेखा उपलब्ध नहीं है जो कुछ भी है केवल अनुमान पर आश्रित है। जब वैदिक विज्ञान को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है तो विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों व सृष्टि उत्पत्ति के चरणों का परिकल्पित ज्ञान वेद की रहस्यमयी वाणी में पाकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। ग्रंथ में आद्योपांत वैदिक विज्ञान और आधुनिक विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

यह कहा जा सकता है कि पारम्परिक कथा के अनुसार मित्र-वरुण से वसिष्ठ ऋषि की उत्पत्ति की ऐतिहासिक कथा क्यों न मानी जाय? तो यह ध्यान रखना पड़ेगा कि यह तथ्य कि वसिष्ठ दो पिता से जन्मा था किसी भी प्रकार प्रजनन विद्या से समझ के परे है, तो इस कल्पित इतिहास और '**विद्युतः ज्योतिः परि सं जिहानं**' तथा '**मध्यात् मानः उत् इयाय**' इन पदों में निहित विज्ञान में कौन असत्य का और सत्य का प्रतिपादन कर रहा है यह निर्णय पाठकों को करना है।

यह प्रश्न स्वाभाविक है कि वेद के ऋषियों को विज्ञान की जानकारी का स्रोत

क्या है? तो इसका उत्तर भी इस परम्परा में प्राप्त होता है कि वेद के ऋषि ईश्वरीय प्रेरणा के वशीभूत थे। उन्होंने सृष्ट्युत्पत्ति के जिन मौलिक सिद्धांतों का साक्षात् किया उन्हें सूत्र के रूप में सांकेतिक वाणी में रख दिया। ऋचोक्त ज्ञान सूर्य, पृथ्वी की प्राकृतिक घटनाओं तक सीमित है या इनमें ब्रह्माण्ड के उद्भव संबंधी गहन वैज्ञानिक सिद्धांत निहित हैं, इसकी परीक्षा करने के लिए दो ऋचाओं की न्याय संगत जाँच उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही है :

युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः।।
अमीमेद् वत्सो अनुगामपश्यद् विश्वरूपं त्रिषु योजनीषु।।

इसका एक भाष्य इस प्रकार है - सूर्य की धारणा शक्ति पर पृथ्वी माता आश्रित है। तीनों लोकों में अनेक रूप वाली गाय को जब देखा तब उसका बछड़ा चिल्लाने लगा तब अनेक शक्तियों से परिपूर्ण पृथ्वी के अन्दर गर्भ स्थापित हुआ। सूर्य की किरणें गायें हैं उसके द्वारा उत्पन्न हुए बादल बछड़े हैं जब बादल इन किरणों से संयुक्त होता है तब वह गरजता है और पानी बरसता है उस पानी से पृथ्वी अन्न को प्रसूत करने में समर्थ होती है (सातवलेकर)। दक्षिणायाः का अर्थ सूर्य लेना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। माता शब्द से पृथ्वी लेने में कोई प्रमाण नहीं है। वत्सः को बादल मानना भी काल्पनिक है शेष भाष्य का ऋचा से कोई संबंध दृष्टिगोचर नहीं होता।

विषय-प्रवेश में जो सांकेतिक शब्द की चर्चा है इस ऋचा में वह पद '**विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु अपश्यत्**' है। योजनम् का अर्थ (लोक नहीं है) जोड़ना, जोतना, व्यवस्था है, कोश। इस सांकेतिक पद का अर्थ है जगत् को तीन योजनाओं में देखा जाता है। ये तीन योजनाएँ हैं–उत्पत्ति, स्थिति और लय। तदनुसार भाष्य में इस पद के होने की सार्थकता का प्रतिपादन होना चाहिए। माता पद अधिकतर मूल मातृशक्ति के लिए आता है (अ. 3 में दिये हुए ऋचोक्त प्रमाण देखिए)। अतः भाष्य इस प्रकार होगा - (धुरि = उच्चतम स्थान, (कोश) = उच्चतम स्थान पर स्थित, (दक्षिणायाः) = दान देने की इच्छा वाली अथवा (धुरि =) अक्ष की दक्षिण दिशा में स्थित माता मूल मातृ शक्ति युक्ता, आसीत् = जुड़ी हुई स्थित है उसके (अन्तः गर्भः) गर्भ के अन्तस् का अर्थात् सूक्ष्म भ्रूण भाग वृजनीषु बार-बार गमन करने वाले पर अथवा गमन करने वाले तत्त्वों पर अतिष्ठत् ठहरा है।

वत्सः गाम् अनु अमीमेत्, बछड़ा गाय की नकल कर रंभाता है उसी प्रकार यह विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु जगत् उद्भव, स्थिति, लय इन तीन योजनाओं में देखा जाता है।

बछड़ा जब भूखा होता है तब गाय रंभाती है और बछड़ा रंभाता हुआ उसके पास जाकर दूध पीकर शक्ति पाकर वापस अपने स्थान पर आ जाता है। इसी समता से यह जगत् जब शक्ति क्षीण हो जाता है तो यह अपनी माता मूल शक्ति के पास जाता है, यह लय की स्थिति है। वहाँ से नवीन शक्ति ग्रहण कर पुनः जगत् रूप में उद्भव पाता है। ऋचा में ब्रह्मण्ड की उत्पत्ति, स्थिति, लय के अनवरत क्रम को माता रूप मूल उपादान कारण प्रकृति की तीन कलाएँ कहा गया है; उसमें यह सार्वकालिक दर्शन है सूर्य पृथ्वी का विषय मूल से हटकर काल्पनिक और प्रतिरोपित है।

इस ऋचा में (विज्ञान समर्थित) यह सत्य प्रस्थापित किया गया है कि मूल उपादान कारण का एक अंशमात्र ही जगत् (= महाभूत) रूप में विकसित होता है, शेष भाग मौलिक शक्ति के रूप में ही रहता है। यही माता के '**युक्ता आसीत्**' होने का भाव है।

मूल मातृशक्ति से पृथक् हो जगत् रूप में बार-बार उद्भव होने वाले भाग को वृजनीषु कहा गया है।

विज्ञान-संबंधी गूढ़ रहस्य का अनावरण करने वाली एक अन्य ऋचा पर विचार किया जाता है - ?

युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अधुक्षत्।

बलवान् इन्द्र ने वज्र ठीक तरह से पकड़ लिया और प्रकाश-द्वारा अंधकार से गौवें निकाल कर प्राप्त करके उनका दोहन किया।

यह भाष्य मूल आशय के प्रतिकूल है। वास्तव में यह घटना आदि काल की है। जब सर्वत्र अंधकार व्याप्त था। (जैसा कि नासदीय सूक्त में कहा गया है - **तम आसीत् तमसा गूढम् अग्रे**)। तब (**वृषभः इन्द्रः युजं वज्रं चक्रे**) वर्षणशील इन्द्र ने अपना सहयोगी वज्र चलाया और (**ज्योतिषा**) प्रकाश के द्वारा (**तमसः**) अंधकार से (**गाः**) लोकों को (**निर्**) निकालकर, प्रकट करके (**अधुक्षत्**) उनका (प्राणी के कल्याणार्थ) दोहन किया।

मंत्रों में गम्भीर दर्शन एवं विज्ञान है ऐसा मेरा निश्चित मत है। किन्तु ऋचोक्त यथार्थ विषयवस्तु के निर्धारण के अभाव में लक्ष्यच्युत हो जाना सहज है। प्रकृति, शक्ति, ऊर्जा समग्रता के कारण एकवचन और विविधता के कारण बहुवचन है तदनुसार ही जानें।

मेरे जैसे व्यक्ति के लिए वेद पर लेखनी उठाना अत्यंत दुस्साहसपूर्ण कार्य है;

जैसे-भूमि परो गहि चहत आकाशा। वेद-ज्ञान के अति गहन, दुष्प्रवेश्य वन में पग दो पग भी प्रवेश हेतु यदि बुझते दीपक के एक कौंध की तरह समग्र ग्रन्थ एक झलक भी दिखा सके तो लेखक का श्रम सफल होगा।

अन्त में पूज्य माता, पूज्य पिता, पूज्य गुरुजन एवं पूज्य विद्वद्वर्ग के चरण कमलों की वन्दना कर ईश-प्रार्थना से ग्रन्थारम्भ किया जाता है।

यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँ ह देवमात्मबुद्धिर्प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।

विष्णुकान्त वर्मा

बिलासपुर, छत्तीसगढ़

संकेत सूची

संकेत	पूर्ण रूप	विवरण
ऋ.	ऋग्वेद	मंडल/सूक्त/ऋचा
यजु.	यजुर्वेद	अध्याय/सूक्त/मन्त्र
अथर्व.	अथर्ववेद	काण्ड/सूक्त/मन्त्र
ब्रा.	ब्राह्मण ग्रन्थ	
ऐ.ब्रा.	ऐतरेय ब्रा.	पूर्वभाग पञ्चिका/अध्याय/खण्ड
गो.ब्रा.	गोपथ ब्रा.	भाग/प्रपाठक/कण्डिका
शत.ब्रा.	शतपथ ब्रा.	काण्ड/अध्याय/ब्राह्मण/कण्डिका
उप.	उपनिषद्	
मु.उप.	मुण्डक उप.	मुण्डक/खण्ड/श्लोक
कठ. उप.	कठोपनिषद्	अध्याय/वल्ली/श्लोक
छान्दो.	छान्दोग्य उप.	अध्याय/खण्ड/श्लोक
तै.	तैत्तिरीयोपनिषद्	वल्ली/अनुवाक/श्लोक
बृह.	बृहदारण्यक	अध्याय/ब्राह्मण/श्लोक
निरू.	निरुक्त	अध्याय/पाद
निघ.	निघण्टु	अध्याय/पाद
कोश	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे
हल.	हलायुध कोश	कोश
वेदा.	वेदान्त दर्शन	
वै.व्या.	वैदिक व्याकरण	

जहाँ कोई संकेत नहीं है वहाँ वै.व्या. निर्दिष्ट है।
व्याकरण के संकेत वैदिक व्याकरणानुसार हैं।

विषय अनुक्रमणिका

द्वितीय भाग

144409

अध्याय 1

विषय प्रवेश

आदि काल से ही मानव की जिज्ञासा उसे सृष्टि के रहस्यों को समझने के लिए प्रेरित करती रही है। इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए प्राचीन धर्मों एक सर्वशक्तिमान् देहधारी ईश्वर की कल्पना की जिसके संकल्प मात्र से ही जगत् की उत्पत्ति हो गई। ईश्वर ने विचारा कि होजा और यह जगत् अस्तित्व में आ गया। कुछ ने यह विचार प्रस्तुत किया कि जगत् सदैव से ऐसा ही है। इस मत के प्रवक्ता बौद्ध थे।

सृष्टि विज्ञान आधुनिक विज्ञान के व्यवस्थित अन्वेषण का एक विषय है। विज्ञान को इस दिशा में आशातीत सफलता मिली है। विज्ञान की उपलब्धियों के आधार पर सृष्टि उत्पत्ति की घटनाओं को क्रमिक विकास के एक व्यवस्थित क्रम में रखने की दिशा में यत्न जारी है। विज्ञान के अन्वेषण वास्तविक वस्तुस्थिति एवं प्रयोग सिद्ध ज्ञान पर आधारित हैं।

एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि क्या विज्ञान के अतिरिक्त सृष्टि विकास के विवेकपूर्ण विवरण का कोई अन्य स्रोत नहीं है और यदि है तो वह कौन सा है, उसका विवरण कैसा है ?

वेद विज्ञान का ग्रन्थ नहीं है। वर्तमान लेखक ने वेद में यत्र-तत्र आये सृष्टि विज्ञान एवं नाभिकीय (nuclear) विज्ञान संबंधी विचारों को एक व्यवस्थित रूप में दो भागों में प्रस्तुत किया है। अपने शोध के आधार पर यह लेखक विश्वासपूर्ण शब्दों में यह कहने में समर्थ है कि विज्ञान के अतिरिक्त वेद ही वह स्रोत है, जिसमें मूल भौतिक सत्ता से सृष्टि विकास कैसे हुआ? यह पाया जाता है। लेखक ने अपना क्षेत्र ऋग्वेद तक ही सीमित रखा है। सृष्टि विकास के रहस्यों की क्रमबद्ध रूपरेखा ऋग्वेद के मन्त्रों में सुरक्षित है। यह ताज्जुब का विषय है कि ऋग्वेद का विवरण आधुनिक प्रकृति के नियम (cosmology) से आश्चर्यजनक मेल रखता है। सुदूर भूतकाल में पदार्थनिष्ठ अन्वेषण के लिए किसी प्रकार के साधन होने का अनुमान नहीं है। अत: यह मानना पड़ता है कि ऋषियों के ज्ञान का स्रोत अन्वेषण नहीं था, वरन् वह स्रोत दिव्य (ईश्वरीय) प्रेरणा ही था।

1. वेद ज्ञान की धरोहर है

ऋग्वेद मानव पुस्तकालय की सबसे प्राचीन कृति है। भारतीय जनमानस ने वेदों को सदैव ईश्वरीय प्रेरणा के परिणामस्वरूप प्रस्फुटित हुआ ज्ञान माना है, उनकी वेदों के प्रति अनन्य श्रद्धा है। निरूक्त के प्रसिद्ध रचयिता आचार्य यास्क ने कहा है - वेद दिव्य प्रेरणा के परिणामस्वरूप अन्तर्ज्ञान से युक्त ऋषियों को प्राप्त हुआ अपौरुषेय ज्ञान है। गीता में महाराज कृष्ण ने कहा है कि 'ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्', वेद अक्षर ब्रह्म से उद्भूत हुए। वेदों पर प्राच्य, पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनेक भाष्य एवं लेख लिखे जा चुके हैं, फिर भी विद्वानों की यह एकमत अवधारणा है कि वेदों का वास्तविक भाव आज भी अज्ञात है। यह सर्वमान्य निष्कर्ष है कि "यह बात अब समझ में आयी है कि जन्मजात दुर्लभ प्रतिभा के धनी अंधकार में क्यों भटकते रहे तथा, मन्त्रों की साधारण रूपरेखा भी जो उन्हें स्वयं संतुष्ट कर सके पाने में असमर्थ रहे।"[1] इसका यह कारण है कि वेदों की भाषा सांकेतिक, प्रतीकात्मक एवं परोक्ष है तथा अलंकारों विशेषकर रूपकों से परिपूर्ण है। मन्त्रों की बाह्य सतही शब्द रचना की पृष्ठभूमि में अलौकिक ज्ञान अपिहित है। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के सर्वाधिक निकट हैं किन्तु इन ग्रन्थों ने भी वेद की रूपक शैली को अपनाया है तथा वेद की रूपक भाषा के तारतम्य का विस्तार किया है, पुराणों ने कथाओं के माध्यम से इन रूपकों को बृहदाकार किया है। इस रूपक भाषा के आवरण में जो रहस्य निहित है वह मानव जिज्ञासा का सर्वोच्च प्राप्तव्य लक्ष्य है। इस दिशा में सफलता की ओर उन्मुख होने के लिए सर्वप्रथम पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के परिणामस्वरूप मानस पटल पर दृढ़ बैठी हुई अवधारणाओं का परित्याग अध्ययनारम्भ के पूर्व ही आवश्यक है। वेद को अविकसित मानव की विचारधारा की धरोहर मात्र मानकर जो अध्ययनरत होता है, उसकी दृष्टि बाह्य कलेवर तक ही सीमित रह जाती है, वह शब्द विन्यास एवं रूपक कौशल का विभेदन करने में सक्षम न हो सकने के कारण परम निगूढ़ ज्ञान जो अक्षय निधि है, से वंचित रह जाती है।

2. ऋग्वेद दर्शन एवं विज्ञान का ग्रन्थ है

ऋग्वेद में दर्शन एवं विज्ञान का अभूतपूर्व समन्वय है। ऋग्वेद विज्ञान का ग्रन्थ नहीं है किन्तु उसमें सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय की रूपरेखा संबंधी रहस्यों को प्रकाश में लाने के लिए जितने विज्ञान को आवश्यकता है, उतना निहित किया

1. अखिल भारतीवर्षीय प्राच्य विद्या 31 वें सम्मेलन जयपुर में पं. गौरीनाथ शास्त्री जी के अध्यक्षीय भाषण पृ. 9 से उद्धत।

गया है। यह सृष्टि कैसे आयी, क्यों आयी, इसका द्राव्यिक कारण क्या है, इसके पीछे, कौन-कौन सी शाश्वत शक्तियाँ कार्यरत हैं, आदि प्रश्नों से उत्पन्न विषयों पर वैदिक ऋषियों का दृष्टिकोण वेद मन्त्रों में सुरक्षित है। इस प्रकार सृष्टि उत्पत्ति विषय पर वैदिक ऋषियों की एक पूर्ण परिकल्पना (हाइपोथेसिस) है, एक सम्पूर्ण दर्शन है। इस दर्शन के निर्वाह के परिपेक्ष्य में जितना विज्ञान निहित हो जाता है, उतना ही वहन करना द्रष्टाओं का लक्ष्य है। यह अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि ऋग्वेद में सुरक्षित सृष्टि उत्पत्ति, पदार्थ की अवस्थाओं आदि संबंधी अनेक विवरण आधुनिक विज्ञान द्वारा निर्धारित तथ्यों से सदृश्यता रखता है। इनका प्रमुख भेद यही है कि विज्ञान अनीश्वरवादी है, किन्तु ऋग्वेद सर्वव्यापक निराकार चेतन ईश्वर की सत्ता प्रतिपादित करता है। ऋग्वेद मण्डल 1 सूक्त 164 के 39 वें मन्त्र में कहा गया है - (क्रमांक 1)

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

ऋचाओं के प्रतिपाद्य जिस अविनाशी परम आकाशवत् व्यापक में समस्त देव पूर्ण रूप से स्थित हैं, जो इस परम तत्त्व को नहीं जानता वह ऋचा से क्या करेगा ? जो उसे जानते हैं वे ही इन ऋचाओं में सम् आसते सम्यक् स्थान पाते हैं।

ऋचाओं (ऋग्वेद के मन्त्र) में वर्णित परम तत्त्व की सम्यक् अवधारणा के बिना ऋचाओं का रहस्यमयी क्षेत्र दुष्प्रवेश्य है। ऋचाएँ रहस्यमयी हैं। ऋचाओं का विषय परम तत्त्व है इस बात को वेद मन्त्र बार-बार कह रहे हैं - (क्रमांक 2)

ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुहेषु व्रतेषु।

एषाम् जिनको या जो परेषु परम उत्कृष्ट, परातत्त्व संबंधी गुहेषु गूढ़, रहस्यमयी व्रतेषु सिद्धांतों में (अवमा = सबसे छोटा, कोश पृ0 110) अति सूक्ष्म सदांसि स्थल ददृश्रे दिखाई दिये हैं, जिन्होंने सूक्ष्म दर्शन किया है - वे ही प्रवचन कर सकते हैं।

मन्त्रों में परा (आत्म) तत्त्व संबंधी अति गूढ़ सूक्ष्म विवेचन है। अस्तु, रूपक भाषा रूपी देह, कलेवर के अन्तस् में परम तत्त्व रूपी आत्मा की खोज आवश्यक है।

क्या यह विडम्बना ही नहीं है कि विज्ञान के इस युग में भी बड़े-बड़े उद्भट विद्वानों को वेद मन्त्रों की व्याख्या करने में कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। यह तथ्य अपने आप में इस बात की कसौटी है कि वेद की भाषा-वैचित्र्य अपने अन्तस् में रहस्यों को छिपाये है। वेद ऋषियों के अन्तर्मन की उच्चस्थिति से उद्भूत हुए ज्ञान की धरोहर हैं।

3. ऋग्वेद में प्रतीकवाद

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य जो वेद की शैली से संबंध रखता है, वह उसका प्रतीकवाद है। विज्ञान की तरह ही वेद में प्रतीकों (सिम्बल्स्) का अनवरत प्रयोग है। उदाहरण के लिए अदितिः शब्द का साधारण अर्थ अखंड है, किन्तु अदितिः शब्द का प्रयोग प्रतीक के रूप में समग्र मूल तत्त्व के लिए हुआ है। इस प्रकार अदितिः शब्द का साधारण प्रयोग अखंड के अर्थ में एवं विशिष्ट प्रयोग मूल आद्या शक्ति के लिए हुआ है। अस्तु, यह संदर्भानुसार निर्धारित करना आवश्यक है कि शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में हुआ है अथवा प्रतीकात्मक अर्थ में। इस प्रकार ऋग्वेद में अनेक शब्दों का प्रयोग प्रतीकों के रूप में हुआ है। ऋग्वेद के प्रतीकवाद की ओर सर्वप्रथम लेखक ने ध्यानाकर्षित किया है। अदितिः, आपः, बृहतीः आपः, अपांनपात्, मित्रः, वरुणः, अर्यमा, अश्वः, अनर्वा, वसिष्ठः, अगस्त्यः, पुरूरवः, अप्सरा, उर्वशी आदि अनेक प्रतीकों में विज्ञान संबंधी विशिष्ट भौतिक स्थिति निर्दिष्ट है। इस तथ्य को इस ग्रन्थ में प्रकाश में लाया गया है। संदर्भानुसार प्रतीकात्मक अर्थ को ग्रहण न करने से मूल आशय लुप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए आपः का साधारण अर्थ जल है किन्तु आपः मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था के प्रतीक के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। अस्तु, जहाँ आपः शब्द मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था का प्रतीक है, वहाँ उसका अर्थ जल ग्रहण करने पर मूल भाव तिरोहित हो जाता है।

4. ऋग्वेद में सांकेतिक शब्दों का प्रयोग

यह कहा जा चुका है कि ऋग्वेद दर्शन का अभूतपूर्व ग्रन्थ है। दर्शन में अस्तित्व विज्ञान (Metaphysics) संबंधी गूढ़तम कल्पनाओं का समावेश करने व उनकी अभिव्यक्ति के लिए उत्कृष्ट शब्दावली की आवश्यकता होती है। वहाँ स्थायी व अस्थायी अस्तित्व में भेद करना होता है। दर्शन में काल के संबंध से तथा फैलाव, दिक् (space) के संबंध से अपरिमित, असीमित (infinity) की कल्पना करनी पड़ती है। ऋग्वेद में अपरिमित के विभिन्न पहलुओं (aspects) को दर्शाने हेतु उत्कृष्ट शब्दावली का प्रयोग पाया जाता है। अनादि (beginningless) तथा अनन्त (endless) अपरिमित के एक-एक पक्ष (one sided infinity) के द्योतक हैं। कोई सत्ता आरम्भ रहित हो, पर अन्तवान् हो (beginningless but without end), तो इन्हें अपरिमित के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाला कहेंगे। अनादि - अनन्त मिलकर अपरिमित के दोनों पक्षों को या अपरिमित को पूर्ण रूप में दर्शाते हैं। अपरिमित से संबंधित ऋग्वेद में जो शब्दावली पाई जाती है, वह

कदाचित् ही किसी अन्य भाषा में उपलब्ध हो। यहाँ एक सूची जो ऋग्वेद के सभी शब्दों को कदापि परिवेष्टित नहीं करती, दी जा रही है :-

1. अज, असुता, अनारम्भणे, अनादि आरंभरहित के द्योतक हैं।
2. अमृत, अक्षय, अक्षर, अमर, अजर, अमर्त्य, अनंत, अध्वस्म, अध्वर, अपार, अविनाशी, अच्युत, नपात् आदि अन्तरहित के द्योतक है।
3. सत्, स्वायु, नित्य, शश्वत्, सनातन, स्वयम्भू, अदिति, ध्रुव, अनाद्यनन्त, स्वधावान् अनादि-अनन्त के द्योतक हैं।

उपर्युक्त शब्दावलि के प्रयोग निरुद्देश्य नहीं है अपितु ये सांकेतिक शब्द हैं, इनमें से किसी का भी मन्त्र में होना यह दर्शाता है कि मन्त्र में दर्शन संबंधी गहन विचार निहित है। इसे दृष्टि ओझलकर असाधारण स्थिति को साधारण मानकर चलने पर मन्त्र में निहित विचार प्रकाश में नहीं आ पाता।

इसी प्रकार प्रथमे, अग्रे, पूर्व्ये आदि सांकेतिक शब्द हैं, जो प्रसंगानुसार आदिकाल (सृष्टि आरंभ काल) के सूचक हैं। ध्यान रहे-प्रथमे, अग्रे, पूर्व्ये सापेक्षिक (रिलेटिव्ह) शब्द हैं, इनके प्रयोग के साथ सापेक्षिक घटना का उल्लेख आवश्यक है। यदि घटना का उल्लेख न हो तो शब्द निरपेक्ष (absolute) हो जाता है अर्थात् उस घटना का अभाव है जिससे तुलना की जा सके, तब प्रश्न होता है कि किससे पूर्व , किससे अग्रे ?

क्या विक्रम संवत से पूर्व ? उत्तर नहीं, तो क्या 10 हजार वर्ष पूर्व ? नहीं, प्रत्येक काल से यह घटना पूर्व की है। इस प्रश्न के उत्तर का वेद की रचना के काल से कोई संबंध नहीं है। प्रत्येक काल में ये पूर्व, अग्रे शब्द अपने सापेक्ष संकेत को सर्वथा सुरक्षित रखते हैं। अस्तु, ये शब्द आदिकाल के बोधक हैं, आदिकाल की ओर ले जाते हैं।

इस प्रकार के प्रयोग वैदिक साहित्य में अन्यत्र भी उपलब्ध हैं; उदाहरण के लिए श्वेताश्वतर उपनिषद् (6/18)

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्।

जो पूर्वम् आदिकाल में ब्रह्मा को धारण करता है।

यहाँ पूर्वम् का प्रयोग आदिकाल के लिए है।

इसी प्रकार मनुस्मृति (1/4)

अप् एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।

उसने आदौ आदिकाल में अप् तत्त्व को प्रकट किया।

अस्तु, जहाँ घटना आदिकाल की है, वहाँ उसे साधारण घटना मानने से मूल भाव तिरोहित हो जाता है।

5. ऋग्वेद के शब्द अनेकार्थी हैं

वेद के शब्दों का कोई जटिल कोश तैयार नहीं किया जा सकता अर्थात् किसी शब्द का एक ही अर्थ निर्धारित करना वेद की आन्तरिक साक्षी के प्रतिकूल है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वेद के शब्दों का कोश नहीं तैयार किया जा सकता वरन् यह आगाह करना है कि वेद की शैली में शब्दार्थ लचर है। अस्तु, शब्दार्थ जटिल नहीं हो सकता, शब्दार्थ प्रसंगानुसार मौलिक भावना को व्यक्त करने में समर्थ होना चाहिए।

प्रसिद्ध भाष्यकार सायण ने एक ही शब्द को प्रसंगानुसार विभिन्न अर्थों का द्योतक बताया है। पाश्चात्य विद्वानों ने सायण की विधि पर आपत्ति की है। किन्तु वे सायण के भाष्य के प्रभाव से मुक्त भी नहीं हो सके। सत्य, सत्य ही रहता है चाहे कोई माने या न माने। वैदिक शब्दार्थों की अति प्राचीन परम्परा को अक्षुण्ण रखने वाले ग्रन्थ निघण्टु का अर्थ ही है "अर्थ का द्योतक"। उदाहरण के लिए अध्याय 1 में पृथ्वी के 21 नाम हैं, इनमें गौः भी एक है। अतः संदर्भ को तिलांजलि दे सदैव गौः का अर्थ गाय करने से मूल भाव लुप्त होने में संदेह नहीं है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष के 16 नामों में आपः भी एक शब्द है समुद्रः, सागर भी है। अतः प्रत्येक स्थल पर आपः का अर्थ जल हो या समुद्रः का सागर ही हो यह आवश्यक नहीं है। यास्क ने भी लिखा है (2/3) के अन्तरिक्ष के नामों में समुद्रः भी एक है, जिसका भ्रम पार्थिव समुद्र से हो जाता है। निघण्टु (अ.1) में किरण के 15 नाम बताये गये हैं, जिनमें गावः भी एक है तथा एक नाम सप्त ऋषयः है। पाणिनि से भी प्राचीन आचार्य यास्क ने भी वैदिक शब्दों को निघण्टु की तरह ही बहुवाची माना है। यद्यपि आचार्य यास्क प्रणीत निरुक्त का आधार प्राचीन निघण्टु कहा जा सकता है, तथापि यास्क की अपनी मौलिकता है, जो उनकी कृति में दर्शनीय है। अस्तु–अति प्राचीन परम्परा को निरर्थक मानने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। भाषा केवल भाव को वहन करने का माध्यममात्र है। भाषा न लक्ष्य ही है न ही अन्त है। जो भाष्य मूल भाव को प्रदर्शित करने में सक्षम न हो, वह अयुक्त ही है। अनेकार्थानि एकशब्दानि के सिद्धांत से शब्द

बह्वर्थवाची होता है। उपर्युक्त प्राचीन परम्परा के अतिरिक्त ऋग्वेद में स्वयं यह तथ्य अन्त:साक्षी के रूप में विद्यमान है कि शब्दों के अर्थ अनेक हैं, जैसा कि पूर्व परिच्छेद में कहा गया है कि ऋग्वेद में प्रतीकवाद है, एक ही शब्द साधारण अर्थ के अतिरिक्त विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अध्याय 4 में यह प्रस्थापित किया गया है कि आप: मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था का प्रतीक है। यहाँ एक उदाहरण द्वारा यह दर्शाया जा रहा है कि संदर्भानुसार शब्द का अर्थ न लेने से भाव में विसंगति हो जाती है। ऋग्वेद मण्डल 1 सूक्त 164 का 2रा मन्त्र है (क्र. 3)

> सप्त युञ्जन्ति रथमेक चक्रमेको अश्वो वहति सप्त नामा।
> त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वम् यत्रेमा विश्वा भुवनाधितस्थुः।।

एकचक्रम् रथ एक चक्र वाले रथ में सप्त युञ्जन्ति सात घोड़े नियोजित है। एक: अश्व: सप्त नामा वहति एक ही घोड़ा सात नाम को वहन करता है।

मन्त्र की विषयवस्तु निर्धारित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। मन्त्र में सृष्टि का एक रथ के रूपक से वर्णन किया गया है। यह तथ्य मन्त्र के उत्तरार्ध भाग से प्रकट होता है। मन्त्र का उत्तरार्ध भाग कहता है – तीन बंधन वाला एक चक्र (अनर्वम् = स्वतंत्र, निरपेक्ष) जरा से रहित स्वतंत्र निरपेक्ष स्वच्छंद है। यत्र इमा विश्वा भुवना अधितस्थु: जिन पर ये समस्त लोक पूर्ण रूप से आधारित हैं। मन्त्र के इस भाग में विश्वाधार तीन मूल तत्त्वों की बात है। ये तीन तत्त्व अनर्व कहे गये हैं। अनर्व शब्द उत्कृष्टता, असाधारणता, असामान्यता, विलक्षणता का सूचक है। इन तीन तत्त्वों को छोड़ शेष अर्व हैं, अर्व (अश्व) शक्तियाँ हैं। मन्त्र विश्वाधार की बात कर रहा है। अत: स्पष्ट है कि यहाँ अश्व का घोड़ा अर्थ संदर्भहीन है।

सृष्टि रूपी रथ एक चक्र वाला है। इसके बाह्य चक्र (रिम) में सप्त युञ्जन्ति सात घटक नियोजित है। ये सात घटक हैं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, दिक् व काल। यह बाह्य चक्र दर्शनीय जगत् रूप चक्र है। सात भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ने वाले द्रव्यों में वस्तुत: एक: अश्व: एक ही शक्ति है। एक ही शक्ति सप्तनामा सात नाम रूप धारण कर वहति सबकी आधारभूत बनी है। इस तथ्य में समस्त भौतिक द्रव्य सत्ता में एक शक्ति का सिद्धांत (Principle of equivalence of mass energy relation & equivalence of all forms of energy) निहित है। जहाँ लोकों की आधारभूत सत्ता चर्चा का विषय है, वहाँ पशु रूप में घोड़े की चर्चा का न होना ही अत्यन्त स्वाभाविक है। अस्तु, "अश्व" शब्द शक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह तथ्य विवादरहित है।

इस बाह्य चक्र के अन्तस् में दूसरा नाभि चक्र है, जो मूल शक्ति का आवास है। यहाँ त्रिवर्गी मूल शक्ति, जो जरा से रहित, काल से निरपेक्ष (absolute) सत्तावली है, अवस्थित है। इस चक्र की गति से काल की उत्पत्ति होती है। गति काल की सूचक है, काल द्रव्य सत्ता में हुए परिवर्तन का सूचक है, परिवर्तन नाम रूपात्मक जगत् की उत्पत्ति का हेतु है। इस प्रकार इस एक चक्र के रथ पर नाम रूपात्मक जगत् स्थित है, जिसका आधार नाभि चक्र में अवस्थित मूल त्रिवर्गी भौतिक सत्ता है।

मन्त्र दर्शन विज्ञान के विशुद्ध ज्ञान का आगार है, किन्तु अश्वः शब्द का अर्थ घोड़ा करने से समस्त ज्ञान विज्ञान तिरोहित हो जाता है। अस्तु, अश्वः शब्द का प्रयोग शक्ति के लिए हुआ है। इस प्रकार सिद्धांत के पूर्व निर्धारण से शब्दों का अर्थ अपने आप प्रस्फुटित होता है। उसे मान्यता देने से ही भाव की अभिव्यक्ति होती है। शब्द का जटिल अर्थ लेकर उससे चिपके रहना, चाहे सुसंगत भाव निकले या न निकले, भाष्य का लक्ष्य कदापि नहीं है, वरन् भाष्य का लक्ष्य तो भाषा में निहित भाव को प्रकाश में लाना है; भाव न साधन है न साध्य है; भाव तो वह स्वयं सिद्ध सत्य है; जिसके प्रभूत होने के अभाव में शब्द रचना क्रम छिन्न-भिन्न हो जाता है, भाषा नीरस हो जाती है।

भाव प्राण है, आत्मा है, सर्वोच्च प्राप्तव्य लक्ष्य है, भाव की अभिव्यक्ति करने पर ही अर्थ में रस आता है, भाषा सार्थक होती है।

6. ऋचाएँ परस्पर अविच्छिन्न रूप से संबद्ध हैं

यह धारणा कि वेद के मन्त्र परस्पर सम्बद्ध नहीं है तथा किसी भी मन्त्र का अर्थ अन्य मन्त्रों पर विचार किये बिना स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है, वेद की आंतरिक साक्षी के प्रतिकूल है। मन्त्र को मूल देह से पृथक् कर उसका भाव जानने का प्रयास वैसा ही है जैसे केवल पूँछ या सूँड से या केवल पैर की बनावट से ही हाथी की देह का विवरण ज्ञान करना है। मन्त्रों की पृष्ठभूमि में एक ही आधारभूत परिकल्पना है, जिसके आधार पर समस्त संरचना के वैभव का विस्तार है। मन्त्र परस्पर प्रगाढ़ रूप से संबद्ध हैं। मन्त्रों का विषय परस्पर जाल की तरह बुना हुआ है, किसी धागे को, किसी दूसरे धागे को क्षति पहुँचाये बिना नहीं निकाला जा सकता यह एक वास्तविकता है। इस सत्य को प्रस्थापित करने हेतु एक मन्त्र पर चर्चा की जाती है। जिससे मन्त्रों के मध्य परस्पर संबंध प्रस्थापित न करने से किस प्रकार अर्थ का अनर्थ होता है, यह तथ्य प्रकाश में आएगा। मंडल 1 सूक्त 22 के मंत्रों के भाष्य से यह कथा उद्भूत हुई कि भगवान् विष्णु ने ब्रह्माण्ड को तीन चरणों में नापा। सूक्त का 16वाँ मन्त्र है – (क्र. 4)

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः।

इसका अर्थ किया गया- उससे देव हमारी रक्षा करे जिससे विष्णु ने पृथ्वी से लेकर सात लोकों को (वि, चक्रमे, क्रम = डग भरना, क्रमबद्ध करना की लिट् ल.) विशिष्टता से नापा।

आगामी दो मन्त्रों में उपर्युक्त मन्त्र के संदर्भ में उत्तर है। उनमें से 17वाँ मन्त्र इस प्रकार है - (क्रमांक 5)

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूळ्हमस्य पांसुरे।

इसका अर्थ किया गया - विष्णु ने यह विक्रम किया। उसने तीन प्रकार से पद रखे थे, उसका पद एक धूलि प्रदेश (पृथ्वी) पर पड़ा।

यहाँ प्रश्न यह है कि विष्णु ने जिन पगों से ब्रह्माण्ड को नापा था, वह एक भूतकाल की घटना है। उससे हमें संकट की आशंका क्यों है ? वास्तव में उस घटना से उन नापे गये पगों से रक्षा की प्रार्थना देवों से क्यों की गयी है ? वास्तव में उस घटना से कोई आसन्न संकट का आभास भी दिखाई नहीं देता। विष्णु के उस कर्म से देव कैसे रक्षा करेंगे? क्या रक्षा करेंगे? इन तथ्यों में परस्पर कोई संबंध नहीं है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यदि क्रमांक 4 का मन्त्र प्रश्नवाचक नहीं है, तो क्रमांक 5 तथा इसके आगामी (सूक्त के 18वें) मन्त्र में उत्तर किस आधार पर दिया गया है। अस्तु, क्र. 4 के मन्त्र को प्रश्नवाचक होना ही चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि शब्द अवन्तु का अर्थ अव् = अवगम = प्रत्यक्षीकरण लिया गया है, जिससे मन्त्र में जिज्ञासा का भाव आता है तथा मन्त्र प्रश्नवाचक बनता है।

दूसरा प्रश्न यह है कि विष्णु ने तीन चरणों में ही ब्रह्माण्ड को क्यों नापा ? क्या एक पग में नहीं नाप सकता था? विष्णु के संबंध में सायण भाष्य में कहा गया है कि "विष्लृ व्याप्तौ धातु से विष्णुः शब्द है"। क्या तीन पगों में ब्रह्मांड को नापना सर्वव्यापी की शक्ति को सीमित नहीं करता? सर्वव्यापी को तो नापने की आवश्यकता ही नहीं है। आना जाना उसका होता है, जो एक देशी हो।

जैसा कि कहा जा चुका है इन मन्त्रों के बाहर भी इस रहस्य का अन्वेषण आवश्यक है। वास्तव में पूर्व अनुच्छेद में क्रमांक 3 के मन्त्र से यह तथ्य प्रस्थापित हुआ है कि तीन अजर, शाश्वत मूल तत्त्व हैं तथा पृथ्वी से लेकर जो सात धाम की बात है वह सप्तवर्गी दृश्य जगत् के लिए है। ऋग्वेद के अन्तस् में ही साक्षीभूत रहस्य

निहित है। मूल आद्या भौतिक शक्ति त्रिवर्गी है। यह तथ्य अनेक मन्त्रों में निहित है। उदाहरण के लिए ऋ. 1/102/8 वें मन्त्र का अंश है - (क्रमांक 6)

त्रिविष्ट धातु प्रतिमानमोजसः।

ओजसः ओजस्वी परमात्मा ने त्रि तीन विष्ट व्यापक (धातु = संघटक, मूल भाग, मूल तत्त्व, कोश पृ. 494) मूल तत्त्वों, (प्रतिमानं, प्रति = की तुलना में कोश पृ. 647, मानं मा = मापना के शानजन्त मान से, वै. व्या. पृ. 240) की तुलना में (ब्रह्मांड) को नापा है। (प्रतिमानं = प्रतिमूर्ति, समरूपता कोश पृ. 654) के अनुरूप (जगत् को) रचा है।

मन्त्र का भाव यह है कि तीन मूल तत्त्व जगत् रचना की इकाई हैं। इन्हीं तीन को पैमाना बनाकर ईश्वर ने जगत् को नापा है अर्थात् विश्व रचना में इन इकाइयों की कितनी-कितनी संख्या नियोजित है यह निश्चित किया है अथवा इन मौलिक इकाइयों के गुण स्वरूप के अनुरूप इन इकाईंयों की प्रतिमूर्ति के रूप में जगत् को रचा है। यह है तीन की संख्या का महत्त्व, यह है तीन पदों का रहस्य।

अब पूर्वोक्त विश्लेषण के आधार पर क्रमांक 4, 5 के मन्त्रों का भाष्य निम्न प्रकार से होगा। (क्र. 4)

यतः जिस कारणतत्त्व से विष्णुः व्यापक परमात्मा ने पृथिव्याः सप्त धामभिः पृथ्वी महाभूत से लेकर सात अंतिम (final) परिणाम (विचक्रमे, क्रम = क्रमबद्ध करना, रचना, कोश) विशिष्टता से क्रमबद्ध किये, रचे अतः अपितु- उस कारण तत्त्व से देवाः विद्वान् अवन्तु अवगत करावें ?

मन्त्र के इस भाष्य से प्रश्न बनता है। अतः आगामी मन्त्रों में उत्तर की आशा समुचित है। उत्तर है - (क्र. 5)

इदं पदम् इस तत्त्व को, मूल स्थिति को (त्रेधा = तीन भागों में वै. व्या. पृ. 653) तीन भागों में (निदधे) अन्तस् में, अव्यक्त अवस्था में धारण करता है। अस्य उसके (समूढम्, वह् = वहन करना का क्तान्त ऊढ वै. व्या. पृ. 243) सम्यक् प्रकार से वहन किये गये (पांसुरे = रेणु, कोश पृ. 599) कणों पर विष्णुः व्यापक परमात्मा ने विचक्रमे विविध प्रकार से क्रमबद्ध किया, रचा।

ध्यान रहे "इदं" सर्वनाम है, इदं से मन्त्रारम्भ इस मन्त्र को पूर्व मंत्र से संयुक्त करता है, यह पूर्व मन्त्र के "यतः" के उत्तर में है। "पदम्" शब्द पद् की द्वितीया विभक्ति नहीं है, पद की द्वितीया विभक्ति पादम् है। इस प्रकार पूर्वोक्त भाष्य से यह

दृष्टव्य है कि मन्त्र परस्पर समवायरूप से संबद्ध हैं। किसी भी मन्त्र का भाष्य करने में तत्संबंधी मन्त्रों में निहित विचारों एवं सिद्धांतों को यथावत् सन्निहित किया जाना उपयुक्त है। इसी विषय (विष्णु द्वारा तीन पगों में ब्रह्मांड नापने संबंधी) पर अध्याय 8 में सूक्त 154 मंडल 1के मंत्रों की मीमांसा के आधार पर और भी विवेचन किया गया है।

7. देव भौतिक सत्ताएँ हैं, अधिष्ठातृ चेतन शक्तियाँ नहीं हैं

देव उत्पत्तिवान् एवं विनाशधर्मी भौतिक सत्ताएँ है। ये विभिन्न भौतिक शक्तियों के अधिष्ठाता चेतन देवता (गाड्स) नहीं है। इस प्रकार बहुदेववाद का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। देवों की प्रार्थना में निर्माण करने वाली ईश्वरीय शक्तियों के ही दर्शन किये गये हैं। उसी निर्मात्री शक्ति का वैयक्तीकरण कर चिन्तन किया गया है। यह तथ्य आरोपित नहीं है। ऋग्वेद मंडल 10 सूक्त 125 के तीसरे मंत्र में इस व्यवस्था का सजीव चित्रण है। मन्त्र है (क्र. 7)

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनाम् चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरूत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।

अहं मैं (राष्ट्री, ईश्वर के चार नामों में से एक है, निघण्टु 2/22) ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति सङ्गमनी वसूनाम् जहाँ तक भौतिक सत्ता गयी है वहाँ तक गयी हूँ। मैं (यज्ञियानां, यज् = संगतिकरणे) तत्त्व संगतिकरणों की प्रथमा चिकितुषी सर्वश्रेष्ठ ज्ञानवती हूँ।

भूरिस्थात्रां अनेको रूपों में वर्तमान (भूरि आवेशयन्तीम् विश् = प्रवेश करना) अनेक प्रकार से प्रवेश किये हुए तां मा उस मुझे पुरूत्रा देवाः अनेक रूपों में वर्तमान देव (devas in myriad forms) व्यदधुः विशिष्टिता से धारण किये हैं।

अनेक रूपों में व्यक्त ईश्वरीय निर्माण कला के विभिन्न भौतिक पहलू देव संज्ञा से ज्ञातव्य हैं। उस निर्माण कला को 'देवाः पुरूत्रा व्यदधुः' - अनेक प्रकार धारण कर अभिव्यक्त करने वाली भौतिक सत्तात्मक अन्तरिम अवस्थाएँ हैं। देव स्वतंत्र चेतना सत्ता नहीं है, न ही किसी भौतिक स्थिति के अधिष्ठाता देव या अधिष्ठात्री देवी हैं, पुनः उस रूप में उनकी वंदना करने या उपासना करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। वंदना या उपासना की गयी है उस भौतिक सत्तात्मक देव सत्ता की पृष्ठभूमि में ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति की जिसने उस देव सत्ता को मूल तत्त्व

से निर्मित कर वह साकार रूप प्रदान किया है। इस तथ्य की साक्षी कि देव भौतिक सत्ताएँ हैं जिनकी उत्पत्ति का उपादान कारण अजन्मा प्रकृति (अदिति) है ऋग्वैदिक मन्त्रों में विद्यमान है। इस तथ्य को प्रस्थापित करने हेतु कि देवों का उपादान कारण प्रकृति है ऋग्वेद मंडल 10 सूक्त 82 के 5वें 6वें मन्त्रों पर विचार किया जाता है। पाँचवाँ मन्त्र है (क्र. 8)

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कं स्वित् गर्भम् प्रथमं दध्र आपो यत्र देवा समपश्यन्त विश्वे।।

द्युलोक से परे, इस पृथ्वी से परे, देवों (महाभूतों, लोकों) से परे, असुरों (सूक्ष्म भूतों) से परे जो है उस सर्वप्रथम आद्या शक्ति के, आद्या अवस्था के गर्भ को आप: कहाँ ही धारण करती है, जहाँ विश्वे देवा: सम् अपश्यन्त सभी देव एक दूसरे को एक ही रूप में देखते हैं अर्थात् सभी मूल कारण में लीन हो एक रूप हो गये थे।

मूल तत्त्व की प्रथम अवस्था अदिति है, (अध्याय 3)। मूल तत्त्व की क्रियात्मक द्वितीय अवस्था आप: है। मन्त्र में यह कहा गया है कि मूल, आद्या अवस्था, द्युलोक, पृथ्वी, देवों, असुरों से परे है, क्योंकि शेष सभी द्युलोक, पृथ्वी, देव आदि मूल से ही उत्पन्न हुए हैं, मूल के परिणाम हैं(अत: मूल, चरम (अल्टीमेट) ही सबका कारण होने से सर्वश्रेष्ठ है, सबसे परे है। मन्त्र में देव, असुर आदि को द्युलोक, पृथ्वी की श्रेणी में रखा गया है। अत: देव, असुर संज्ञाएँ (पृथ्वी, द्युलोक की तरह) भौतिक सत्ताओं की ही द्योतक हैं। आगे मन्त्र में यह कहा गया है कि समस्त देव एक दूसरे को एक ही रूप में देखते हैं अर्थात् मूल अवस्था में परिणत हो मूल रूप में, अदिति अवस्था में हो जाते हैं। इसे प्रथम अवस्था कहा गया है। सभी देव सृष्टिकाल में मूल तत्त्व से उत्पन्न होते एवं मूल गें ही प्रलय काल में लीन होते हैं। अस्तु देव मूल आद्य तत्त्वों के परिणाम मात्र है, मूल तत्त्व से उत्पन्न विविध रूप मात्र हैं। इस प्रकार देवों का उपादान कारण (material cause) मूल भौतिक आद्या अवस्था अदिति है। इसी कारण अदिति को देवों की माता कहा गया है। यह रूपक प्रयोग है। मूल कारण होने से माता (Mother cause) है, वास्तविक देहधारी माता नहीं है। मन्त्र में यह प्रश्न किया गया है कि भौतिक-सत्तात्मक पदार्थ की द्वितीय अवस्था आप: ने प्रथम अवस्था अदिति को अपने अन्तस् में कहाँ रखा ? यह प्रश्न ऐसे ही है जैसे कि प्रश्न किया जाय कि परमाणु (एटम) इलेक्ट्रॉन को अपने गर्भ में कहाँ रखता है। इलेक्ट्रॉन परमाणु से सूक्ष्म है। इसका उत्तर यही होता है कि परमाणु इलेक्ट्रॉन को अपनी बनावट के अन्तस् में रखता है। इसी प्रकार का प्रश्न उपर्युक्त वेद मन्त्र में है। अब यह देखना है कि वेद क्या उत्तर देता है, आगामी मन्त्र है – (क्र. 9)

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्न आपो यत्र देवा समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावधि एकमर्पितम् यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः।।

जिस पर समस्म लोक स्थित हैं, जिस एक को समर्पित हो विश्वे देवा समस्त देव जहाँ सम् अगच्छन्त सम्यक् रूप से अपने पृथक् रूपों को खोकर एक हो गये थे तं इत् वहाँ ही अजस्य नाभौ अधि अजन्मा प्रकृति की नाभि स्थान में आपः अवस्था प्रथमं आद्या मूल अवस्था को, मूल कारण को, अन्तिम अखंड तत्त्व को अन्तस् में धारण करता है।

प्रलयावस्था में सभी देव (भौतिक सत्ताएँ) अपने पृथक्-पृथक् अस्तित्व को खोकर मूल सत्ता में लीन हो मूल के रूप में ही विद्यमान रहते हैं। इसी सत्य को शतपथ ब्रा. ने प्रकारान्तर से कहा है – "सर्वे ह वै देवा अग्र सदृशा आसु" आदिकाल में सभी देव एक जैसे थे। अस्तु देव मूल आद्या शक्ति से उद्भूत भौतिक अस्तित्व मात्र हैं। इस तथ्य को कि देवों का उपादान कारण प्रकृति की क्रियाशील अवस्था आपः है, प्रस्थापित करने हेतु दूसरी ऋचा को उद्धरित किया जाता है; ऋचा है – (क्र. 10)

अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनुकेतमायन्। ऋ.4/26/2

मैं ईश्वर विविधता की इच्छा करता हुआ (अपः) मूल क्रियात्मक तत्त्व को लाया था। देव मेरी योजनानुसार इसके अनन्तर आये। सर्वप्रथम ईश्वर ने अप् तत्त्व की रचना की (अध्याय 4 देखिये), पुनः उसी अप् तत्त्व से देवों का निर्माण किया। अस्तु देवों का उपादान कारण आपः है। जैसा कि क्रमांक 7 के मन्त्र की व्याख्या में बताया गया है – देवों का निमित्त कारण, रचयिता सर्वव्यापी ईश्वर है। ऋग्वेदानुसार ईश्वर तथा प्रकृति (अदिति) दोनों शाश्वत सत्ताएँ हैं (अध्याय 3)। ये ही दोनों देवों की उत्पत्ति के कारण हैं। यही बात प्रकारान्त से ऐतरेय ब्राह्मण में कही गयी है। (पं. 1/अ. 1/खंड 1) (क्र. 11)

अग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुः सर्वा देवताः।
अग्नि ही सब देवता है विष्णु ही सब देवता है।

दो ही शाश्वत शक्तियाँ हैं मूल प्रकृति वाचक अग्नि तथा जगत् अधिष्ठाता विष्णु। सायणा भाष्य में कहा गया है – विष्लृ व्यातौ धातु से विष्णुः शब्द है। मूल शक्ति से सभी भौतिक अवस्थाएँ उद्भूत हुई हैं। देव सृष्टि उत्पत्ति क्रम के विभिन्न चरणों में प्रादुर्भूत हुई सत्ताएँ हैं। अस्तु प्रकृति या अग्नि ही सर्वा देवता है। इसी तथ्य को ऐतरेय ब्राह्मण ने और स्पष्ट शब्दों में (पं. 1/अ.4/खंड 5) दुहराया है; यथा – (क्र. 12)

अग्निर्वै देवयोनिः

अग्नि देवों का (योनि–देव योनि रूपे प्रजनने उत्पत्ति स्थाने, सायण भाष्य) उत्पत्ति स्थान है। इस प्रकार अग्निः शब्द, क्रियात्मक मूल शक्ति जिसे ऋग्वेद में आपः प्रतीक से कहा गया है, के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण (पं.2/अ.2/खं. 6) में एक रूपक के द्वारा अग्नि आपः का एकत्व कहा गया है।

प्रजापति के स्वयं होता होकर प्रातरनुवाक (प्रातःकाल की प्रथम ऋचा का स्तवन) करने के लिए उद्यत होने पर सभी देवताओं ने अपेक्षा की कि मुझे ही लक्ष्य करके प्रारम्भ करेंगे। तब प्रजापति ने सोचा कि एक देवता को लक्ष्य करके आरम्भ करने से अन्य देवता कुपित होंगे। तब बहुत सोच विचार कर प्रजापति ने सभी देवाताओं को समावेश करने के लक्ष्य से आपो रेवती ऋचा का दर्शन किया। यह ऋचा (ऋ. 10/30/12) आपो रेवतीः शब्द से आरम्भ होती है। इससे सभी देवता प्रसन्न हो गये कि मुझे ही लक्ष्य करके आरम्भ किया गया है।

इस आख्यायिका का तात्पर्य यह है कि आपः में सब देव निहित हैं, आपः व्यापक मूल तत्त्व है। ऐतरेय ब्राह्मण में इस कथा के उल्लेख के साथ यह महत्त्वपूर्ण टिप्पणी लिखी है- (क्र. 13)

आपो वै सर्वा देवता, रेवत्यः सर्वा देवताः।

इस पद पर भाष्य करते हुए सायण ने लिखा है –

आप्नुवन्ति इति आपः रायो धनानि यासां सन्तीति रेवत्यः।
आपः ही सब देवता है रायः भौतिक सत्ता है।

इस प्रकार आपः को देवों की योनि अर्थात् मूल उपादान कारण कहा गया है। समस्त देवों की उत्पत्ति का स्रोत अनन्य है, एकाश्रयी है, अभिन्न है; उसी अनन्य स्रोत, मूल शक्ति प्रकृति को अनेक नामों से कहा गया है। अनेक नाम देने में हेतु है। अदिति ब्राह्मी अवस्था है अर्थात् साम्यावस्था की द्योतक है। आपः सृष्टि में नियोजित सर्वप्रथम अवस्था है जो प्रकट होते ही क्रियात्मक हो जाती है। अग्नि प्रकृति का वह रूप है, जो त्रिकाल क्रियात्मक रहता है। ऐतरेय ब्राह्मण (पं. 3/अ.1/खं. 4) में कहा गया है – (क्र. 14)

अग्नेर्वा एताः सर्वास्तन्वो यदेता देवताः।

या एता वाय्वादयो देवताः प्रतीयन्ते ताः सर्वा अग्निरेव शरीरभूताः (सायण) जो ये वायु आदि देव हैं, वे सभी अग्नि के ही शरीरभूत है।

वस्तुत: अग्नि: मूल शक्ति वाचक है। अग्नि: के स्वरूप की विशेष व्याख्या अध्याय 2 में दी जा रही है।

पुनश्च निमित्त कारण होने से चेतन अधिष्ठातृभूत सत्ता ईश्वर की निर्माण-शक्ति के बिना देवनामधारी भौतिक शक्तियाँ अस्तित्व में नहीं आ सकतीं। अस्तु इस निर्माणशक्ति को ही देव सत्ता के रूप में देखा जाता है तथा उस देव संज्ञा में देव सत्ता के भौतिक कलेवर, भौतिक स्वरूप का नहीं वरन् ईश्वरीय चेतन निर्मात्री शक्ति का दर्शन किया जाता है। प्रत्येक विशिष्ट भौतिक निर्माण के लिए ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति को एक विशिष्ट नाम दिया जाता है। इस प्रकार एक ही चेतन सत्ता बहुनामधारी हो जाती है। अत: सर्वे देवा विष्णु: हैं।

यही सत्य मन्त्रों के इन शब्दों में "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋ. 1/164/46) की एक ही सत्ता को विद्वान् अनेक नामों से पुकारते हैं, "एकं सतं बहुधा कल्पयन्ति" (ऋ.10/114/5) एक ही सत्ता की कल्पना अनेक प्रकार से करते हैं, समायुक्त है।

इस प्रकार देव शक्ति के दो पहलू हैं एक विशुद्ध भौतिक शक्ति रूप वाला है तथा द्वितीय वह है जो उस विशिष्ट भौतिक शक्ति के साथ अनन्त ज्ञान, अनन्त क्रिया, अनन्त बल, अनन्त कौशलधारी ईश्वर के विशिष्ट अंशमात्र ज्ञान, क्रिया, बल, कौशल रूप चेतन शक्त्यंश को, जिसने उस विशिष्ट भौतिक शक्ति का निर्माण किया है, प्रतिरोपित कर देने पर दोनों शक्तियों (चेतन ईश्वर व भौतिक प्रकृति) के सम्मिलित विशिष्ट स्वरूप में उभरता है।

इस प्रकार देव सत्ता के पक्ष में से भौतिक पक्ष तो देवों में पृथक्-पृथक् है, जो भौतिक कलात्मक अस्तित्व है। किन्तु चेतन पक्ष एक ही अद्वितीय ईश्वर का प्रतिनधित्व करता है। क्योंकि ईश्वरीय चित् शक्ति अविभाज्य है; इस कारण भौतिक शक्तियों के निर्माण के आधार पर दिव्य चित् का विभाजन नहीं हो सकता। अत: देव एक ही चेतन ईश्वर के बोधक हैं, देवों की आराधना में एक ही ईश्वर की आराधना है। ईश्वर की निर्मात्री शक्ति को विभिन्न पहलुओं से देखने से ईश्वर अनेक नहीं होता वरन् एक ईश्वर की आराधना का आधार अनेक प्रकार से निर्मित किया गया है। इस प्रकार सर्वे देवा विष्णु: है इसी विचार को ध्यान में रखकर विष्णुसहस्रनाम की रचना हुई है।

यह कारण है कि प्रो. मेक्समूलर ने यह अनुभव किया कि जिस देव की आराधना की जाती है, सभी अन्यों का विस्मरण कर उसे ही सर्वोच्च सत्ता के रूप में

निरूपित किया जाता है; क्योंकि आखिरकार वह देव अद्वितीय ईश्वर का ही बोधक है, वह एक ही चेतन सत्ता के भौतिक वैभव के विस्तार के आंशिक पक्ष को उजागर करता है। भेद कलाओं में है, चेतना सत्ता में भेद नहीं है।

8. (अ) पदार्थ की संरचना संबंधी विज्ञान

विज्ञान के अनुसार प्रकृति अपने आप को दो रूपों में अभिव्यक्त करती है– द्रव्य (matter) एवं विकिरण (Radiation)। पदार्थ अपने स्वरूप में कण रूप है अर्थात् कणों का समुच्चय है। पर यह समझा जाता है कि विकिरण स्वरूप से लहर व कण दोनों स्वभाव वाली है। विज्ञान के अनुसार द्रव्य भी दो प्रकार का है एक वर्ग को शक्तिशाली क्रिया रहित (devoid of strong interactions) होने के कारण लेप्टन्स् (Greek Term Lepton Which means light) कहा जाता है; दूसरे वर्ग को (with strong interactions) शक्तिशाली क्रिया वाला होने से हेड्रन्स (Hadrons, Greek word meaning strong) कहते हैं[1]। द्रव्य (matter) के अन्य प्रकार के वर्गीकरण के अनुसार द्रव्य के दो वर्गों को कण (particles) एवं प्रतिकण (anti particles) कहते हैं। कण प्रतिकण मात्रा और चार्ज में बराबर होते हैं पर ये विपरीत स्वभाव के चार्ज वहन करते हैं अर्थात् यदि कण धनात्मक विद्युत् वाला है तो प्रतिकण ऋणात्मक विद्युत् वाला होगा। प्रत्येक कण का एक प्रतिकण होता है। इस प्रकार यह एक युग्म है, कण प्रतिकण एक दूसरे के पूरक होते हैं।

उपयुक्त ताप, दबाव आदि की स्थिति में कण प्रतिकण परस्पर संयोग कर अपने-अपने व्यक्तिगत अस्तित्व को खोकर विकिरण की एक इकाई (unit of radiation) में परिवर्तित हो जाते हैं, उसी प्रकार उपयुक्त परिस्थिति में विकिरण की इकाई कण प्रतिकण जोड़े में विभक्त हो जाती है। इस प्रकार प्रकृति सदैव तीन रूपों कण, प्रतिकण एवं विकिरण में वर्तमान रहती है[1]। प्रकृति का यह वर्गीकरण सार्वकालिक है चाहे वह आदिकाल हो अथवा जगत् सत्ता का काल। किन्तु कभी किसी वर्ग का वर्चस्व रहता है तो कभी किसी अन्य वर्ग का।

विज्ञान के अनुसार जगत् यौगिकों का समुच्चय है; ये यौगिक एलीमेन्ट्स (elements) के संयुक्त रूप हैं। एलीमेन्ट का मुख्य घटक परमाणु है। परमाणु भी इकाई नहीं है अर्थात् अखंड नहीं है। परमाणु के दो मुख्य भाग हैं एक भाग को

---

1. हेड्रन्स की तरह वरुण क्रिया में अग्रगामी है (अयं हि नेता वरुणो ऋतस्य)

नाभिक या केन्द्रक (nucleus) कहते है। इस नाभि के दो घटक है एक न्यूट्रॉन कण जो विद्युत् चार्ज रहित होता है और दूसरा प्रोटॉन (proton) जो धनात्मक चार्ज वाला होता हैं प्रत्येक एलीमेन्ट की नाभि की बनावट पृथक्-पृथक् होती है। हाईड्रोजन की नाभि में तो केवल एक प्रोटॉन ही होता है। हीलियम की नाभि में दो न्यूट्रॉन और दो प्रोटॉन कण होते हैं। नाभि में जितने न्यूट्रॉन कण होते है उतने ही प्रोटॉन कण होवें यह आवश्यक नहीं है। नाभि में प्रोटॉन कणों की संख्या पर धनात्मक चार्ज निर्भर रहता है। एलीमेन्ट की नाभि में जितने प्रोटॉन कण होते हैं उसके परमाणु में उतने ही इलेक्ट्रॉन कण होते हैं जो नाभि के चारों ओर परिक्रमा करते रहते हैं। इलेक्ट्रॉन पर ऋणात्मक विद्युत् चार्ज होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण परमाणु विद्युत् चार्ज के संबंध में उदासीन होता है। परमाणु के तीन घटक इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन हैं। इनकी संख्या में भेद होने से नये-नये परमाणु अर्थात् द्रव्य इकाई (element) की रचना होती है।

8. (ब) सृष्टि उत्पत्ति संबंधी वैज्ञानिक परिकल्पना

भौतिकी शास्त्र (Particle physics) और आधुनिक सृष्टि विज्ञान (modern comogony) ने परस्पर सहयोग से कार्य करते हुए जगत् उत्पत्ति की एक क्रमबद्ध तस्वीर तैयार की है। सर अलबर्ट आईन्सटीन की सामान्य सापेक्षिक परिकल्पना (general theory of relativity) के आधार पर आधुनिक विज्ञान ने सृष्टि उत्पत्ति का एक प्रतिमान तैयार किया है जिसे महाविस्फोट (big bang model) प्रतिमान कहते हैं। सर आईन्सटीन के समीकरण विश्व के प्रयोग सिद्ध प्रसार (expanding universe) की प्रक्रिया को यथावत् समझाते हैं।

सर आईन्सटीन के समीकरणों में जब समय का मान ($t = 0$) रखा जाता है तो तापक्रम, दबाव की चर राशियाँ (variables) असीमित होने लगती हैं। अत: यह विचार किया गया है कि उस समय तापमान व दबाव अत्यधिक उच्च स्थिति में थे, पदार्थ उस समय अत्यधिक सघन था। विश्व में जितना पदार्थ है वह उस समय एक महामंडल के रूप में सघन होकर प्रज्वलित हो गया था जो हमारे सूर्य के आकार से पर्याप्त बड़ा था[1]। उस समय तापमान अरबो डिग्री सेन्टीग्रेट (1हजार अरब डिग्री) था तथा पदार्थ का घनत्व भी अत्यधिक था। उस समय के पदार्थ की अवस्था को क्वान्टम अवस्था कहा गया है जो एक प्रकार से अपरिभाषित अवस्था ही है। तब एकाएक महाप्रसार आरम्भ हुआ।

सेकेन्ड के लाखों भागों के अन्दर ही विज्ञान ने कई अवस्थाओं की कल्पना की है जिन्हें क्रमशः गट्स काल (Guts era), क्वार्क सूप काल (Quark soup era), हेड्रन ईरा आदि कहा गया है किन्तु विशेष ज्ञान प्रमाणित काल (Standard era, after one tenth of a milisecond = .0001 second after big bang) से उपलब्ध है। उस समय प्रकृति का द्रव्य भाग स्वतंत्र कण प्रतिकण के रूप में था। यह कण प्रतिकण समुच्चय अष्टवर्गी था। ये आठ वर्ग थे- इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, पाजीट्रॉन, म्यूओन, न्यूट्रीनो, एन्टीम्यूओन, एन्टीन्यूट्रीनो। द्रव्य की इस अवस्था को प्लाज्मा (Plasma) कहा गया है। तापमान इतना उच्च था कि परमाणु तो क्या उसकी नाभि भी विखंडित हो गई थी और कण प्रतिकण स्वतंत्र सत्ता में थे। द्रव्य भाग के अतिरिक्त प्रकृति का विकिरण भाग भी था तथा द्रव्य भाग और विकिरण भाग में निरन्तर मंथन एवं आदान-प्रदान हो रहा था तथा द्रव्य भाग पर विकिरण का वर्चस्व था। पदार्थ मंडल तीव्र गति से प्रसारित हो रहा था जिससे तापमान तेजी से गिर रहा था तथा सघनता कम हो रही थी। महाविस्फोट के तीन मिनट बाद तापक्रम गिरकर करीब 1 अरब डिग्री हो जाता है। यह तापमान न्यूट्रॉन कण और प्रोटॉन कण संयोग के लिए उपयुक्त होता है। इस स्थिति में हीलियम नाभि (दो न्यूट्रॉन + दो प्रोटॉन) की रचना होती है। तब 13 प्रतिशत मात्रा प्रोटॉन और 13 प्रतिशत मात्रा न्यूट्रॉन संयोग करके 26 प्रतिशत मात्रा हीलियम बनाते हैं। महाविस्फोट के 30 मिनट बाद मूलभूत तरल 26 प्रतिशत हीलियम नाभिक तथा 74 प्रतिशत हाईड्रोजन नाभिक (केवल प्रोटॉन कण) में परिवर्तित हो गया। इस मिश्रण को कास्मिक मेटर कहते हैं जो वेद का अपांनपात् है।

यह स्थिति 3 लाख वर्ष तक विद्यमान रही। इस बीच में तापमान गिरकर 4 हजार डिग्री या इससे भी कम हो गया तथा पदार्थ का प्रसार चारों दिशाओं में हो गया। यह तापक्रम इलेक्ट्रॉन के नाभि से संयोग करने के लिए उपयुक्त था। इस काल में जगत् नें विद्यमान परमाणुओं की रचना हुई। ये परमाणु मेन्डलीफ के वर्गीकरण (periodictable) के अनुसार सप्तवर्गी है। वैदिक परमाणु (= अर्धगर्भः) भी सप्तवर्गी हैं। 10 करोड़ वर्ष बाद आकाश गंगाएँ (gallaxies), नक्षत्र (stars) तथा ग्रह (planets) बन गये। वर्तमान जगत् की आयु बिग बैंग के काल (= शून्य काल) से 10 से 20 अरब वर्ष है।

---

1. वैदिक भाषा में इसे हिरण्यगर्भः या मार्तण्डम् कहा गया है। मार्तण्डम् का अर्थ सूर्य है।

9. ऋग्वैदिक सृष्टि-उत्पत्ति एवं आधुनिक विज्ञान का तुलनात्मक विवेचना

यहाँ पर आधुनिक विज्ञान की परिकल्पनाओं तथा ऋग्वैदिक परिकल्पनाओं का तुलनात्मक अध्ययन दिया जा रहा है, जो शीर्षकानुसार है -

(1) वैदिक कारण कार्य सिद्धांत एवं विज्ञान का ऊर्जा संरक्षण सिद्धांत

वैदिक दर्शन के कारण-कार्य सिद्धांत के अनुसार उत्पत्ति रचना मात्र है। किसी वस्तु की उत्पत्ति शून्य या अत्यन्ताभाव (absolute negation) से नहीं होती। जिस द्रव्य से किसी वस्तु की रचना होती है उस द्रव्य को उपादान कारण, अधिष्ठान या केवल कारण कहते हैं। निर्मित वस्तु को कार्य कहते हैं। मिट्टी से घड़े की रचना के उदाहरण में मिट्टी उपादान कारण तथा घड़ा कार्य है। ऑक्सीजन और हाईड्रोजन गैस मिलकर पानी बनाते हैं। ऑक्सीजन, हाईड्रोजन उपादान कारण एवं पानी कार्य है। संसार में ऐसे उदाहरण का अभाव है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति उपादान कारण के बिना हो सके। इसलिए उत्पत्ति शब्द का अर्थ भ्रान्तिमूलक (misnomer) है; संस्कृत की 'सृज्' धातु का अर्थ बाहर निकालना अर्थात् प्रकट करना है इसी प्रकार धातु 'जनि' का अर्थ है प्रादुर्भावे अर्थात् प्रकट करना है, सृज्, सृष्टि या जन्म, शून्य से, अभाव से उत्पत्ति के बोधक नहीं हैं वरन् विद्यमान से ही (already existing) रूपान्तरित होकर प्राकट्य के बोधक हैं।

सांख्य दर्शन ने इस सिद्धांत को सूत्रों में निहित किया है। **"न अवस्तुनो वस्तु-सिद्धि"** अवस्तु से, शून्य से, अभाव से वस्तु उत्पन्न नहीं होती। "कारणाभावात् कार्याभाव:" अर्थात् उपादान कारण के अभाव में परिणाम नहीं बन सकता, अभाव से भाव की उत्पत्ति अंसभव है। भाव से भाव की उत्पत्ति होती है, मौजूद द्रव्य का रूपान्तर ही सृजन है। उत्पत्ति सत्ता की नहीं होती वरन् नये रूप व नाम की होती है। गन्ने से रस तथा रस से गुड़ बनाने के उदाहरण में सत्ता कभी गन्ना है तो कभी रस, तो कभी गुड़। अत: सत्ता की न तो उत्पत्ति होती है न विनाश। जब गन्ना नाम के रूप का लोप होता है तो रस नाम के द्रव्य (रूप) का प्रादुर्भाव होता है इसी प्रकार जब रस नाम के रूप का लोप होता है तो गुड़ नामक रूप का प्राकट्य होता है। अत: एक रूप के लोप होते ही सत्ता दूसरे रूप में प्रकट हो जाती है। सांख्य दर्शन कहता है - **"नाश: कारणलय:"** नाश परिवर्तन मात्र है। अत: कारण-कार्य सिद्धांतानुसार उत्पत्ति विनाश

केवल रूप का, तदनुसार रूप के उस नाम का अर्थात् केवल नाम रूप का होता है, भौतिक सत्ता इन परिवर्तनों में अविनाशी है। (ऋग्वेद के ऊर्जा संरक्षण का विवरण अध्याय 8 में है)

विज्ञान ने इसी सिद्धांत को प्रकारान्त से ऊर्जा संरक्षण के सिद्धांत में निहित किया है। यह सिद्धांत कहता है – समस्त भौतिक रासायनिक परिवर्तनों में द्रव्य की मात्रा (ऊर्जा) अपरिवर्तित रहती है। इन परिवर्तनों में न तो कोई नया पदार्थ बनता है न नष्ट होता है (matter is neither created nor destroyed)। रासायनिक परिवर्तन में पदार्थ की आन्तरिक बनावट, संरचना बदल जाती है, इससे बाह्य रूप में अन्तर आता है यही वस्तुविशेष की उत्पत्ति या नाश नाम से कहे जाते हैं। पदार्थ सत्ता (matter) उत्पत्ति विनाश के परे है। इस प्रकार वैदिक कारण-कार्य सिद्धांत आधुनिक विज्ञान का ऊर्जा संरक्षण सिद्धांत है जो पुरातन सिद्धांत का नया रूप है (old wine in new bottle).

(2) पदार्थ (प्रकृति) के मौलिक स्वरूप संबंधी विचार

विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में वर्तमान रहती है– कण, प्रतिकण एवं विकिरण, चाहे वह सृष्टि उत्पत्ति का समय हो या अन्य कोई समय।

वैदिक सिद्धांत :- ऋग्वेद के अनुसार प्रकृति के मूल तीन वर्ग विद्यमान हैं, ये हैं वरुण, मित्र, अर्यमा। इनकी संयुक्त सत्ता को अदिति कहा गया है जो अनादि अखंड सत्ता है (अध्याय 3)। व्यक्तिगत रूप से ये आदित्य कहलाते हैं अर्थात् ये अनादि शाश्वत सत्ता के अंगभूत हैं। सृष्टि, उत्पत्ति, प्रलय कोई भी काल हो इन तीनों तत्त्वों की सत्ता वर्तमान रहती है। वरुण मित्र प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं तथा विज्ञान के कण-प्रतिकण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

वरुण, मित्र विपरीत चार्ज वहन करते हैं। अर्यमा उदासीन कण है जो विज्ञान की विकिरण के फोटान्स के अनुरूप है। यह विवरण अध्याय 9 का विषय है।

(3) विकिरण संबंधी विचार

आधुनिक विज्ञान के अनुसार विकिरण (radiation) दो प्रकार की है। एक प्रकार का विकिरण सूर्य के समान प्रज्वलित लोकों से प्रकाश के रूप में उद्भूत होता है। दूसरे प्रकार का विकिरण जिसे कास्मिक विकिरण कहते हैं आदिकाल (बिग बैंग) के समय का अवशेष है। यह विकिरण विश्व में व्याप्त है तथा प्रत्येक दिशा में
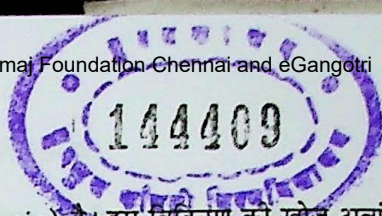
एक से मान का (isotropic) है। इस विकिरण की खोज अत्यंत आधुनिक सन् 1965 में हुई है। यह विश्वव्यापी विकिरण समस्त लोकों के गुरुत्वाकर्षण बल का जो कारण हो सकता है– अज्ञात था।

ऋग्वैदिक सोमः विकिरण है। यह प्रज्वलित लोकों से उद्भूत होता है। दूसरे प्रकार का सोम आदिकाल का अवशेष है जो लोकों के सन्तुलन की आधारभूत शक्ति है। यह दूसरे प्रकार का सोम कास्मिक विकिरण है। इसका विवरण अध्याय 10 में है।

(4) नाभि रचना व सूर्य रचना विज्ञान

ऋग्वैदिक उर्वशी प्रकृति है, पुरूरवा जीवात्मा है, अप्सरा क्रियात्मक प्रकृति के अंशभूत कण हैं। द्रप्सः ब्रह्म से टपका हुआ सारभूत भौतिक तेज अंश है (अध्याय 12), वसिष्ठ विज्ञान प्रोक्त न्यूट्रॉन है जो नाभि का प्रमुख अंश है, अगस्त्य एन्टीइलेक्ट्रॉन न्यूट्रीनो है (अध्याय 13)। आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रस्थापित परमाणु रचना विज्ञान व सूर्य ऊर्जा रचना विज्ञान का विवरण अध्याय 11 में है।

(5) सृष्टि उद्भव संबंधी ऋग्वैदिक व वैज्ञानिक विचारों का तुलनात्मक विवेचन

ऋग्वेद के अनुसार आदिकाल में महा अग्निपिण्ड उद्भूत हुआ था। ऋग्वेद व गोपथ ब्रा. में इस घटना का अग्नि वर्ण अश्व के रूपक में विवरण है (अध्याय 7), तथा इसी घटना को ऋग्वेद में हिरण्यगर्भः या मार्तण्डम् प्रतीकों में निहित किया गया है जो विज्ञान की बिग बैंग की घटना के द्योतक है। अग्नि पिण्ड का आरंभ आपः अवस्था से होता है। यह आपः विज्ञान की क्वान्टम अवस्था की प्रतीक है। अनन्तर आपः का विकास बृहती आपः में होता है। उस समय ऋग्वेद प्रोक्त तरल बृहतीः आपः अष्टवर्गी था जो विज्ञान की परिकल्पनानुरूप है। विज्ञान कथित द्रव्य प्लाज्मा भी अष्टवर्गी था। इस प्रकार दो महत्त्वपूर्ण परिकल्पनाओं में साम्य हैं (अध्याय 8)।

महा अग्निताण्डव के समय प्रकृति का जो विकिरण (रेडियेंट इनर्जी) भाग कार्यरत था उसे ऋग्वेद में सोमः प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। सोम कोई पेय नहीं है। इन्द्र द्वारा सोमपान, ईश्वर द्वारा अपने देहभूत आकाश के स्थल विशेष (गैलेक्सियों के केन्द्र) में विकिरण ऊर्जा का एकत्रीकरण एवं सघनीकरण का प्रतीक है। विज्ञान से हमें ज्ञात होता है कि उस समय विकिरण का घनत्व अत्यधिक उच्च

था (एक लिटर आयतन में 400 करोड़ किलोग्राम अर्थात् 4000 टन प्रति एक घन सेंटीमीटर)।

(6) वृत्र वज्र की रूपरेखा

यहाँ यह बता देना प्रकरणानुरूप है कि महाविस्फोट के पूर्व के आदि अनुबंध (initial conditions which led to big bang) क्या थे? इसका ज्ञान विज्ञान में उपलब्ध नहीं है। अर्थात् महाविस्फोट क्यों हुआ, किन कारणों से हुआ विज्ञान इससे अनभिज्ञ है। किन्तु ऋग्वेद में इस अग्नितांडव का कारण इन्द्र-वृत्र-वज्र रूपक के माध्यम से कहा गया है।

ऊर्जाओं की नियोजित टक्कर वज्रपात नाम से कही गयी है। इस टक्कर की तैयारी हेतु इन्द्र द्वारा सोमपान किया जाता है जो कास्मिक विकिरण एकत्रीकरण का प्रतीक है। यह वज्रपात प्रारंभिक सुपरनेबुला को आदि संवेग (initial momentum) प्रदान करता है। प्रत्येक गतिविज्ञान (dynamic problem) के प्रश्न में आदि गति एवं अनुबंध (initial conditions) का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

इस वज्रपात से समस्त दृढ़ अवरोधों का उच्छेद एक बार में हो जाता है तथा एक साथ ही एक बृहत् अग्निकाण्ड होता है जिसे आधुनिक विज्ञान में बिग बैंग कहते हैं। उस समय के तरल का नाम बृहतीः आपः है जिसमें विज्ञान की अनेक अवस्थाओं सहित प्लाज्मा अवस्था सन्निहित है। इस अग्निकाण्ड के परिणामस्वरूप समस्त तरल मंडल में फुग्गे की तरह चतुर्दिक प्रसार होता है। ऋग्वेद में इस स्थिति का प्रतीक मातरिश्वा है। प्रसारित होते हुए द्रव्य से पदार्थ की बृहतीः आपः अर्थात् प्लाज्मा अवस्था समाप्त हो जाती है तथा पदार्थ एक नवीन अवस्था में प्रवेश करता है जिसे ऋग्वेद में अपांनपात् कहते हैं। यह विज्ञान की नाभिकीय अवस्था का द्योतक है जिसमें हीलियम एवं हाईड्रोजन नाभिक की उत्पत्ति होती है (अध्याय 6)।

(7) परमाणु रचना

यथा समय पदार्थ एक अन्य अवस्था में प्रवेश करता है जिसे ऋग्वेद में सप्त अर्धगर्भः कहते हैं। अर्धगर्भ का अर्थ अन्तरिम, अस्थिर, भ्रूणावस्था है जो विज्ञान की परमाणु अवस्था की द्योतक है। विज्ञान में परमाणु अवस्था भी अन्तरिम अवस्था मानी गयी है। सप्तवर्गी परमाणु की उत्पत्ति को सप्त सिन्धु का प्रभूत होना कहा गया

है। ये प्रवाह व्यापक दिक् में उद्भूत होते हैं। विज्ञान के मेन्डलीफ टेबिल के अनुसार परमाणु सप्त पीरियड वाले हैं अर्थात् सप्तवर्गी हैं (अध्याय 8)। इसी अन्तराल में गैलेक्सियों (आकाश गंगाओं) एवं प्रज्वलित लोकों की उत्पत्ति होती है। इन्द्रवृत्र, हिरण्यगर्भ, मातरिश्वा, त्वष्टा, भृगु, अंगिरस, सप्तसिन्धु लोकों की उत्पत्ति आदि प्रकरणों का क्रमबद्ध विवरण ग्रन्थ के द्वितीय भाग में दिया जा रहा है।

(8) पदार्थ की अवस्थाओं संबंधी वैदिक मान्यता

ऋग्वेद में पदार्थ की छः अवस्थाएँ निम्नानुसार है–

पदार्थ की त्रिवर्गी मूल अवस्था अदितिः प्रतीक से कही गयी प्रथम अवस्था ब्राह्मी स्थिति है जिसे अन्य शास्त्रों में प्रकृति कहा गया है। इसका प्रतिपादन अध्याय 3 का विषय है।

पदार्थ की द्वितीय अवस्था त्रिवर्गी मूल तत्त्व की क्रियाशील अवस्था है जो आपः, सलिलं या माया प्रतीक से विज्ञेय है। पदार्थ की तृतीय अवस्था बृहतीः आपः है जिसमें प्लाज्मा सहित बिग बैंग के समय की अवस्थाएँ निहित हैं।

पदार्थ की चौथी अवस्था अपांनपात् कही गयी है जो विज्ञान की नाभिक अवस्था की द्योतक है इस अवस्था में हाईड्रोजन हीलियम नाभि बनती है। इस अवस्था को विज्ञान में कास्मिक मेटर भी कहते हैं (अध्याय 6)।

पदार्थ की पाँचवीं अवस्था अर्धगर्भः कही गयी है जो विज्ञान की परमाणु अवस्था की द्योतक है। यह दर्शन की तन्मात्रा है। पदार्थ की छठी अवस्था सप्तवर्गी दृश्य जगत् है जिसमें पाँच महाभूत, दिक्, काल सात वर्ग हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या अध्याय 16 में है।

अव्यक्त मूल सत्ता से पाँच कलाओं में होता हुआ दृश्य जगत् के रूप में छठी कला में ब्रह्म दिन में विकसित होता तथा ब्रह्म रात्रि काल में दृश्य जगत् शनैः शनैः मूल अव्यक्त सत्ता में लीन होता हुआ यह भौतिक सत्तात्मक पदार्थ अनादि- अनन्त काल चक्र में परिभ्रमण कर रहा है। पदार्थ की सत्ता का अभाव कभी नहीं होता। मात्र प्रकृति की छः कलाएँ क्रमशः विकसित होती हैं व लय होती हैं। सृष्टि काल में किसी भी समय भौतिक पदार्थ की छः अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था में होना ही चाहिए। इस प्रकार पदार्थ की सत्ता की निरन्तरता बनी रहती है। ऋग्वेद के अनुसार विज्ञान का ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत स्वयं सिद्ध प्रतिज्ञा (axiom) है, (अध्याय

8)। इस प्रकार यह सत्य प्रतिपादित होता है कि सृष्टि उत्पत्ति संबंधी ऋग्वैदिक परिकल्पना आधुनिक विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों को अपनी त्रिकालदर्शी वाणी में संजोये हैं।

10. ऋग्वेद का दर्शन

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का पुरुष देहभूत उपादान कारण प्रकृति एवं जीव प्रजा सहित अधिष्ठातृभूत ईश्वर को सन्निहित करता है। इस प्रकार सूक्त का पुरुष तीन शाश्वत् तत्त्व ईश्वर, जीव एवं प्रकृति का बोधक है। प्रकृति व अनन्त जीव प्रजा उस पुरुष की देह है। इन्हीं तीन सनातन तत्त्वों को सूक्त के तीसरे मन्त्र में अमृत कहा है (क्र. 15) -

त्रिपादस्य अमृतं दिविः।

उसके तीन चरण प्रकाशस्वरूप अविनाशी हैं।

यह तीन चरण वाला, तीन शाश्वत शक्तियों वाला पुरुष सर्वोच्च स्थिति है - यथा - (क्र. 16)

त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि।।

त्रिपात् पुरुषः तीन चरणों वाला पुरुष ऊर्ध्वः उत् ऐत् सर्वोपरि रूप से जाना गया अस्य पादः पुनः इह उसका एक चरण (प्रकृति) फिर से यहाँ (जगत् रूप में) अभवत् प्रकट हुआ। ततः वहाँ से, उससे परे सः वह अशन भोजन व्यापार से युक्त जीवों में, अनशने भोजन व्यापार से रहित जड़ वर्ग में विश्वङ् सर्वत्र अभि चारों ओर (वि, अक्रामत्, क्रम = चलना, पहुँचना की लङ् ल., जैसे देवा इमान् लोकानक्रमन्त, शत. ब्रा. कोश पृ. 309) विशेषता से पहुँचता, व्यापता है।

पुरुष के एक चरण से जीव प्रजा के अन्न पर निर्भर मन, प्राण, देह इन्द्रियादिक व भौतिक जड़ वर्ग जगत् प्रादुर्भूत हुआ। इस सूक्त में व्यापक पुरुष का कई प्रकार से वर्णन है। "पुरि शेते इति पुरुषः" निर्वचन से पुरुष का देह होना आवश्यक है। यह देह प्रकृति एवं जीव प्रजा के संघात का नाम है। देह तथा देहिन् - देह में व्याप्त देहधारी ईश्वर दोनों के संघात, समग्र रूप का नाम पुरुष है।

गीता में भौतिक जड़ वर्ग अपराप्रकृति के अन्तर्गत है तथा जीव प्रजा पराप्रकृति के अन्तर्गत है। इस प्रकार केवल प्रकृति के अन्तर्गत कभी-कभी दोनों प्रकृतियों (परा एवं अपरा) को सम्मिलित किया गया है।

वेद का पुरुष उपनिषद् में ब्रह्म कहा गया है अर्थात् तीन अनादि तत्त्व ईश्वर, जीव प्रकृति के संघात का नाम ब्रह्म है। यह तथ्य अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा गया है। श्वेताश्वतर उपनषिद् अध्याय 1 का 9 वाँ श्लोक है - (क्र. 17)

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतन्।।

ज्ञाज्ञौ सर्वज्ञ एवं अज्ञानी द्वौ अजौ दो अजन्मा ईश अनीशौ अधिष्ठाता, अधिष्ठित हैं। अजा ही एका तथा एक अजन्मा (प्रकृति) भोक्तृ उपभोक्ता (जीव) के लिए भोग्यार्थ उपभोग के योग्य सामग्री से युक्ता युक्त है। इनमें आत्मा परमात्मा विश्वरूप: सर्वव्यापी अनन्त: अनन्त है। च तथा हि अकर्ता भोगयुक्त कर्मों से परे है। यदा जब जीव एतत् त्रयम् इन तीनों को ब्रह्मं ब्रह्म रूप से विन्दते प्राप्त करता, जानता है तब (पूर्वानुवृत्ति से) बन्धन से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर उपनिषद् एवं गीता तक एक ही दर्शन का प्रसार देखा जाता है।

प्रकृति शब्द ऋग्वेद में नहीं पाया जाता, उसके स्थान पर अदिति शब्द आता है। मूल शक्ति साम्यावस्था की प्रथम अवस्था से पूर्ण रूप से निर्मित दृश्य जगत् की स्थिति तक क्रमश: पाँच अवस्थाओं को पार करके जाती है। इस अवधि को सृष्टिकाल कहते हैं जो ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है। अनन्तर दृश्य जगत् में नियोजित भौतिक द्रव्य विपरीत क्रम से प्रलयावस्था को प्राप्त होता है जिसमें सम्पूर्ण भौतिक द्रव्य अव्यक्त मूल अवस्था को प्राप्त हो जाता है। प्रलयावस्था वाले काल को ऋग्वेद में रात्रि कहा गया है। इस प्रकार यह अव्यक्त से व्यक्त होने का व व्यक्त से पुन: अव्यक्त अवस्था में जाने का क्रम एक अनन्त चक्र में चल रहा है। सृष्टिकाल को ऋग्वेद ने उषाकाल कहा है तथा इस उषाकाल में ईश्वरीय निर्माणकर्त्री शक्ति अनादि-अनन्त काल चक्र में परिभ्रमण कर रही है। इसी तथ्य को गीता ने इन शब्दों में व्यक्त किया है -

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रियुगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्र विदो जनाः।।

उसी प्रकार अनादि सान्त (अन्तवान्) आवागमन (पुनर्जन्म) के काल चक्र में जीवात्मा परिभ्रमण कर रहा है। मानव जीवन प्राप्त होने पर जीव का लक्ष्य मोक्ष होता है। ऋग्वेद में इस अवस्था को अमृत, स्वर्ग, परमपद आदि नामों से संबोधित

किया है, किन्तु यदि परमपद प्राप्त न हो सके तो जीव का परमपद से निम्न कोटि का, दूसरी श्रेणी का लक्ष्य अभ्युदय है जिसका अर्थ यह है कि मानव जन्म के अनन्तर पुनः मानवजन्म प्राप्त करना क्योंकि मानव जीवन में ही परमपद की साधना संभव है। इन दो मार्गों को ऋग्वेद में देवयान मार्ग एवं पितृयान मार्ग कहा गया है। देवयान मार्ग से अमृत तथा पितृयान मार्ग से पुनः माता-पिता के माध्यम से मानवजन्म प्राप्तव्य है। इन्हें क्रमशः श्रेय और प्रेय मार्ग भी कहा गया है। अब इस विषय पर ऋग्वेद के मन्त्र (10/88/15) से प्रकाश डाला जाता है। (क्र. 18)

द्वे स्रुती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च।।

मर्त्यानाम् मरणाधर्मा के विषय में अहं मैने द्वे दो स्रुती धारा, मार्ग, अश्रृणवं सुने हैं, देवानाम् देवों का देवयान मार्ग उत तथा पितृणाम् पितरों का पितृयान मार्ग ताभ्याम् उन दोनों मार्गों से इदं यह विश्वम् एजत् विश्व चला है, यत् जिससे पितरं मातरं च पिता तथा माता को सम् एति सम्यक् प्रकार से प्राप्त करता है।

ध्यान रहे, प्रत्येक योनि के माता-पिता होते हैं किन्तु मानव योनि को छोड़ शेष योनियों में माता-पिता का संबंध शैशव अवस्था तक ही सीमित रहता है। अस्तु, विशुद्ध भावनात्मक क्षेत्र में माता-पिता केवल मानव जन्म में प्राप्तव्य हैं इसे पितृयान मार्ग कहते हैं। जिस मार्ग से निःश्रेयस (निर्वाण) की सिद्धि होती है उसे देवयान मार्ग कहते हैं।

11. वेद में विज्ञान होने संबंधी विचार

कुछ विद्वानों का विचार है कि वेद में विज्ञान कैसे हो सकता है? यह ऋचाओं की व्याख्या में प्रतिरोपित की गयी है। इस मत पर समुचित विचार करना आवश्यक है।

यह प्रश्न बहुत स्वाभाविक ही है। क्योंकि वेद को एक सतत विचारक्रम के ग्रन्थ के रूप में आज तक नहीं देखा जा सका है। सम्पूर्ण वेद तो दूर की वस्तु है, किसी सूक्त से एक प्रवाहमान विचारधारा उद्भव हो रही हो ऐसी व्याख्या का भी अभाव है। प्रश्न यह है कि यदि एक ही सूक्त में इतने असम्बद्ध विचार विद्यमान हैं, तो ऋषि ने उन ऋचाओं को एक सूक्त के अन्तर्गत क्यों रखा, उन ऋचाओं को एक सूक्त की संज्ञा ही क्यों दी। स्पष्टतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कम से कम इस वर्तमान युग में वेद में विद्यमान विद्याएँ प्रकाश में नहीं आ सकी हैं। भूतकाल की

स्थिति का हमें ज्ञान नहीं है। अत: यह विश्वासपूर्वक कैसे कहा जा सकता है कि वेद में अमुक विद्या है अथवा नहीं है। जब एक सूक्त की ऋचाओं के मध्य भी कोई सतत प्रवाहमान विचार क्रम नहीं देखा जा सका, तो किसी विद्या का विकास व विस्तार वेद में किस प्रकार हुआ है, यह कैसे देखा जा सकता है?

सबसे प्रमुख बात यह है कि किसी भी ऋचा की अच्छी व्याख्या करने का प्रयास तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक व्याख्याकार अपने आप को उस ऋचा विशेष के शब्द और शब्दार्थ तक सीमित रखता है तथा विचारान्तर्गत ऋचा के बाहर अन्य ऋचाओं में उस ऋचा के रहस्य की खोज नहीं करता। इसके लिये यह स्वीकार करना आवश्यक है कि ऋचाएँ परस्पर संबंधित हैं तथा एक ऋचा की व्याख्या करने में अन्य ऋचाओं के मध्य जो परस्पर संबंध है तथा जो क्रमबद्धता है उसे उभारकर प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। विद्या चाहे वह भौतिक विज्ञान हो या राजनीति शास्त्र हो, समाजशास्त्र हो, नीतिशास्त्र हो या दर्शन या सृष्टि उत्पत्ति विषय हो या कोई अन्य, विद्या एक क्रमबद्ध विषय ही होता है। व्यस्थित विषय का विकास भी क्रमपूर्वक ही होता है। यदि ऋचाओं के विषय परस्पर असम्बद्ध हैं। उनमें परस्पर कोई तालमेल नहीं है, तो परस्पर विच्छिन्न (unconcerned), अयुक्त (unconnected), सामञ्जस्यरहित (uncompromising) ऋचाओं की व्याख्या करके किसी विद्या के अल्प स्वरूप को भी नहीं उभारा जा सकता। फिर विज्ञान की तरह क्रमबद्ध विषय के व्यवस्थित रूप को प्रस्तुत करना तो दूर की बात है।

वेद की ऋचाओं के मध्य परस्पर संबंध है तथा परस्पर निर्भरता है; यह पक्ष आजतक अनदेखा रहा है। इसका कारण जो भी हो पर यह एक सत्य है। कदाचित् परंपरावादी यह मानते आये हैं कि वेद की प्रत्येक ऋचा अपने आप में पूर्ण है जो कि एक सर्वथा भ्रम है। वहीं आधुनिक विचारक इस पूर्वाग्रह से ग्रसित रहे हैं कि वेद में कोई क्रमबद्ध विषय हो ही नहीं सकता; जैसा कि प्रसिद्ध विचारक प्रोफेसर मेक्समूलर ने कहा है[1] कि जो हमारे समक्ष एक क्रमरहित एवं अत्यन्त अव्यवस्थित रूप में आया है उसे क्रमबद्ध करने के प्रयास से दूर ही रहें अर्थात् उसे क्रमबद्ध विषय के रूप में प्रस्तुत करना असंभव ही है।

In all such matters, however, we must be careful not to go beyond the evidence before us, and abstain as much possible form attempting to systematise and generalise what comes to us in an unsystematised, nay often chaotic form

Six systems of Indian Philosophy.

जहाँ मान्यता ऐसी हो वहाँ वेद की ऋचाओं से क्रमबद्ध विज्ञान विषय को प्रस्तुत हुआ देखकर आश्चर्यचकित हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक ही है। लेखक को वेद में प्रतिपादित हुआ भौतिक विज्ञान का विषय व सृष्टि उत्पत्ति विषय अपने मूल सहज रूप में अल्प श्रम में उपलब्ध हुआ है जिस विज्ञान को बटोरने में लेखक को आश्चर्यमिश्रित आनन्द की अनुभूति हुई है।

12. प्राचीन सभ्यताएँ

प्राचीन काल में अनेक उन्नत सभ्यताएँ हो चुकी हैं। दजला फेरार घाटी (ईराक) की सुमेरियन तथा असीरिया का असीरियन (असुर) सभ्यता, मिश्र की सभ्यता, दक्षिण अमेरिका और मैक्सिको की मायन सभ्यता तथा सिन्धु घाटी (मोहन जोदड़ो, हड़प्पा लोथल, कालीबंगन आदि) की आर्य सभ्यता के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। अनेक ख्याति प्राप्त पुस्तकों के लेखक जर्मन विद्वान् एरिक वान डेनोकन ने अपनी पुस्तकों में सहस्रों अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किये हैं जो इस तथ्य को प्रस्थापित करते हैं कि प्राचीन सभ्यताएँ पर्याप्त विकसित थीं। क्या यह तथ्य कम महत्त्वपूर्ण है कि जापान, एशिया और अमेरिका की सम्मिलित वैज्ञानिक टेकनॉलोजी भी मिश्र के पिरामिडों के निर्माण में सक्षम नहीं है। तो मिश्र के उन निर्माणों को असभ्य युग का अवशेष कैसे कहा जा सकता है। मिश्र के पिरामिडों में एक और चमत्कार पाया गया है वह यह है कि उन पिरामिडों के अन्दर के कक्ष में फल, फूल, दूध रख देने पर फूल सूखते नहीं, फल-सड़ते नहीं और दूध फटता नहीं है वरन् दही के रूप में जम जाता है तो विज्ञान के सिद्धान्तों का कितना गहरायी से अध्ययन व प्रयोग किया गया है ये तथ्य आज भी उस सत्य के साक्षी हैं। इसी प्रकार महरोली स्थित लोहे की लाट धातु रसायन विद्या का एक ज्वलंत नमूना है जो पर्याप्त कारण व्यतीत होने पर जंक रहित है।

वाल्मीकि रामायण (17/5-20) में अनेक विचित्र अस्त्रों का वर्णन है जो विश्वामित्र ने राम को दिये थे इनमें आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, सुलानेवाले, प्रशमन, वर्षण, शोषण, रुलाने वाले, मोहित करने वाले (अर्थात् मस्तिष्क को सुन्न करने वाले), पैशाचास्त्र आदि अनेक अस्त्रों का वर्णन है। यह कवि की निरी कल्पना नहीं है ऐसे अस्त्रों के विवरण अरेबियन नाईट्स की कहानियों में भी नहीं मिलते। रामायण युद्ध काण्ड (सर्ग 67) में पुष्पक विमान का विवरण है, जिसमें पर्याप्त स्थान था और जो एक ही दिन में लंका से किष्किन्धा में रुकते हुए अयोध्या पहुँच गया था। लंका

से अयोध्या तक की यात्रा एक ही दिन में हो सकती है इस वास्तविकता का ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव के बिना नहीं हो सकता। महाभारत में ब्रह्मास्त्र के प्रभाव का सजीव चित्रण है जो न्यूक्लेयर डिवाईस (nuclear) के अनुरूप है ब्रह्मास्त्र का प्रयोग वर्जित था न्यूक्लेयर का प्रयोग आज वर्जित है। क्या यह साम्य कल्पना पर आधारित है? संजय का हस्तिनापुर में बैठे-बैठे कुरुक्षेत्र के युद्ध का विवरण देखना टेलीविजन के समक्ष किसी यन्त्र पर आधारित है। यदि दिव्य दृष्टि को वरदान माना जाये तो वह वरदान धृतराष्ट्र को भी दिया जा सकता था। दैवी चमत्कार के लिये भौतिक चक्षु की आवश्यकता नहीं होती। अतः संजय का कार्य यन्त्र के द्वारा सम्पन्न हुआ था। आकाशवाणियों के द्वारा सूचनाओं का प्रसारण भी यान्त्रिक विधि के प्रयोग की ओर इंगित करता है। हो सकता है कि ये ज्ञान कुछ व्यक्तियों तक सीमित रहा हो, उन व्यक्तियों ने इन्हें व्यक्तिगत उपलब्धि बनाकर रखा जैसा कि हमें ज्ञात होता है कि ब्रह्मास्त्र का ज्ञान केवल भार्गवों को था, ऐसे ही कुछ अस्त्रों का ज्ञान केवल अगस्त्यों को था विमानादि का ज्ञान भरद्वाजों व मय दानव जाति के कुछ लोगों को था। व्यक्तिवादी धरोहर होने से यह ज्ञान कालान्तर में क्षीण होकर लुप्त हो गया है। यही हाल आयुर्विज्ञान एवं ज्योतिषशास्त्र का हुआ। हाल ही में विश्वविख्यात वैज्ञानिक सर कार्ल सागन ने टेलीविजन पर प्राचीन सभ्यताओं के ज्योतिष संबंधी सूक्ष्म यन्त्रों का जो परिचय दिया उससे यह विदित होता है कि पृथ्वी पर सभ्यताएँ और असभ्यताएँ साथ-साथ पनपती व नष्ट होती रही हैं। एक ही काल में समस्त पृथ्वी पर मानव एक सी असभ्य दशा में रहा हो ऐसा कभी नहीं हुआ। आज भी जहाँ दिल्ली और बम्बई में आधुनिक सभ्यता चरम सीमा पर है वहीं कुल्लू की घाटी, बस्तर के अबूझमांड, लद्दाख सरगुजा, नागालैंड आदि में 10 से 20 सहस्त्र वर्ष पुरानी कही जाने वाली धातु प्रस्तर युग की सभ्यता विद्यमान है जहाँ आज भी नर-नारी हड्डी, कौड़ी और पत्तों से शृंगार करते हैं। अतः यह कहना कि प्राचीन काल में सभ्यताएँ पर्याप्त विकसित नहीं थी एक मनगढ़न्त कल्पना है जो इस तथ्य को प्रस्थापित करने के लिये की गयी है कि पृथ्वी पर प्रथम बार सभ्यता ने ग्रीस से रोम, रोम से यूरोप और यूरोप से विश्व में पदार्पण किया है। किन्तु यह कहानी निरा झूठ साबित होती है जब हम ग्रीस के इतिहास में पढ़ते हैं कि ग्रीस के विद्वान् सुकरात, प्लेटो आदि ज्ञान प्राप्त करने सिकन्दरिया (मिश्र) जाया करते थे, तो ग्रीस के ज्ञान का स्रोत मिश्र था मिश्र की परम्परा में कहा गया है सहस्त्रों वर्ष पूर्व मिश्र का उपनिवेश स्थापित करने वाले पूर्व से आये (secrets inside Egypt—Paul Brunton)। इस शृंखला की आदि

कड़ी क्या थी? वह कितनी प्राचीन है? उसमें मानव कितना विकसित था? यह सब गहन अंधकार से आवृत्त है। इस संक्षिप्त चर्चा में इस विषय में अधिक कुछ कहना संभव नहीं है।

13. वेद में विज्ञान

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि विज्ञान के किसी सिद्धान्त को लेकर उसकी खोज वेद में नहीं की गयी है वरन् ऋचाओं से स्वाभाविक रूप में जिस विज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है, जो विज्ञान सहज ही ऋचाओं से प्रस्फुटित हुआ है उसे ही प्रकाश में लाना लेखक का उद्देश्य रहा है। मूल प्रकृति के विकसित होते हुए आयामों (पक्षों) के स्वरूप का विवरण विज्ञान है। यदि ऋषियों द्वारा प्रस्तुत किया गया वह विवरण सत्य है तो यह स्वाभाविक परिणाम ही है कि वह आधुनिक विज्ञान से वहाँ तक मेल खाए जहाँ तक दोनों परस्परा सत्य का प्रतिपादन करती हैं किन्तु यह ध्यान रहे कि वेद प्रतिपादित ज्ञान अपरिवर्तनशील है, स्थायी है। अतः जो ज्ञान-विज्ञान धारा ऋचाओं से सहज ही प्रवाहित हो रही है वही सदैव प्रवाहित होती रहेगी, विज्ञान के बदलते हुए आयामों से उसे कुछ लेना-देना नहीं है। विज्ञान यदि वेद प्रतिपादित सत्य पर ही घूमफिर कर आ जाए तो इसमें क्या संशय है? वेद में संपूर्ण विज्ञान नहीं है? इसमें मूलभूत सिद्धान्तों की तथा सृष्टि उत्पत्ति के तारतम्य में प्रकृति के परिवर्तित होते हुए स्वरूप के सोपानों की महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ सन्निहित हैं जिसे आधुनिक विज्ञान की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। सुदूर भूतकाल में यह ज्ञान प्रयोगसिद्ध अनुभव के आधार पर प्राप्त किया गया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। अतः वेद ज्ञान के रहस्यमयी स्रोत की ओर ध्यान जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। जैसा कि परंपरा से कहा चला आ रहा है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है यदि यह सत्य है तो इसकी सबसे बड़ी कसौटी भी यही है कि इसमें सृष्टि के चरणों की रूपरेखा होना ही चाहिए, क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में सब कुछ है अतः उसकी प्रेरणा से जिस ज्ञान का उद्भव हुआ है उसमें यदि सृष्टि उत्पत्ति का ज्ञान न हो तो वह ज्ञान ईश्वरीय है इसमें सन्देह को स्थान होना सर्वथा स्वाभाविक है।

वेद में कुछ ऐसा भी विज्ञान है जिसका ज्ञान आधुनिक विज्ञान में नहीं है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सृष्टि का आरंभ एक महाविस्फोट से होता है वैज्ञानिक भाषा में इसे बिग बैंग थ्यौरी कहते हैं। इस महाविस्फोट का सिद्धान्त वेद में भी है जिसका विवरण अध्याय 25 में दिया गया है। इस महाविस्फोट के पूर्व की परिस्थितियों

का ज्ञान, कि जिनके कारण महाविस्फोट हुआ था आधुनिक विज्ञान में नहीं है किन्तु वेदों में है। महाविस्फोट का कारण इन्द्र (ईश्वर) द्वारा वज्रसंचालन कहा गया है। इन्द्र का यह कृत्य ऊर्जाओं के नियोजित संघर्षण का द्योतक है। वेद की यह परिकल्पना कि महाविस्फोट ऊर्जाओं की टक्कर का परिणाम है विज्ञान के क्षेत्र में अज्ञात है। इसी प्रकार विज्ञान में सृष्टि-उत्पत्ति-लय के अनवरत क्रम का सिद्धान्त भी अज्ञात है। वेद का यह सिद्धान्त अनादि अनन्त काल के मध्य की खाई को पाटता है। किन्तु इस सृष्टि के आरंभ होने (अर्थात् 10 से 20 अरब वर्ष) के पूर्व प्रकृति में क्या हो रहा था विज्ञान इस तथ्य से सर्वथा अनभिज्ञ है।

ऋग्वेद में इन्द्र वृत्र संबंधी अनेक ऋचाएँ हैं। कुछ विद्वानों ने वृत्र के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की कल्पना करते हुए उसे एक असुर माना है तदनुसार इन्द्र को देवों के अधिपति पद पर आसीन करते हुए ऋचाओं में देवासुर संग्राम की कल्पना की है। पौराणिक गाथाओं में स्पष्टतः कथानक या इतिहास का विवेचन है किन्तु ऋचाओं में इन्द्र वृत्र का जो विवरण है उसका बुद्धिपूर्वक विश्लेषण करने पर इतिहास या कथानक के सादृश्य कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। उदाहरण के लिए वृत्र कौन था, कहाँ उसका साम्राज्य था, उसकी सेना कैसी थी, उसके अस्त्र कैसे थे, उसका इन्द्र से क्या विवाद था आदि ऐतिहासिक घटना के लिए जिन सूचनाओं की आवश्यकता होती है उन सभी का, इन्द्र वृत्र संबंधी हजारों ऋचाओं के होते हुए भी अभाव रहस्यमयी एवं आश्चर्यजनक है और इस रहस्योद्घाटन का द्योतक है कि (मानव आकृति, रहित-अपात्अहस्तः क्र० 46) वेद का वृत्र किसी कथानक का पात्र नहीं हो सकता वरन् वह सृष्टि रचना संबंधी एक प्राकृतिक घटना का प्रतीक है। इन्द्र, वृत्र, वज्र, संबंधी समस्त वैदिक विज्ञान अध्याय 20 से 22 में विवेचित है।

निरुक्त ने वृत्र को बादल कहा है तथा आवरण करने वाला कहा है किन्तु यह पृथ्वी पर छाये रहने वाला वर्षा का बादल नहीं है जो सूर्य प्रकाश को अवरुद्ध करता है। इस आये दिन होने वाली साधारण घटना को बालक वृद्ध सभी जानते हैं। वेद में स्थान पाकर उस साधारण घटना का गौरव नहीं बढ़ता वरन् वेद के ऋषियों के सम्मान को ठेस अवश्य पहुँचती है। वास्तविक तथ्य कुछ और है वृत्र बादल अवश्य है किन्तु वह वर्षा का पार्थिव बादल नहीं है वरन् वह आदि सृष्टिकाल की ऊर्जा का बादल है जो सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति के पूर्व (आत् इत्-सूर्यम् दिवि आरोयः दृशे....। -क्र० 59) आकाश में, गैलेक्टिक केन्द्र में नक्षत्रों, आकाश गंगाओं के मध्य भाग में (रजसः इन्द्र पारे - क्र० 54) मूल तत्त्व अप् (fundamental plasma

substance) के सघन मंडल का बादल अपनी शक्ति के कारण घुमड़-घुमड़ कर सृष्टि विकास का स्वाभाविक अवरोध करता है। प्रारंभिक ऊर्जा के बादल को विज्ञान में सुपर नोभा, सुपर नेबुला कहा जाता है वेद में उसे बादल कहना अनुरूप कल्पना है। वृत्र उस आदि मूल तत्त्व के बादल की विकास अवरोधक कला है जो अन्ततः प्रकृति में ही लीन हो जाती है (सू: उत्तरा पुत्रः अधरः आसीत् –क्र० 87)। तत्त्व की चरम सघनता के कारण उस मंडलाकार बादल को पर्वत की संज्ञा (पर्वतं महाँ उरूं –क्र० 71; पर्वतेषु क्षियन्तं–क्र० 89) दी गयी है। इस प्रकार ग्रन्थ में वृत्र संबंधी अनेक पक्षों को प्रकाश में लाकर यह अकाट्य रूप से निश्चय हुआ है कि वृत्र सर्जन अवरोधक प्राकृतिक व्यवधान है जिसका उच्छेद कर सर्जन को गति देने हेतु प्रारंभिक उर्जा को दिशा प्रदान करना अनिवार्य कदम है। यह कृत्य ईश्वर द्वारा वज्र संचालन के नाम से कहा गया है। यह वज्र संचालन आदि सृष्टि काल की उर्जाओं के सघन बादलों की नियोजित टक्कर का द्योतक है। इस टक्कर में सृष्टि उत्पादन की सामर्थ्य व गति जो स्वाभाविक रूप से उसी तरह विकास पाती है जैसे प्रक्षेपित किया गया रॉकेट निर्धारित लक्ष्य पर प्रयाण करता है। इन्द्र वृत्र के माध्यम से कही गयी सृष्टि विकास हेतु प्रक्षेपण के इस विज्ञान को अध्याय 20 से 23 तक प्रकाश में लाया गया है।

विज्ञान के अनुसार सृष्टि से पूर्व विश्व में जितना पदार्थ है वह उस समय एक महामंडल के रूप में सघन होकर प्रज्ज्वलित हो गया था जो आकार में हमारे सूर्य से सौ गुना बड़ा था। ऋग्वेद में इस घटना के प्रतीक हिरण्यगर्भः एवं मार्ताण्डम् हैं। इस विषय की विस्तृत विवेचना अध्याय 25 में की गयी है।

लेखक की विवेचना सर्वथा मौलिक एवं क्रान्तिकारी है। यहाँ तक कि लेखक ने प्रसंगरहित होने से कहीं-कहीं निरुक्त भाष्य को भी त्याज्य और हेय माना है। उदाहरणार्थ मंडल 3 सूक्त 31 की प्रथम दो ऋचाओं के निरुक्त भाष्य की निस्सारता को यहाँ प्रकाश में लाया जाता है जिस भाष्य में दायभाग की कल्पना की गयी है। ऋचा है–

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिम् सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे।।

अर्थ–यज्ञ के विधान को आदर भाव से देखते हुए ज्ञानी वहन करने वाला

1. निरुक्तम् खण्ड-1 डॉ० उमाशङ्कर शर्मा ऋषि, पृ० 70-76.

पति घोषित करता है कि वह पुत्री से नाती या दौहित्र पाएगा, जहाँ पिता पुत्री के लिये पति खोजता है वहाँ शान्त मन से अपने को रखता है। (निरु० भाष्य)

पुरुष ज्ञानी हो या अज्ञानी वह अपनी पुत्री से उत्पन्न पुत्र को नाती रूप में पाएगा ही। अत: यहाँ ज्ञानी विशेषण सर्वथा निरर्थक है पुत्री के लिए पति खोजते समय शान्त मन से रहता है (या नहीं रहता) इस प्रतिज्ञा (statement) में कौन सी असाधारण बात है जिसके लिये ऋचा रची गयी है। एतदर्थ यह भाष्य पूर्णत: निष्प्रयोजन एवं निस्सार है, इसमें ऋचोक्त आशय प्रकट ही नहीं हो सका है अत: स्वीकार करने योग्य नहीं है। शब्दार्थ भी दोषपूर्ण है दीधितिं का अर्थ विधान नहीं है अदा √दीधि = चमकना से दीधिति का अर्थ किरण है, ऋत का अर्थ यज्ञ नहीं है प्राकृतिक प्रवाह है तथा (दुहितुः सेकं) का अर्थ पुत्री के लिये पति प्रतिरोपित किया हुआ अर्थ है, सेकः का अर्थ प्रसार है और वह्निः का अर्थ वहन करने वाला। इस प्रकार यह अर्थ प्रतिरोपित है, यथार्थ से कहीं दूर है।

वास्तव में ऋचा की विषयवस्तु के निर्धारण के अभाव में ऋचा में कहा गया तथ्य उद्भाषित ही नहीं हो सकता है। सूक्त की 3 री और 4 थी ऋचा में–

–सूक्त प्रोक्त विषयवस्तु (subject matter) का अति स्पष्ट प्रतिपादन हुआ है प्रथम दो ऋचाओं की विषयवस्तु उसी संदर्भ में है, उसी तारतम्य में ऋचा में चर्चित विषय को प्रकाश में लाना आवश्यक है। सूक्त की 3 री ऋचा है–

अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः।।

ज्वालाओं से लपलपाती हुई अग्नि उत्पन्न हुई प्रदीप्त किरणों के महान् शोले संयुक्त हुए। इस ऊर्जाओं को वहन करने वाली ज्वाला यज्ञ के महान् गर्भ से संगृहीत हुई शीर्षस्थ शक्ति उद्भूत हुई।

ऋचा में महः शब्द चार बार आया है जो असाधारण स्थिति का द्योतक है। ऋचा में आदि सृष्टि में उद्भूत महाग्नि काण्ड का सजीव चित्रण है जिसे आधुनिक विज्ञान ने महाविस्फोट (Big Bang) की संज्ञा दी है। यही वेद की हिरण्यगर्भः स्थिति है आगामी ऋचा में इसी विषय की चर्चा हुई है।

सूक्त के विषय का आरम्भ दायभाग की चर्चा से होकर उस विषय का विकास व अभिवृद्धि अग्नितांडव में होना महान् आश्चर्य का प्रसंग है। वह सूक्त के ऋषि के विवरण में क्रमबद्धता के सामान्य विवेक के अभाव का सूचक है। किन्तु वस्तुस्थिति

ऐसी नहीं है जैसी कि भाष्यकारों ने ऋचोक्त विषय को न समझकर वेद पर थोपी है। सूक्त के 3 री और 4 थी ऋचा की व्याख्या से यह बात स्पष्ट प्रकाश में आती है कि सूक्त के आरम्भ से ही महाविस्फोट का प्रसंग चला आ रहा है तद्नुसार ही ऋचाओं का भाष्य अपेक्षित है।

उपर्युक्त प्रथम ऋचा का भाष्य इस प्रकार है–

पुत्री = क्रियात्मक प्रकृति आप: का शासन करता हुआ ज्ञानवान् ईश्वर विद्युन्मय किरण के सत्य प्राकृतिक बहाव अर्थात् प्रकृति के गुण स्वरूप का मान करता हुआ अग्निमय नाती (अपां नपात्) को प्राप्त होगा। जहाँ पिता ईश्वर पुत्री आप: के प्रसार का मार्ग निर्दिष्ट करता हुआ सामर्थ्य के साथ ज्ञान के द्वारा सम्यक् रूप से तीव्रता से गया था।

वेद के रूपक में ईश्वर पिता, मूल प्रकृति पत्नी, प्रकृति का प्रथम विकार (परिणाम) आप: ईश्वर की पुत्री है तथा प्रकृति का द्वितीय विकार अपां नपात् नाती है। इन्हीं के संबंध में ऋचा में चर्चा है।[1]

आदिकाल में क्रियात्मक प्रकृति आप: (ईश्वर की पुत्री) जब सृष्टि रचना हेतु नियोजित होती है तब उसमें अवस्थाओं का परिवर्तन अत्यन्त तीव्र गति से होता है विज्ञान के अनुसार उस समय क्षण के दस हजारवें भाग में भी प्रकृति की अवस्था में परिवर्तन हो रहा था। ऋचा में इसी तथ्य को प्रकाश में लाया गया है। और यह कहा गया है कि इतनी द्रुतगति से होने वाले प्रकृति के परिवर्तन ईश्वरीय इच्छा, ज्ञान और सामर्थ्य का अतिक्रमण करके नहीं हुए थे वरन् ईश्वरीय इच्छा ज्ञान व योजनानुसार ही हुए थे।

आदि सृष्टिकाल में प्रकृति की दशा क्या थी इस विषय की अत्यन्त सूक्ष्म जानकारी ऋचा में दी गयी है जिसका ज्ञान अत्यन्त आधुनिक समय में सर आईन्सटीन की बिगबैंग थियोरी के बाद हुआ है। इस प्रकार पूर्वोक्त निरुक्त भाष्य में ऋचोक्त ज्ञान-विज्ञान पूर्णरूप से तिरोहित हो गया है।

इसी प्रकार आगामी ऋचा का भाष्य तोड़-मरोड़ कर रखा गया है। ऋचा है–

न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुनिधानम्।
यदि मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्त्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्।।

---

1. इन ऋचाओं के पूर्ण भाष्य अध्याय 9 में देखें।
2. गेल्डनर ने सनितु: का अर्थ विजेता, पाणिग्रहण करने वाला किया है इस प्रकार अर्थ को मरोड़ा गया है।

निरु० भाष्य—शरीर से उत्पन्न पुत्र ने अपनी बहन को उत्तराधिकार धन नहीं दिया, उसने उसके गर्भ को उसके पति के भण्डार गृह के रूप में बना दिया। जब माताएँ सन्तान को उत्पन्न करती हैं तब उन पुण्यकर्त्ताओं में एक तो काम करने वाला होता है और एक लाभ उठाने वाला। टिप्पणी में लिखते हैं–इस मंत्र में पुत्री का अधिकार निषेध दिखलाया है।

यह भाष्य पूर्णत: ऋचोक्त विषय से भिन्न है।

इस ऋचा में अत्यन्त उच्च विज्ञान व सृष्टि रहस्य है। सृष्टि आरंभ होने के पूर्व समस्त द्रव्य (matter) मूल आद्या अवस्था में होता है। इसे अदिति या माता कहा गया है। सृष्टि रचना के अन्तराल में मूल आद्या प्रकृति दो भागों में विभक्त हो जाती है एक भाग पूर्णरूप से अणु रूप में (in the form of atoms) होता हुआ जगत् के द्रव्यों (so called elements-oxygen, hydrogen Nitrogen Iron, Silver, Aluminium and other metals carbon and their compoudns in which form these are found on planets) के रूप में विकसित होता है। प्रकृति के इसी अंश को (**सनितुः**) भोक्ता कहा गया है। प्रकृति का दूसरा बहुत बड़ा भाग सूर्यादि नक्षत्रों में नाभिक (Nuclear) रूप में तथा विश्व में व्याप्त ऊर्जा के अन्य रूपों में रहता है। पूर्वोक्त ग्रहों के रूप में विकसित भाग उर्जा के रूप में रहने वाले भाग पर पोषित है। प्रकृति का प्रथम परिणाम आप:, जो ऊर्जा रूप है, प्रकृति की पुत्री कही गई है और दूसरा द्रव्य रूप विकसित (further evolved) अंग पुत्री का पुत्र अर्थात् नाती कहा गया है जो भोक्ता है। ऊर्जा के रूप में सुरक्षित रहने वाला अंश कर्ता है, जो विकसित हुए भोक्ता अंश को निरन्तर शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार जगत् में ऊर्जा (energy) और द्रव्य (matter) के परस्पर संबंध से विकसित जगत् (in molecular & compound form called matter) चल रहा है, टिका हुआ है। इस परम सूक्ष्म वैज्ञानिक तथ्य को निष्प्रयोजन ही पारिवारिक दायभाग पर घटाया गया है और वेद के ज्ञान की ज्योति को अंधकार से आवृत कर दिया गया है।

पुराणों में इसी ऊर्जा भाग को शेषनाग कहा गया है। द्रव्य-रचना से बचा भाग शेष है जो गैलेक्सियों में कुण्डलाकार (spiral shaped) है। इसी के आधार पर द्रव्य जगत् है।

इस प्रकार प्रकृति के दो भाग हैं– ऊर्जा (energy) और द्रव्य (matter)। ऊर्जा प्रकृति की पुत्री और द्रव्य ऊर्जा का पुत्र अर्थात् प्रकृति का नाती है। यदि ऊर्जा पूरी की पूरी द्रव्य रूप में परिणत हो जाय तो जगत् ठहर नहीं सकता, चल नहीं

सकता। यह सभी को विदित है कि पृथ्वी पर वनस्पति व प्राणि जीवन सूर्य ऊर्जा पर आधारित है। संपूर्ण ऊर्जा द्रव्य में परिवर्तित न हो जाय; इसे ही ऋचा ने अपने सांकेतिक रूपक में कहा है कि प्रकृति (द्रव्य रूप को) नाती को समस्त ऊर्जा कोष देकर रिक्त न करे। ऊर्जा और द्रव्य का सन्तुलन जगत्-स्थायित्व के लिये परमावश्यक वैज्ञानिक सत्य है जो ऋचा के रहस्यमयी वाणी में पूर्णरूप से सुरक्षित है। इस प्रकार वेद मन्त्रों में अत्यन्त सूक्ष्म एवं गम्भीर ज्ञान छिपा हुआ है जिसे आंशिक रूप में प्रकाश में लाना लेखक का उद्देश्य है।

इस सूक्त (मंडल 3 सूक्त 31) की अन्य ऋचाओं की व्याख्या आकाशीय पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण संबंधी अध्याय 32 में देखें और विषय के अटूट तारतम्य पर विचार करते हुए वैदिक ज्ञानधारा को हृदयङ्गम करें। तब आपको प्रो. मेक्समूलर का यह कथन सर्वथा अयुक्त ही प्रतीत होगा कि वेद के सूक्तों की एक बड़ी संख्या बचकानापन की पराकाष्ठा लिये हुए जटिल व निम्न सामान्य कोटि की है।[1]

14. ब्राह्मणग्रन्थ व पुराणों में ग्रह विज्ञान

ब्राह्मण ग्रन्थों और ब्रह्माण्ड पुराण में कुछ अत्यन्त चौंकाने वाले उद्धरण हैं उन पर कुछ कहना अत्यन्त आवश्यक है। मैं इन उद्धरण को दो भागों में रखता हूँ। प्रथम वे उद्धरण हैं जो लोकों के चक्राकार व्यूहबद्ध भ्रमण और गुरुत्वाकर्षण पर प्रकाश डालते हैं; यथा-

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतिंषि दिवमण्डनम्।
अव्यूहेन च सर्वाणि तथैवासंकरेण वा।।
ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते ज्योतिषां गणः।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह।।

ब्रह्माण्ड पुराण, अध्याय, 22

सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र सहित समस्त ज्योतिष-मंडल-समस्त ब्रह्माण्ड एक धुरे पर भ्रमण कर रहा है, घूम रहा है। पुराण रचनाकाल में इस ज्ञान का होना अति आश्चर्यजनक है क्योंकि विज्ञान को इस ज्ञान की उपलब्धि 20वीं सदी के पूर्व नहीं थी। पुनश्च यह ज्ञान कि ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी यहाँ तक अन्तरिक्ष अर्थात्

---

1. A large number of Vedic hymns are childish in extreme, tedius, of low common place
Chips from a German Workshop, p. 27, by F. Maxmuller.

ब्रह्माण्ड का आकार मंडलाकार अर्थात् गोलाकार (spherical) है। पुरातत्त्ववेत्ताओं की इस समस्त परिकल्पना को पूर्णरूप से ध्वस्त कर देता है कि प्राचीन मानव असभ्य और जंगली था। ब्राह्मण ग्रन्थों के उद्धरण विचार को उद्वेल्लित करने वाले है; यथा–

परिमण्डल आदित्यः परिमण्डलः चन्द्रमाः परिमण्डला द्यौः,
परिमण्डलमन्तरिक्षं परिमण्डला इयं पृथिवी।

जैमिनीय ब्राह्मण 1/257

पृथ्वी गोल है, द्यौ अर्थात् (गैलेक्सी) आकाश गंगा मंडलाकार है, ब्रह्माण्ड मंडलाकार है। ये सब तथ्य जयोतिर्विज्ञान (astronomy) के असाधारण ज्ञान के होने की पुष्टि करते हैं। यही नहीं समस्त लोक सर्पाकार भ्रमण में संलग्न है यह ज्ञान भी लिपिबद्ध है। यथा–

इमे वै लोकाः सर्पा यद्धि किं च सर्पत्येष्वेव। तल्लोकेषु सर्पति।

श०ब्रा०, 7/4/1/27

इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञी। –ऐ०ब्रा० 5/23 समस्त लोक घूम रहे हैं पृथ्वी घूम रही है। यह सब ज्ञान था। इसके स्पष्ट प्रमाण के विद्यमान होते हुए अन्यथा धारण करने का स्थान ही नहीं बनता और यह प्रस्थापित होता है कि न्यूटन और आईन्सटीन के हजारों वर्षों पूर्व ब्रह्माण्ड के मंडलाकार होने तथा सूर्य, पृथ्वी तथा नक्षत्रादि के साथ समस्त भूगोल भ्रमण होने का ज्ञान विद्यमान था।

आज विज्ञान ने प्रकृति का अत्यन्त विस्तृत एवं सूक्ष्म ज्ञान व यन्त्र उपलब्ध कर लिये हैं। इनके प्रयोग के आधार पर यह ज्ञान संभव हुआ है कि पृथिवी पर संक्रमण काल में अनेक बार अग्निवर्षायुग और हिमयुग हो चुके हैं। किन्तु सुदूर भूतकाल में पृथ्वी पर वर्षा युग के तथा जल प्रलय के होने का विवरण पुराणों में होना अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। यह सूर्य ताप से पृथिवी के दग्ध होने की घटना लाखों वर्ष पुरानी होनी चाहिए क्योंकि इस अग्नि दाह में पृथ्वी के समस्त जीव नष्ट हो गये थे। अनन्तर जीव प्रजा का नवीन रूप से सर्जन हुआ। पृथ्वी पर विद्यमान वर्तमान जीव सृष्टि 50 लाख वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। अतः यह सम्पूर्ण दाह की घटना इससे पुरानी होनी चाहिए। इस घटना की स्मृति का संरक्षण कैसे संभव हो सका जब पृथ्वी के समस्त जीव पूर्णतः नष्ट हो गये थे, यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। पुराण में जो यह लिखा है कि दाहकाल आने के संकेत जानकर देव विमानों से

अन्तरिक्ष के अन्य लोकों को चले गये वही इस घटना के संरक्षण का स्रोत प्रतीत होता है। इससे दो बातों का पता चलता है–

एक तो अन्यन्त प्राचीनकाल में पृथ्वी पर अत्यन्त उन्नत संस्कृति का होना और द्वितीय उस संस्कृति के लोगों की विमानादि के द्वारा अन्तरिक्षयात्रा की क्षमता।

अब पुराण के उन अंशों को उद्धृत किया जाता है जिनमें उपर्युक्त कथित घटनाएँ श्लोकबद्ध वर्तमान हैं यथा–

जंगमाः स्थावराश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः।
शुष्काः पूर्वमनावृष्ट्या सूर्यस्ते प्रधूपिताः।।
तदा तु विवशाः सर्वै निर्दग्धा सूर्यरश्मिभिः।।

ब्रह्माण्ड पुराण, 1.6.46-47)

सूर्य ताप से दग्ध पृथिवी के इस अग्निदाह में न केवल नदियाँ सूख गईं थीं वरन् पर्वतों के धरातल जल कर पिघल गये थे तथा समस्त वनस्पति सहित जीव नष्ट हो गये थे, संपूर्ण जल वाष्प में परिणत हो गया था।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि देव शब्द ने प्राचीन इतिहास के विवरण के संबंध में अनेक भ्रान्तियाँ फैलाई हैं। इन ग्रन्थों की रचना काल के समय देव का अर्थ विद्वान् श्रेष्ठ पुरुष ही था जो कालान्तर में विवरण में रोचकता लाने के लिये स्वर्ग के देवता बना लिये गये। अब यहाँ यह कहा जा सकता है कि यह विवरण काल्पनिक है; किन्तु ऐसी घटनाएँ पृथ्वी पर हो चुकी हैं, यह तथ्य विज्ञान समर्थित है। फिर जो वास्तव में हो चुका है, उसे काल्पनिक कैसे कह सकते हैं? यह विवरण तो आँखों देखा हाल प्रतीत होता है, किसने देखा। उन पुरुषों ने विमान से देखा जो ताप का पूर्व संकेत पाकर विमान से पृथ्वी को छोड़कर सौर्यमंडल के बाहर अन्य ग्रहों में चले गये और पृथ्वी पर जब वातावरण पुनः मानव के रहने योग्य हो गया, तो वे या उनके वंशज पृथ्वी पर वापिस आ गये।[1] यह तथ्य स्पष्ट रूप से कहा गया है–

चतुर्युगसहस्रान्ते सह मन्वन्तरैः पुरा।
क्षीणकल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाले उपस्थिते।।

---

1. Sir Fred Hoyle one of Britains leading Astronomer delivered a talk at London's Royal institute recently. The heading of talk was, "Life on Earth may have been spawned millions of years ago at another part of universe. Doomed by crisis in its own environment intelligent beings somewhere in space planted life on earth. Hindustan times 18th Jan. 19 82.

तस्मिन् काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये।
कल्पावसानिका देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे।।
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः।।

सहस्र चतुर्युग के अन्त में मन्वन्तरों का अंत होने पर कल्प के अन्त में दाह काल उपस्थित होने पर पृथ्वीवासी वैमानिक देवगण (श्रेष्ठ मानव) दुःख से विचलित होकर पृथ्वी लोक छोड़कर महर्लोक (अन्तरिक्ष में अन्य पृथ्वी जैसे वासस्थल) में बसने चले गये (ब्रह्म०पु०अ० 6) उन लोगों से ही यह ज्ञान सुरक्षित हो सका।

पृथ्वी पर जो ऐसे दाह हुए हैं इन्हीं से भूगर्भ में धातु, कोयला पेट्रोल आदि की रचना हुई है इस विषय को भी पुराणपाठ ने यथावत् कहा है–

धातुस्तनोति विस्तारे न चेतास्तनवः स्मृता। –ब्र०पु०, 1.5.56

इसके अनन्तर जलप्रलय का विवरण है–

सर्वं सलिलमेवासीत पृथिवी यत्र निर्मिता। –वाल्मीकि रामा०
ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टाग्नौ पृथ्वी तले। –ब्र०पु०, 1.6.60

इस प्रकार यह देखा जा रहा है कि पृथ्वी पर परिवर्तनों का पुराण का विवरण आज की वैज्ञानिक जानकारी से प्रमाणित होता है।

जैसा कि कुछ विद्वानों का मत है पुराण 1500 से दो हजार वर्ष पूर्व रचे गये तो दो हजार वर्ष पूर्व पृथ्वी पर ऐसे कौन से संकेत विद्यमान थे जिनसे हजारों लाखों वर्ष पूर्व हुए अग्निदाह की घटना का ज्ञान हो सका। यदि अग्निदाह की घटना व जल प्रलय की घटना की जानकारी प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित परंपरा से ज्ञात नहीं है तो असभ्य मानव के मन में इन विचारों का उदय हुआ ही कैसे? जो ज्ञान विज्ञान के कष्ट साध्य प्रयोगों के उपरांत आधुनिक शोध का परिणाम है। तो बात यहाँ पहुँची कि पुराणों के जितने विवरणों की परीक्षा (verification) हम विज्ञान द्वारा करते हैं वे विवरण विज्ञान की कसौटी पर सत्य और खरे सिद्ध होते हैं। अतः उन्हें काल्पनिक नहीं कह सकते। काल्पनिक विवरण में इस सीमा तक आकस्मिक संयोग की संभावना नहीं (harmony of that kind is not possible by mere chance) हो सकती।

इसमें एक बात सामने आती है और वह यह है कि अतिशयता से युक्त और असंभव विवरणों को छोड़कर पुराणों के अन्य विवरण हम किस प्रकाश में देखें? पुराण एवं ब्राह्मण ग्रंथों का ज्योतिष संबंधी ज्ञान जिसका विवरण पूर्व अनुच्छेदों में

दिया गया है वेद में विज्ञान होने के तथ्य का पूर्णरूप से समर्थन करते हैं। अस्तु वेद में विज्ञान प्रतिरोपित किया गया है यह मत सर्वथा अयुक्त है। यदि मन्त्रों में विज्ञान व्यवस्थित रूप में थोपा जा सकता है तो इतिहास तो और भी सरलता से थोपा जा सकता है। किन्तु देखा यह गया है कि संपूर्ण प्रयास के बाद भी इन्द्र-वृत्र-संबंधी अथवा इसी प्रकार के अन्य जैसे वसिष्ठ उत्पत्ति संबंधी किसी भी बोधगम्य इतिहास की रूप रेखा भी बनाने में विद्वान् आज तक सफल नहीं हुए हैं। इसके विपरीत ऋचाओं से तर्कसिद्ध, बोधगम्य स्वाभाविक विवरण से युक्त एवं क्रमबद्ध विज्ञान विषय को लेखक के द्वारा प्रकाश में लाया गया है जिससे न केवल अनेक ऋचाओं के मध्य परस्पर संबंध प्रस्थापित हुआ है वरन् ब्राह्मणग्रन्थों तथा अन्य शास्त्रों के विवरण में भी एकरूपता स्थापित हुई है।

15. वैदिक विवरण में कथा नहीं है विज्ञान है

परंपरागत भाष्य में मंडल 7 की ऋचाओं में वसिष्ठ को मानव माना गया है और उसकी उत्पत्ति की कथा रची गयी है जिसमें अज्ञानवश वसिष्ठ के मित्र वरुण के दो पिता अस्वाभाविक कल्पना की गयी है जबकि प्रजनन विज्ञान से यह प्रसिद्ध है कि दो वीर्याणु एक ही मादा डिम्ब (रज) की गर्भ रूप में परिणति नहीं कर सकते। इस कथा के रचने में निरुक्त द्वारा की गयी उर्वशी की व्याख्या को दृष्टि ओझल किया गया है। निरुक्तकार ने उर्वशी को (**उरु अश्नुते**) विशाल क्षेत्र को व्याप्त करने वाली कहा है जो स्पष्ट रूप से प्रकृति है। भाष्यकार दुर्ग तथा स्कन्द ने तो स्पष्ट रूप से इसे विद्युत कहा है। इसी प्रकार अप्सरा को अप् (मूल तत्त्व) में संचरण करने वाली कहा गया है। अप् मूल तत्त्व का सृष्टि में नियोजित प्रथम स्वरूप (**अप् एव ससर्ज आदौ**) है यह जान लेने पर हमारे समक्ष ऋचोक्त विशुद्ध विज्ञान प्रकट हो जाता है वह है मित्र-वरुण कणों के द्वारा उदासीन कण वसिष्ठ (न्यूट्रान) की रचना का विज्ञान।

एक दूसरे उदाहरण के रूप में यह देखने योग्य है कि ऋचाओं में जिस सोम का यह लक्षण दर्शाया गया है वह आकाश में प्रवाहित होता है और ज्योतिर्पिण्डों का स्पर्श कर पार निकल जाता है। वह शराब की तरह पेय कैसे हो सकता है? यदि यह ध्यान रहे कि देव भौतिक शक्तियाँ हैं तो उन भौतिक शक्तियों को उत्तेजित करने वाला सोम निश्चय ही विकिरण ऊर्जा (radiant energy) हो सकती है; जो वास्तव में इन लक्षणों की भी पूर्ति करती है कि वह आकाशगामी है। वह लोकों के पिण्डों को पार करके निकल जाती है। उसका सृष्टि रचना में योगदान है। सोम ऊर्जा को आदिकाल में इन्द्र (ईश्वर) ने सोमपान (ऊर्जा पर आधिपत्य) करके ही सृष्टि

रचना हेतु वज्र प्रहार किया था। ऊर्जाओं के संघर्षण से मूल तत्त्व को आदि गति (initial momentum) प्रदान की थी। ये समस्त रूपक हमारे सामने वेद में निहित सृष्टि-उत्पत्ति-रहस्य को तत्क्षण (एकदम) स्पष्ट रूप से उभार देते हैं। इस प्रकार वेद के सप्त सिन्धु प्रतीक में पंजाब की सात नदियों के भूगोल के होने की कल्पना थोपी गयी है। जबकि ऋचा में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि (**अवसृजत सप्त रश्मिः सर्त्तवे सप्त सिन्धून्**) सर्जन के क्रम में पीछे (बाद में) प्रकट किया सप्त किरणों को, सप्त सिन्धु को बहने के लिये। अतः सप्त सिन्धु सप्तवर्गी किरणों के आकाशवर्ती प्रवाह हैं; जो सृष्टि-उत्पत्ति क्रम में उस समय उत्पन्न होते हैं जबकि आकाश में ज्योतिर्पिण्ड अपनी-अपनी कक्षा निर्धारण (**आरोहन्तम् द्याम् रोहिणम् अस्फुरत; वही ऋचा**) कर रहे थे। काल और स्थल इन दोनों के निर्धारण के बिना इतिहास की कल्पना सर्वथा अचिन्तनीय है। वृत्र के उन्मूलन के उपरान्त ही सप्त सिन्धु के प्रवाह प्रकट हुए थे यह तथ्य ऋचाओं में बार-बार कहा गया है। अतः सप्त सिन्धु की उत्पत्ति वृत्र के उन्मूलन के उपरान्त ही होती है। इस प्रकार वज्र संचालन, वृत्र उन्मूलन, अग्निकाण्ड, लोकों की उत्पत्ति (वही ऋचा), सोम की भूमिका व सप्त सिन्धु की उत्पत्ति इन सभी घटनाओं के मध्य परस्पर अविच्छिन्न संबंध है। जिससे यही प्रस्थापित होता है कि सप्त सिन्धु सृष्टि उत्पत्ति क्रम में उद्भुत हुए सप्तवर्गी किरणों के आकाशवर्ती प्रवाह हैं। पंजाब की नदियों से इनका दूर का भी नाता नहीं है केवल सिन्धु नद नाम साम्य के आधार पर पंजाब में सप्त सिन्धु की कल्पना वस्तु-स्थिति से सर्वथा भिन्न है और इतिहास भी इस पक्ष में नहीं है। वह क्षेत्र सिन्धु देश तो कहा गया है पर कभी भी सप्त सिन्धु देश नहीं कहा गया वरन् पंजाब ही कहा गया है।

कुछ भाष्यकारों ने ऋचोक्त सभी युगपद् घटनाओं को इस प्रकार पृथक् करके भाष्य किया है मानो ऋचा में कहीं की ईट कहीं का रोड़ा मिलाया गया हो। वे (सातवलेकर) ऋचा क्र० 183 के भाष्य में लिखते हैं।

योहत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा बलस्य यो अश्मनोरन्तरग्निम् जजान...................।

मेघ को मार कर सात नदियों को बहाया बल असुर की छिपाई गायों को प्रेरित किया। दो पत्थरों के बीच अग्नि को उत्पन्न किया।

पत्थरों के बीच अग्नि को उत्पन्न करना, गायों को प्रेरित करना और मेघ को मारकर नदियों को बहाना इन घटनाओं के बीच परस्पर कोई संबंध नहीं है। फिर इन्हें बार-बार एक ही ऋचा में स्थान देने का औचित्य समझ के बाहर है। (अश्मनोः

अन्तः अग्निं जजान) बादल (आदिकाल के निहार मंडल) के बीच अग्नि को उत्पन्न किया (हत्वा अहिम) इस प्रकार वृत्र रूपी अवरोध का विनाशकर (बलस्य अपधा) आवरण हटाने वाले ने (गा० उदाजत) लोकों को ऊपर चलाया और (सप्त सिन्धून् अरिणात्) सप्त प्रवाहों को गति दी।

स्वामी दयानन्द ने भी मेघों के बीच अग्नि उत्पन्न करना और पृथिवी को ऊपर प्रेरित करना भाष्य किया है।

फिर जब इस ऋचा के पूर्व की ऋचा (2/12/2) यह कह रही है कि यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तम्नात् स जनास इन्द्रः। जिसने विस्तृत अन्तरिक्ष (inter stellar space), लोकों के बीच की दूरी को विशेष माप से स्थापित किया और जिसने द्युलोक-प्रकाशित लोकों को आकाश में थामा वह इन्द्र है और उसी सूक्त की एक अन्य ऋचा (क्र० 7वीं) में इन्द्र को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

> **यो सूर्यं यो उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः।** (जिसने सूर्य को, जिसने सृष्टि काल को उत्पन्न किया जो मूलतत्त्व का संचालक है वह इन्द्र है।

तो बात स्पष्ट हो गयी कि लोकों को विशेष नाप से स्थापित करने वाले, सूर्य और सृष्टि काल को उत्पन्न करने वाले प्रकृति के अधिपति ईश्वर को सूक्त में इन्द्र कहा गया है। सूर्य की उत्पत्ति से उषा काल की उत्पत्ति तो अपने आप हो जाती है फिर भी ऋचा में उषा की उत्पत्ति का सूर्य के साथ पृथक् से कहा जाना ऋचोक्त उषा को सूर्य आधारित उषा काल से भिन्न प्रतिपादित करता है यह जानना आवश्यक है।

अब यह अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि सूक्त के वचन **'गा उदाजत्'** का तात्पर्य लोकों को आकाश में संचालित करने से है जैसा कि इसी सूक्त की 12वीं ऋचा (क्र० 184) में यह तथ्य स्पष्ट रूप में प्रतिपादित हुआ देखा जा सकता है।

> **यो आरोहन्तम् द्याम् रोहिणम् अस्फुरत्।**
> आकाश में चढ़ते हुए द्युलोक को आकाश चढ़ने की स्फूर्ति दी।

इस प्रकार वज्र संचालन, वृत्र उन्मूलन, अग्नि काण्ड, सप्त सिन्धु-प्रवाह एवं लोकों का अपनी-अपनी कक्षा में निर्धारण करने की घटनाएँ ऋचाओं में सृष्टि विकास क्रम की परस्पर संबंधित युगपद् घटनाएँ मानी गयी हैं। अतः इनके स्वरूप के यथावत् ज्ञान का इनके घटित होने के काल से घनिष्ठ संबंध है।

अध्याय 20 में वृत्रवध की घटना का काल निर्धारण किया गया है। वृत्र विनाश

की घटना सूर्य और द्युलोक (गैलेक्सियों) की उत्पत्ति की पूर्ववर्ती सृष्टिकाल के आरंभ की है। ऋचा (1/32/4) (क्रमांक 60) देखें।

यद इन्द्र अहन् प्रथमजां अहीनाम् आत् सूर्यम् जनयन् द्याम् उषासं। (जब इन्द्र ने अहियों में प्रथम अहि को मारा अनन्तर ही सूर्य को, द्युलोक को और सृष्टिकाल को उत्पन्न किया। इस स्पष्ट घोषणा से इतिहास संबंधी समस्त रेत का महल धराशायी हो जाता है और जहाँ इन्द्र का सृष्टिकर्ता स्वरूप उभरकर सामने आता है; वहीं वृत्र और उससे संबंधित वज्र, सप्त सिन्धु आदि प्रतीकों में निहित घटनाओं के वैज्ञानिक स्वरूप का अनावरण होने लगता है।

ब्रह्माण्ड में प्रकाशित लोकों (द्युलोक) और सूर्य की उत्पत्ति एक ही समय में हुई और उसी समय सप्तवर्गी परमाणु रचना हुई इस वैज्ञानिक सत्य के परिप्रेक्ष्य में ऋचा प्रोक्त में जब एक सतर्क द्रष्टा ऋचाओं के आदिकाल के विवरण में द्युलोक का आकाशीय मार्ग पर आरोहण और सप्त सिन्धु की उत्पत्ति इन युगपद् घटनाओं का उल्लेख हुआ देखता है तो वह वेद में विज्ञान के मूलभूत तथ्यों के प्रतिपादित होने के सत्य से आश्वस्त हुए बिना नहीं रह सकता। यह सत्य की स्वयं अभिव्यक्ति करने की स्वशक्ति है जो इस तथ्य का प्रकाशक है कि ज्ञान स्वप्रकाश है उसे परकीय प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

दो हजार से अधिक इन्द्र वृत्र संबंधी ऋचाओं के होते हुए भी किसी बोधगम्य इतिहास को निकालने के भागीरथी प्रयास का सफल न होना स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि जिस विषय का जहाँ अभाव हो उस विषय का वहाँ प्रतिरोपित किया जाना असम्भव है। इसके विपरीत ग्रन्थ में आद्योपन्त अध्याय 2 से अध्याय 36 तक दी गयी व्याख्या में उषा, इन्द्र, वृत्र, त्वष्टा, वज्र, हिरण्यगर्भ, भृगु, मातरिश्वन्, सप्त सिन्धु, मरुत, ऋभु आदि प्रतीकों में निहित वैज्ञानिक सत्य का ही अनावरण नहीं हुआ है वरन् उनमें निहित दिक्-काल, सृष्टि-उत्पत्ति-क्रम का परस्पर संबंध व विकसित होती हुई सृष्टि के चरणों की स्पष्ट रूपरेखा चलचित्र की भाँति उभरकर सामने आती है जिसे आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में देखे जाने पर वेद में अव्यवस्थित और निरर्थक विवरण होने की भ्रांति तिरोहित हो जाती है और हम सृष्टि-उत्पत्ति के विभिन्न चरणों के गंभीर रहस्यों की जानकारी उपलब्ध करते हैं किन्तु ऋषियों का उद्देश्य विज्ञान के ग्रन्थ की रचना करना नहीं था। अपितु दिव्य प्रेरणा के फलस्वरूप प्राप्त अलौकिक ज्ञान को ईश्वरीय महिमा के गुणगान के तारतम्य में अभिव्यक्त करना ही उन्हें अभिप्रेत था किन्तु अलौकिक ज्ञान से अभिभूत हुए ऋषियों की वाणी

1. देखिए प्रो० मेक्समूलर की टिप्पणी, पृ० 2 प्रस्तावना।

न तो सामान्य स्तर की सीधी भाषा का रूप ले सकी न ही विज्ञाननिष्ठ भाषा का रूप ले सकी और वह वाणी सांकेतिक रूपकमय कविता के रूप में व महिमा को निहित करती हुई निःसृत हुई।

प्रमुख भेद

विज्ञान में उन आदि परिस्थितियों का ज्ञान उपलब्ध नहीं है जिनके कारण महाविस्फोट होता है। विज्ञान महाविस्फोट के पूर्व की स्थिति से पूर्णतया अनभिज्ञ है। इसके विपरीत ऋग्वैदिक विज्ञान में महाविस्फोट के पूर्व की स्थिति की परिकल्पना है। ऋग्वेद के अनुसार आदिकाल में मूल तत्त्वों में एक ऐसी स्थिति निर्मित हो जाती है कि प्रकृति (भौतिक सत्तात्मक पदार्थ) अपने आप विकसित होने में असमर्थ हो जाती है। प्रकृति के स्वाभाविक गुण के कारण उस समय के तरल में क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का चक्रीय क्रम (cyclic reversible reaction) प्रस्थापित हो जाता है जिसके कारण विकास क्रम अवरुद्ध हो जाता है। ऋग्वेद ने इस स्थिति को वृत्रः प्रतीक में निहित किया है। समस्त तरल में क्रिया-प्रतिक्रिया के अनेकों केन्द्र उद्‌भूत हो जाते हैं। इन केन्द्रों के चारों ओर एकत्रित हो द्रव्य (around centres of mass) क्रिथा-प्रतिक्रिया रूप चक्रीय विवर्तन में संलग्न हो जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण तरल क्रिया-प्रतिक्रिया के अनेकों केन्द्रों में विभक्त हो जाता है। इन मात्रा केन्द्रों (centres of mass) को शम्बर के सौ किले कहा गया है तथा सम्पूर्ण स्थिति को वृत्र या शम्बर कहा गया है। यह 100 की गिनती वास्तविक नहीं है प्रतीकात्मक है। उस समय विज्ञान के अनुसार प्रकृति के द्रव्य भाग (matter) और प्रकृति के विकिरण भाग के मध्य निरन्तर मन्थन और विनिमय हो रहा था अर्थात् द्रव्य भाग का परिवर्तन विकिरण में और विकिरण का विभाजन कण-प्रतिकण में हो रहा था। विश्वास किया जाता है कि इसी क्रिया-प्रतिक्रिया के चक्रीय क्रम को ऋग्वेद ने वृत्र की संज्ञा दी है। तदनुसार-

वृत्र = विकिरण = कण + प्रतिकण।

इस वृत्र स्थिति में आपः में विकास अवरुद्ध हो जाता है। यह स्थिति ऐसी है जिसका अन्त अपने आप नहीं हो सकता। अस्तु इस वृत्र-स्थिति के उन्मूलन हेतु ईश्वरीय हस्तक्षेप की आवश्कयता है अन्यथा प्रकृति सृष्टि विकास क्रम की ओर अनन्त काल तक भी उन्मुख नहीं हो सकती। इस प्रकार ऋग्वैदकि सृष्टि-विज्ञान के अनुसार सृष्टि-उत्पत्ति हेतु ईश्वर का होना अनिवार्य है। यह ऋग्वैदिक सृष्टि-विज्ञान का आधुनिक विज्ञान से प्रमुख भेद है।

16. एक महत्त्वपूर्ण साम्य

वृत्र स्थिति के द्वारा निर्मित गत्यवरोध (deadlock) के निवारण हेतु ईश्वर (इन्द्र) द्वारा वज्र संधान किया जाता है। वज्र प्रहार उस समय विद्यमान तरल की विशाल मात्राओं के मध्य टक्कर एवं संघर्षण (collision of huge masses) का प्रतीक है।

17. वज्र द्रव्य की मात्रा की सघनता का द्योतक है

ध्यान रहे, विज्ञान के अनुसार उस समय विकिरण तथा द्रव्य अत्यधिक सघन थे (एक घन सेन्टीमीटर विकिरण की मात्रा = 4 हजार टन)। ईश्वर द्वारा इस वज्रपात के परिणामस्वरूप समग्र द्रव्य मण्डल प्रज्ज्वलित हो गया था। ऋग्वेद में इस घटना को **हिरण्यगर्भः** या **मार्तण्डम्** प्रतीकों में निहित किया गया है जिसे आधुनिक विज्ञान में बिग-बैंग कहते हैं। यह दोनों विचारधाराओं में एक महत्त्वपूर्ण साम्य है। विज्ञान में बिग-बैंग के कारण का ज्ञान उपलब्ध नहीं है। विज्ञान केवल यह जानता है कि महाविस्फोट हुआ था, क्यों हुआ था, किन परिस्थितियों के कारण हुआ था इससे वह अनभिज्ञ है। विज्ञान में बिग-बैंग के पूर्ववर्ती अनुबन्ध (initial conditions) क्या थे इसका कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं है किन्तु ऋग्वेद में बिग-बैंग की पूर्ववर्ती अवस्था का विवरण वृत्र-वज्र के रूपक में निहित है।

ऋग्वेद के अनुसार मूल शक्ति के क्रियात्मक होने के अनन्तर 14 हजार 4 सौ वर्ष के उपरान्त शम्बर की स्थिति पूर्ण रूप से दृढ़ (mature) हो जाती है तब इन्द्र द्वारा वज्र संचालन होता है अर्थात् ऊर्जाओं की विशाल मात्राओं की टक्कर का नियोजन होता है जिससे महाग्निपिण्ड उद्भूत है। इस प्रकार बिग-बैंग की पूर्ववर्ती स्थिति पर प्रकाश पड़ता है तथा ऋग्वेद के अनुसार सृष्ट्यारम्भ बिग-बैंग के 14 हजार 4 सौ वर्ष पूर्व होता है। ऋग्वेद के उषाकाल (ब्रह्मदिन) का आरम्भ पूर्ववर्ती है अर्थात् ऋग्वेद का शून्य काल पूर्ववर्ती है।

ऋग्वेद का सोमः विज्ञान के विकिरण का पर्याय है। विज्ञान के वर्गीकरण के अनुरूप सोम भी दो प्रकार का है। आदिकाल में प्रकृति के द्रव्य भाग पर सोम (विकिरण) का वर्चस्व था इस वैदिक परिकल्पना का विज्ञान से महत्त्वपूर्ण साम्य है। ऋग्वेद के अनुसार आदिकाल में इन्द्र (ईश्वर) ने सोमपान किया। यह तथ्य इस बात का प्रतीक है कि ईश्वर ने विकिरण को अपने देहभूत आकाश में एकत्र कर सघनीकृत किया। इस कृत्य को रूपक भाषा में वज्र-रचना कहा गया है। वज्र अष्टवर्गी द्रव्य से बना, इसे त्वष्टा ने बनाया था, वज्र रचना में अष्टवर्गी प्लाज्मा और विकिरण का संयोजन हुआ था।

18. मातरिश्वन् व सप्तवर्गी परमाणु रचना

महाविस्फोट के बाद विज्ञान के अनुसार द्रव्य में मण्डलाकार (spherical) प्रसार आरम्भ हुआ। यह आदिकाल में आरम्भ हुआ प्रसार आज भी जारी है जिसे (expanding universe) प्रसारित होने वाला विश्व या गैलेक्सियों का प्रसार कहते हैं। ऋग्वेद में इस स्थिति का प्रतीक मातरिश्वा है जिसे वेद में मूल शक्ति का श्वास लेना कहा गया है इसका विवरण अध्याय 26 में है।

इस प्रसार के फलस्वरूप तापमान में गिरावट आती है। महाविस्फोट के कुछ काल बाद परमाणु रचना आरम्भ हो जाती है ऋग्वेद में इस अवस्था को अर्द्धगर्भा कहा गया है जिसका तात्पर्य है भ्रूणावस्था, अन्तरिम अवस्था। यह अवस्था नाभिकीय अवस्था (nuclear state) एवं (molecular state) अणु अवस्था की मध्यवर्ती है अर्थात् यह परमाणु अवस्था है। ऋग्वेद में इसे सप्तवर्गी कहा गया है। दर्शन में इस अवस्था को तन्मात्रा (तत्-मात्रा) कहते हैं जो इकाई द्रव्य (element) की वह छोटी से छोटी मात्रा है जिसमें इकाई द्रव्य का स्वरूप बना रहे और यह है विज्ञान का परमाणु। विज्ञान से ज्ञात होता है कि समस्त प्रकार के परमाणुओं (atoms) को मेन्डलीफ के पीरियॉडिक वर्गीकरण के अनुसार परमाणु संख्या (atomic number) के आधार पर सात अवस्थाओं (periods) में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार ऋग्वेद के वर्गीकरण एवं विज्ञान के प्रयोगजन्य वर्गीकरण में साम्य है।

ऋग्वेद में सप्तवर्गी परमाणु अवस्था को प्रकारान्तर से सप्तसिन्धु प्रवाह कहा गया है। यह सप्तसिन्धु प्रवाह हिरण्यगर्भ (Bigbang) के अनन्तर आकाश में प्रभूत हुए थे। यह विवरण दिक् (space) में परमाणु रचना के विस्तार का द्योतक है।

महाप्रसार के पश्चात् गैलेक्सियों की उत्पत्ति हुई। अनन्तर कुछ केन्द्रों पर कास्मिक मेटर एकत्र होने लगा। सर्वप्रथम भ्रूणपिण्ड जन्म लेते हैं फिर ये पिण्ड गैलेक्सी के अक्ष पर भ्रमण करते हुए और कॉस्मिक मेटर एकत्र करते-करते क्रमशः बड़े होते-होते बृहदाकार हो जाते हैं तथा कॉस्मिक मेटर में नाभिकीय क्रियाओं से प्रकाशमय प्रज्ज्वलित पिण्ड, जिसे नक्षत्र (सूर्य) कहते हैं, में विकसित हो जाते हैं। कालान्तर में कुछ नक्षत्रों से ग्रहों की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार सौर्यमण्डल में ग्रहों और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। यह सम्पूर्ण विवरण आधुनिक विज्ञान समर्थित है जो अध्याय 28 में दिया गया है। प्रकृति के एक भाग में रासायनिक जगत् और दूसरे भाग में वनस्पति तथा प्राणिजीवन होता है। अध्याय 19 में मूल शक्ति का, ऊर्जा का, नक्षत्रों का, पृथिवी के वर्गीकरण का विवरण वेद से दिया गया है।

अध्याय 2

ऋग्वेदीय अग्नि

ऋग्वेद में अग्निः शब्द अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद आरम्भ ही होता है अग्नि शब्द से। अनेक सूक्तों का देवता अग्निः है। यह अग्नि ईश्वरीय कामना की वाहक ईश्वर अधिष्ठित शक्ति है।

कुछ विद्वानों द्वारा ऋग्वेद का अग्निः शब्द अग्नि देव या भौतिक अग्नि के अर्थ में लिया गया है। यह मत आदरणीय नहीं है। ऋग्वेद की आन्तरिक साक्षी के प्रतिकूल है। अग्निः शब्द का प्रयोग ज्ञान के अर्थ में, ईश्वर के अर्थ में, भौतिक ऊर्जा के अर्थ में हुआ है आन्तरिक साक्षी के आधार पर इस प्रकरण के अन्तर्गत इस तथ्य को प्रकाश में लाया गया है कि अग्निः शब्द का प्रयोग ईश्वरीय कामना की वाहक आद्या शक्ति (मौलिक ऊर्जा) के लिए हुआ है। यह अग्नि मात्र भौतिक द्रव्य नहीं है वरन् ईश्वरीय कामना से अधिष्ठित ईश्वरीय योजना को वहन करती हुई सृष्टि चरणों को पार कर लक्ष्य को पाने में सक्षम-भौतिक शक्ति है।

1. अग्नि शब्द ज्ञान का द्योतक है

अग्नि प्रकाश का द्योतक है, था और रहेगा। ज्योतिः एवं अग्निः पर्यायवाची हैं। ज्योति क्या है? अग्नि है, अग्नि क्या है? ज्योति रूप है। वैदिक साहित्य में ज्योतिः शब्द ज्ञान का वाचक है, तमः शब्द अज्ञान का पर्याय है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

अन्धकार अज्ञान को परे हटाकर ज्योति की तरफ, ज्ञान की ओर उन्मुख कर। यही नहीं स्वयं ईश्वर को ज्योतिस्वरूप[1] कहा गया है - (क्र. 19)

ज्योतिर्दर्शनात् (वेदा. 1/3/40)

अध्यात्म दृष्टि में परमात्मा को ज्योति कहा गया है यथा - (क्र. 20)

---

1. ज्योतिस् = ब्रह्म ज्योति, वह ज्योति जो ब्रह्म रूप है, कोश। भग.गी. 5/24।

अस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरूपसम्पद्य: (छान्दो, 8/12/3)

इस देह से मुक्त हो जीवात्मा पर-ज्योति परमात्मा को प्राप्त करता है (क्र. 21)

तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् (बृह. 4/4/16)

विद्वान् उस ज्योतियों की ज्योति अमृत ब्रह्म की संपूर्ण आयु आराधना करते हैं (क्र. 22)

हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदु:।।

वह निर्मल अवयवरहित परब्रह्म प्रकाशमय परमधाम है।

उस निर्मल ज्योतियों की ज्योति (ईश्वर) को आत्म ज्ञानी ही जानते हैं, (मुण्डक उपनिषद् 2/2/9)। यहाँ साधारण भौतिक ज्योति की चर्चा नहीं है यहाँ ज्ञान से आलोकित चेतन ज्योति की बात हो रही है। उपनिषद् स्वयं इस तथ्य को आगामी मन्त्र में स्पष्ट करती है - (क्र. 23)

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं, नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि:।

वहाँ न सूर्य का, न चन्द्र का, न तारों का, न इस विद्युत् का प्रकाश जाता है फिर इस अग्नि की क्या मजाल है, इसकी क्या हस्ती है। फिर -

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्

उसके प्रकाशित होने से ही सभी प्रकाशित होते हैं।

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

उसी का प्रकाश इन सभी को प्रकाशित कर रहा है।

ईश्वर को प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक कहना वैदिक साहित्य की परम्परा है। यह मन्त्र इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसे तद्वत् (जैसा का तैसा) कठोपनिषद् (अ. 2, वल्ली 2, मन्त्र 15) में तथा श्वेताश्वतर उप. (6/14) में दुहराया गया है, आखिर क्यों ? इसके पीछे क्या उद्देश्य है ? यही कि अग्नि या ज्योति शब्द जो अध्यात्म ज्योति का, ईश्वर का वाचक है उसे कहीं कोई भौतिक अग्नि न समझ बैठे, किन्तु हुआ वही जिसकी ऋषियों को आशंका थी, अग्नि को अग्निदेव समझा गया।

गीता (अध्याय 13/17) में भी यह सत्य दर्शनीय है, वहाँ ईश्वर को ज्योति-स्वरूप कहा गया है -

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।

अंधकार अज्ञान से अति परे वह ज्योतियों की भी ज्योति है।

अस्तु, ऋग्वेद में ईश्वर के लिए, ज्ञान प्रकाश के लिए, आत्म ज्योति के लिए, अग्निः शब्द का प्रयोग इसी परम्परा की आदि शृंखला है। अति प्राचीन वैदिक साहित्य में पाये जाने वाले ये प्रयोग उस काल की विचारधारा के विषय में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। अतः यदि वेद में ज्योतिः शब्द आत्मतत्त्व के लिए प्रयुक्त हुआ हो तो आश्चर्य की बात नहीं है, यथा ऋ. 6/9/4 - (क्र. 24)

अयं होता प्रथमः पश्चतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।

अयं प्रथमः होता यह सर्वश्रेष्ठ (कर्म) आहुति कर्ता है इमं पश्चत इसका साक्षात् करो। मर्त्येषु इदं अमृतं ज्योतिः मरणधर्मी देहों में यही अमर चेतन ज्योति है। तथा ऋ. 6/9/5 - (क्र. 25)

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृश्ये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।

इस शरीर में ध्रुव आत्म ज्योति स्थित है। इसी प्रकार ऋ. 10/56/1-(क्र. 26)

इदं ते एकं यह (जगत्) तेरे लिए एक ज्योति है, परः उ ते एकं तेरे लिये निश्चय ही एक (परम) उत्कृष्ट ज्योति (आत्मा) है। तृतीयेन ज्योतिषा सं तू तीसरी ज्योति (परमात्म तत्त्व) के साथ सम्यक् (विशस्व, विश = प्रवेश करना, लोट् ल.) योगस्थ हो, एकीभूत हो, अथवा परः उ ते एकं तेरे लिए निश्चय ही एक परम ज्योति ईश्वर है। तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व तृतीय आत्म ज्योति के द्वारा, इस माध्यम से (इस परम ज्योति में) सम्यक् स्थान प्राप्त कर। इस प्रकार ज्योतिः एवं अग्निः शब्द अपने प्रकाश करने के गुण के कारण ज्ञान एवं चेतना के अर्थ में प्रयुक्त हुए पाये जाते हैं।

इस अध्याय का उद्देश्य ऋग्वेद में एकेश्वरवाद की विवेचना करना नहीं है वरन् केवल अग्निः शब्द का प्रयोग भौतिक ऊर्जा के लिए हुआ है इस तथ्य को प्रकाश में लाना है।

2. अग्निः शब्द का प्रयोग मूल शक्ति के अर्थ में

अग्निः शब्द की व्युत्पत्ति "अग्नि इति अङ्गिति, अगि गतौ भ्वा. परस्." (अमर कोष) गत्यर्थक धातु से हुई है। अतः अग्निः शब्द का प्रयोग शक्ति (energy) जो वेग युक्त है, के लिए इसी निर्वचन के आधार पर ऋग्वेद में हुआ है। अग्निः शब्द

का प्रयोग क्रियात्मक भौतिक शक्ति के लिए हुआ है इस तथ्य पर इस परिच्छेद में ऋचाओं से प्रकाश डाला गया है।

3. अ - वैज्ञानिक परिकल्पना

विज्ञान के अनुसार प्रकृति अपने आप को दो रूपों में अभिव्यक्त करती है द्रव्य एवं विकिरण (रेडियेशन)। प्रकृति का द्रव्य भाग कण एवं प्रतिकण के जोड़ों का समुच्चय है, समग्र रूप है। प्रत्येक कण का पूरक एक प्रतिकण है। यथोचित तापमान पर कण-प्रतिकण के जोड़े की परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप विकिरण उत्पन्न होती है इसी प्रकार उपयुक्त ताप दबाव पर विकिरण कण-प्रतिकण में विभक्त हो जाती है। प्रकृति के ये तीन रूप कण, प्रतिकण, विकिरण सार्वकालिक हैं, किसी रूप का कभी भी सर्वथा अभाव नहीं होता। कभी किसी रूप का वर्चस्व रहता है तो कभी अन्य रूप का हो जाता है। आदि सृष्टिकाल में विकिरण का वर्चस्व द्रव्य भाग (कण, प्रतिकण) पर होता है यह अनुबंध (कंडीशन) आद्य विस्फोट (बिग बैंग) के लिए अनिवार्य है।

लोकों को अपनी-अपनी कक्षा में व्यवस्थित एवं संतुलित रखने वाला बल समग्र गुरुत्वाकर्षण बल (universal force of gravitation) कहलाता है। अभी तक विज्ञान इस बल के स्रोत के विषय में अनभिज्ञ था। इस तथ्य का ज्ञान अत्यन्त आधुनिक (1965) है कि इस बल का आधार आदिकाल में हुए विस्फोट के समय की अवशेष विकिरण है जिसे कास्मिक विकिरण कहते हैं। यह विकिरण सर्वव्यापी व एक से मान (isotropic) वाला है।

3. ब - ऋग्वैदिक परिकल्पना

ऋग्वैदिक परिकल्पना प्रस्तुत करने हेतु ऋग्वेद मंडल 3, सूक्त 26 की 7वीं ऋचा पर विचार किया जाता है - (क्र. 27)

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्त्रो घर्मो हविरस्मि नाम ।।

इस मन्त्र का देवता अर्थात् विषय अग्नि एवं आत्मा है। यह मंत्र आत्मा एवं मूल क्रियात्मक शक्ति पर समान रूप से प्रयुक्त है। यहाँ मूल भौतिक शक्ति ही चर्चा का लक्ष्य है।

भाष्य - मैं जन्मना स्वभाव से (जातवेदा, जाते 2 विद्यते इति वा, निरु.)

सभी उत्पत्तिवाली वस्तुओं में विद्यमान मूल क्रियात्मक शक्ति हूँ। घृतं मे चक्षुः तेज विश्व में दर्शनीय इनर्जी – ताप, प्रकाश, विद्युत[1] मेरा नेत्र है। मे आसन् अमृतं मेरा मुख अविनाशी है अर्थात् अखंड मूल सत्ता अदिति मुख रूप है जिसमें सभी नाम रूप समा जाते हैं। अदिति शब्द के निर्वचन (अध्याय 3) से तुलना करें।

तेज रूप में रजसः ज्योतिर्पिण्डों का (विमानः, मान, मा = मापना का शानज) विशिष्ट मापों से स्थापन करता है। त्रिधातुः तीन मूल अन्तिम तत्त्वों वाला (अर्कः, अर्कः = प्रकाश, किरण, कोश पृष्ठ 93) सारभूत तेज हूँ। (घर्मः = देव मिथुन)[2] प्रकृति का द्रव्य भाग रूप (अजस्र) निरन्तर होने वाली आहुति रूप (अर्कः) तेज (नाम अस्मि) मेरा स्वरूप है।

त्रिधातु (मित्र, वरुण, अर्यमा) मौलिक सत्ता है। देव मिथुन वरुण मित्र विज्ञान के कण प्रतिकण हैं।

ऋचा में कहा गया है कि घर्म रूप हवि अग्नि का स्वरूप है अर्थात् देव मिथुन (मित्र वरुण) का संयुक्त रूप प्रकृति का (हविः) द्रव्य भाग, अग्नि (क्रियात्मक प्रकृति = आपः) का प्रथम स्वरूप है। यह विज्ञानप्रोक्त द्रव्य भाग (matter part) है।

देव मिथुन की अजस्रः हवि निरंतर आहुति से जलकर विलीनीकरण होने से अर्कः विकिरण की उत्पत्ति कही गयी है यह अग्नि का दूसरा रूप है। इस प्रकार अग्नि के दो रूप देव मिथुन (कण-प्रतिकण) रूप द्रव्याँश तथा विकिरण हैं।

ऋचा में अग्नि के दो गुणों का व्याख्यान हुआ है। प्रथम यह कि अग्नि अविनाशी है; यह विज्ञान का शक्ति संरक्षण का सिद्धांत (Law of conservation of energy) है। देव मिथुन की निरंतर आहुति से तेज, विकिरण की उत्पत्ति होती है। ऊर्जा लोकों को स्व 2 कक्षा में विशिष्ट नाप से नियंत्रित करता है। इस परिकल्पना का विज्ञान के आधुनिकतम अन्वेषण से साम्य है।

4. ऐतरेय ब्राह्मण में प्रकृति के मूल स्वरूप का विवरण

प्रकृति का विकिरण भाग जो सृष्टि में नियोजित होता है उसका ऋग्वैदिक

---

1. तिस्रो द्यावा, द्वा सवितुरुपस्थान् एका यमस्य भुवने विराषाड् तेज तीन प्रकार का है दो रूप प्रकाश, ताप सूर्य से प्राप्त होते हैं। एक रूप नियंता ईश्वर के विश्व में व्यापक चुम्बक, विद्युत् रूप है। ऋ.1/35/6

2. तदेतद् देवमिथुनं यद्धर्मः, यह जो घर्म है वह देवों का (मिथुन) जोड़ा है। ऐ.ब्रा. 1/4/5

प्रतीक सोम है (अध्याय 9)। ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि को देव मिथुन रूप द्रव्याँश कहा गया है तथा सोम विकिरण का प्रतीक है।

ध्यान रहे, ऐतरेय ब्राह्मण का सोमयाग सृष्टि यज्ञ का रूपक है अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति संबंधी प्रक्रियाओं की वेद में जो अवधारणा है वैसा वैसा यज्ञानुष्ठान में सृष्टि उत्पत्ति की घटना की स्मृति रूप कर्मकाण्ड में किया जाता है।

प्रकृति की दो शक्तियों अग्नि सोम के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण (1/2/2) से प्रकाश डाला जाता है। सूत्र है - (क्र. 28)

प्राणापानावग्निषोमो प्रसवाय सविता प्रतिष्ठित्या अदितिः।

अग्नि सोम प्राण (उच्छ्वास) और अपान (निः श्वास) हैं। सविता देव प्रेरणा देने के लिए हैं तथा अदिति अवस्थान, आश्रय है। सृष्टि यज्ञ में अग्नि, सोम पूरक शक्तियाँ द्रव्य भाग व विकिरण हैं। अदिति आधारभूत सत्ता है जो दोनों की सम्मिलित शक्ति है, समग्र सत्ता है जो सृष्ट्यारम्भ के पूर्व की ब्राह्मी स्थिति है, अदिति जगत् का उपादान कारण (material cause) है, सविता (ईश्वर) प्रेरणा देने वाला, योजना बनाने वाला निमित्त कारण (efficient cause) है। इस प्रकार यहाँ दर्शन विज्ञान का अभूतपूर्व समन्वय है।

सविता के विषय में (1/3/5) अग्निमन्थन विधि में कहा गया है - (क्र. 29)

सविता वै प्रसवानामीशे।

सवितृप्रसूता एवैनं तन्मन्थन्ति तस्मात् सवित्रीमन्वाह।।

सविता देव प्रेरणा अनुज्ञा के स्वामी हैं, सविता की प्रेरणा से अग्नि का मन्थन करते हैं इसलिए सविता देव की ऋचा का पाठ करते हैं। सूत्र में कहा गया है कि सविता (ईश) प्रेरणा का स्वामी है उनकी प्रेरणा से प्रकृति के अग्नि, सोम भागों का मन्थन होता है। ध्यान रहे, विज्ञान के अनुसार आदिकाल में द्रव्याँश एवं विकिरण के मध्य मंथन होता है।

पुनश्च अग्नि सोम प्रणयन क्रिया (1/5/4) में उपर्युक्त सूत्र की पुनरुक्ति हुई है - (क्र. 30)

सविता .... एवैनं तत्प्रणयन्ति तस्मात् ....।

क्योंकि सविता प्रेरणा के स्वामी हैं इस ऋचा के पाठ के द्वारा अग्नि सोम का प्रणयन (लाया जाने को) सम्पन्न करते हैं यह क्रिया इस तथ्य का प्रतीक है कि

आदिकाल में ईश की प्रेरणा से प्रकृति के दोनों भाग अग्नि, सोम सृष्टि रचना हेतु नियोजित होते हैं।

यह ध्यान में रखने योग्य है कि प्रकृति का द्रव्य भाग भी मूल सत्ता है, प्रकृति का विकिरण भाग भी मूल सत्ता है, ये दो रूप हैं, इनमें से प्रत्येक मौलिक शक्ति है यह तथ्य इस सूत्रों (ऐ.ब्रा. 1/2/3) में व्यक्त हुआ है – (क्र. 31)

अग्निः सर्वा देवताः, सोमः सर्वा देवताः।

अग्नि (द्रव्याँश) ही सब देवताओं की आधारभूत सत्ता है, सोम (विकिरण) ही सब देवताओं की आधारभूत सत्ता है अर्थात् अग्नि और सोम देवों का उपादान कारण है।

5. अग्नि की त्रिकाल अविच्छिन्न निरन्तर धारा (Dynamic continuum)

पूर्व में यह बताया जा चुका है कि ऐतरेय ब्राह्मण का सोमयाग सृष्टि उत्पत्ति का रूपक है अर्थात् जैसा-जैसा सृष्टि उत्पत्ति क्रम में होता है तदनुरूप (वैसा-वैसा) कर्म पुनरावृत्ति के रूपक के रूप में दुहराया जाता है। सोमयाग में दो प्रकार की अग्नि होती है। एक आहवनीय अग्नि, दूसरी मथित अग्नि कही जाती है। यज्ञोपरान्त अग्नि को सुरक्षित रख दिया जाता है ताकि आगामी यज्ञ के अवसर पर काम में आ सके। इस प्रक्रिया को अभिमन्त्रित अग्नि की स्थापना करना कहते हैं अर्थात् मन्त्र पाठ के द्वारा पूर्व विद्यमान अग्नि की स्थापना करना। इस रूपक का अर्थ यह है कि जब सृष्टि लय होती है तब ईश्वर प्रकृति के एक क्रियात्मक भाग को आकाश के एक भाग में सुरक्षित रख लेता है इसी शक्ति (इनर्जी, विकिरण) को आगामी सृष्टि की उत्पत्ति हेतु आद्य संवेग (initial impulse) के लिए वज्र के रूप में प्रकृति के दूसरे क्रियाशील किन्तु दिशाहीन क्रिया में संलग्न, वृत्र प्रतीक से कही गयी अवस्था में वर्तमान, भाग पर प्रहार करता है। इस शक्तिपात् से जो घर्षण होता है उससे दूसरे प्रकार की मथित अग्नि (शक्ति) उत्पन्न होती है। इस प्रकार अग्नि का एक क्रियात्मक भाग (dynamic part) एक सृष्टि से प्रलय काल में सुरक्षित रखा जाकर आगामी सृष्टि तक ले जाया जाता है।

ऋग्वेद के मन्त्रों में यह परिकल्पना विद्यमान है (ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 149 मन्त्र 3 में यह कहा गया है) कि आदि सृष्टिकाल में जगत् के स्वामी की सामर्थ्य से यजत्रं क्रिया सम्पन्न हुई उसके अनन्तर महापिण्ड उद्भूत हुआ। "यजत्रं अभवत्" का

अर्थ है सृष्टि यज्ञ हेतु पूर्व से विद्यमान अग्नि (शक्ति) की स्थापना हुई। इस प्रकार ईश्वर द्वारा प्रलय काल में सुरक्षित रखी हुई अग्नि को ईश्वर ने आदि सृष्टिकाल में पुनः प्रतिष्ठित किया।

यह बात यहाँ ध्यान रखने योग्य है कि प्रकृति के दो रूप द्रव्य भाग (कण-प्रतिकण) एवं विकिरण हैं। कभी भी चाहे सृष्टिकाल हो या प्रलयकाल, न तो सम्पूर्ण द्रव्य भाग का रूपान्तर विकिरण में होता है न ही सम्पूर्ण विकिरण का रूपान्तर द्रव्य भाग में होता है। इस प्रकार तीन मूल शक्तियों का अस्तित्व सार्वकालिक है ये तीन शक्तियाँ वरुण, मित्र एवं सोम हैं। ध्यान रहे कि आदि काल में जब तक विकिरण का वर्चस्व द्रव्य भाग पर नहीं होता तब तक महा विस्फोट (big bang) की स्थिति निर्मित नहीं हो सकती। जब तक महा बिग बैंग नहीं होगा सृष्टि का आरम्भ भी न होगा। अतः आदिकाल में द्रव्य भाग पर विकिरण का वर्चस्व स्थापित करने के लिए ऋग्वैदिक परिकल्पना क्या है? इसे प्रकाश में लाया जाता है। ऋचा है मंडल 10, सूक्त 109 - (क्र. 32)

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायाँ पुनः प्रायच्छद्हृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्रो आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय।।

(अहृणीयमानः, हृ (ह्रि) णीयते (ना.धा.आ.) लज्जित होना, कोश) उत्तेजित हुआ (राजा) सर्वोच्च सत्ता, मूल सत्तात्मक तत्त्व सोमः विकिरण ब्रह्मजायाँ प्रकृति को पुनः फिर से प्रायच्छत् अपनी उत्तेजना देता है। (अनुअर्तिता, अर्त = ऋत् = क्रियाशीलता) क्रियाशीलता में पिछड़े, अपेक्षाकृत कम क्रियाशील वरुणः, मित्रः कण, प्रतिकण आसीत् थे। अग्निः अग्नि रूप में, शक्ति रूप में, वर्तमान सोम होता प्रमुख (सृष्टि) यज्ञ संपादनकर्ता ने (हस्तगृह्य, वै.व्या. पृ. 250) मानो हाथ पकड़कर (आ. निनाय, नी की लिट् ल.) शक्तिपूर्वक आगे किया।

ऋचा में अत्यंत सुन्दर एवं स्पष्ट शब्दों में इस परिकल्पना की अभिव्यक्ति है कि (प्रलयकाल के अन्त में एवं सृष्टिकाल के आरम्भ में) प्रलय-सृष्टि संधि काल में (शून्यकाल में) सोम ने इस प्रकार प्रकृति के द्रव्याँश को पुनः जैसा कि पूर्व सृष्टिकाल के आदि में किया था इस वर्तमान सृष्टि हेतु उत्तेजित किया। इसी शक्ति रूप विकिरण को अग्नि कहा गया है जो आगामी सृष्टि हेतु (dynamic continuum) गति, शक्ति (इनर्जी) के ऋग्वैदिक त्रिकाल तारतम्य की परिकल्पना संजोये है। इसी सोम विकिरण का इन्द्र द्वारा पान (ऋ. 1/1/32), ईश्वर द्वारा देहभूत

आकाश में एकत्रीकरण, सघनीकरण का द्योतक है जिससे निर्मित वज्र संघात आदि संवेश (primary impulse) की उत्पत्ति हेतु सघनीकृत ऊर्जा की नियोजित (Planned) टक्कर का द्योतक है।

इसी सत्य को प्रकारान्त से ऋचा (10/5/7) में कहा गया है, जहाँ ऋग्वैदिक परिकल्पना के सात प्रतीक (symbols) एक ही ऋचा 'सं जग्मिरे' सब एकत्र हुए दर्शन, विज्ञान की श्रेष्ठतम परिकल्पना का दिग्दर्शन कर रहे हैं - (क्र. 33)

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे।
अग्निर्ह नः प्रथम जा ऋतस्य पूर्वं आयुनि वृषभश्च धेनुः।।

भाष्य - असत् च तथा सत् च तथा दक्षस्य प्रारम्भिक सामर्थ्य की जन्मन् उत्पत्ति परमे व्योमन् सर्वव्यापी ईश्वर के सकाश से अदितेः उपस्थे मूल आद्या शक्ति अदिति के उपादान कारणभूत योनिस्थान, मूल सत्ता में हुई। नः अग्निः हमारा यह अग्निः ह निश्चय ही ऋतस्य प्राकृतिक प्रवाह का प्रथमजाः आदिकाल में सर्वप्रथम प्रादुर्भूत हुआ है। पूर्वं आयुनि पूर्व, सृष्ट्यारम्भ के पूर्व की अवस्था में वृषभः च धेनुः यह अग्नि का वृषभ धेनु रूप जोड़ा (देव मिथुन) था। प्रकृति की प्रथम अवस्था आपः या माया है। जिसे असत् कहा गया है, (अध्याय 4)। प्रकृति की दूसरी अवस्था बृहतीः आपः सत् नाम से कही गई है (अध्याय 5)। दक्षः शब्द आद्य सामर्थ्य (initial capacity) का द्योतक है।

अदितेः दक्षो अजायत ऋ. 10/72/4, दक्षस्य वादिते जन्मनि अदिति से दक्ष का जन्म होने पर ऋ. 10/64/5 तथा दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ऋ. 10/121/8।

परमे व्योमन् ईश्वर के लिए प्रयुक्त होता है - यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् ऋ. 10/129/7, ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् 1/164/39, अदिति मूल आद्या शक्ति है (अ. 3)। सत्, असत् का विवेचन ग्रन्थ भाग 2 में है।

ऋचा में कहा गया है कि सृष्टिकाल के पूर्व अर्थात् प्रलयकाल के अन्त में (देव मिथुन) कण-प्रतिकण रूप में वर्तमान मूल आद्या शक्ति ही (अग्नि) विकिरण रूप से प्रगट हुई वही प्रथमजा शक्ति है। इस प्रकार मूल शक्ति के दो रूप हैं कण-प्रतिकण रूप द्रव्य भाग तथा विकिरण रूप दूसरा भाग।

इस त्रिकाल चक्रीय तारतम्य में परिभ्रमण करने वाली शक्ति के ऊपर जब ईश्वरीय अनन्त ज्ञान, कामना, कर्म को प्रतिष्ठापित किया जाता है तो ऋग्वेद प्रतिपाद्य अग्नि के चेतन स्वरूप का दिग्दर्शन होता है जो स्वरूप ऋग्वेद की प्रथम ऋचा में वंदनीय हुआ है तथा जिसकी महिमा ऋचाओं में गाई गयी है।

अग्नि के उसी अवबोधनीय रूप का निरूपण अन्य ऋचाओं में देखा जाता है, उदाहरण के लिए ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 31 का दूसरा मन्त्र है- (क्र. 34)

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरसतमः कविर्देवानां परिभूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे।।

भाष्य - अग्ने हे प्रकाशस्वरूप कविः सर्वज्ञ त्वं तू (अङ्गिरसतमः, येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन् ऐ.ब्रा. 3/3/10, जो दग्धपिण्ड के अङ्गारे थे वे अङ्गिरस हुए) प्रकृति की अवस्था विशेष (परिचय ग्रन्थ के भाग 2 में देखें) के रूप में हुआ प्रथमः सर्वप्रथम देवानाम् व्रतम् परिभूषसि देवों (भौतिक शक्तियों) के नियमों को पूर्ण रूप से सुशोभित करता है विश्वस्मै भुवनाय विभुः समस्त भुवन के लिए व्यापक मेधि - रः हे बुद्धि प्रदाता द्विमाता शयुः दो माताओं सृष्टिकाल, प्रलयकाल में गुप्त रूप से विद्यमान आयवे मानव के लिए कतिधाचित् अनेक रूपों में व्यक्त होता है।

अग्नि विश्व व्यापी है, सर्वज्ञ है, बुद्धिप्रदाता है, सृष्टि-प्रलय का संचालक है। अग्नि में ईश्वर के सभी गुणों का व्याख्यान हुआ है। पुनः अग्नि शब्द ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ न मानने में कोई युक्ति नहीं है।

अग्निः अनेक नामधारी है। उसने प्रकृति के अनेकों रूपों को एक सूत्र में बाँधा है यह तथ्य ऋ. 3/20 के 3रे मन्त्र में है, मन्त्र है - (क्र. 35)

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो।।

भाष्य - अग्ने हे प्रकाशस्वरूप स्वधावः स्वधारणा शक्ति से युक्त, स्वयंभू (जातवेदः, जातानि वेद, निरु. 715) समस्त उत्पत्तिवान् पदार्थों के ज्ञाता देव प्रकाशक तव तेरे अमृतस्य अविनाशी के भूरीणि नाम अनेक नाम हैं, अनेक विभूतियाँ हैं। हे (विश्वमिन्व = सर्वप्रेरक, पृ. 357 वै.व्या.) सर्वप्रेरक याः च जो भी मायिनाम् मूल प्राकृतिक (त्रिवर्गी) शक्तियों के पूर्वीः आदिकाल के (माया = प्रकृति, मायावी बिंब, कोश) मायावी रूप, परिणाम अर्थात् यौगिक या विकार हुए हैं (पृष्टबन्धो, पृष्ट प्रच्छ् का भू. का. कृ., बन्धः = बन्धन) ज्ञान के बन्धन मे सबको बाँधकर रखने वाले त्वे तेरे में, तेरे ज्ञान में संदधुः सम्यक् प्रकार से धारण किये गये हैं।

प्रकृति के अनेकों रूपों को ज्ञान में सम्यक् प्रकार से धारण करने वाला सर्वप्रेरक स्वयंभू ईश्वर ही है अन्य कोई नहीं हो सकता। अस्तु, अग्निः शब्द का प्रयोग ईश्वर के लिए उसी अर्थ में हुआ है जिसकी मीमांसा की गई है।

अध्याय 3

मूल भौतिक तत्त्व की परिकल्पना

ऋग्वेद में अदिति: अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। कथाओं में अदिति देवों की माता कही गयी है। अदिति देवों की माता, उनका उत्पत्ति कारण अवश्य है। किन्तु उसका वैज्ञानिक स्वरूप अभी तक उभरकर सामने नहीं आया है। अदिति: शब्द का अर्थ अखंड है। प्रश्न होता है कि जगत् में क्या वास्तव में कोई ऐसी सत्ता है जो अखंड हो ? यह परिवर्तनशील जगत् भौतिक द्रव्यों से बना है। ऋग्वेद ने इस परिवर्तनशील भौतिक जगत् के मूल में एक मौलिक भौतिक सत्ता की कल्पना की है। यह मौलिक सत्ता खण्डनीय नहीं है। यह अखंड सत्त्व ही भौतिक जगत् का अन्ततम द्राव्यिक कारण (ultimate material cause) है। इस मूल आद्या शक्ति से यह जगत् प्रस्फुटित होता, इसी के आधार पर रहता तथा कालान्तर में विखंडित हो इसी शक्ति में समा जाता, वापिस चला जाता है। इस प्रकार यह वस्तुत: एक अखंड तत्त्व है। ऋग्वेद ने इस तत्त्व को इसके वास्तविक गुणों के आधार पर अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया है। अदिति माता कही गयी है, अदिति मूल द्राव्यिक कारण है। भौतिक जगत् की उत्पत्ति एवं विकास के तारतम्य के विभिन्न चरणों में विभिन्न भौतिक शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। दिव्य शक्तियाँ होने से इन्हें देव संज्ञा से विभूषित किया गया है।

अदिति जगत् की आधारभूत मूल शक्ति है जिससे जगत् अधिष्ठता ईश्वर सृष्टि रचना करता है। ईश्वर का कार्य सार्वकालिक है वह सदैव चलता रहता है अत: ईश्वर से अधिष्ठित शक्ति भी शाश्वत है। ऐसा नहीं हो सकता कि मूल उपादान कारणभूत शक्ति का कभी तिरोभाव हो जाये। क्योंकि जगत् रचना और लय शाश्वत घटना क्रम है, मूल उपादान कारण के अभाव में आगामी जगत् रचना संभव न होगी अर्थात् रचना-लय चक्र स्थगित हो जाएगा तब ईश के ईश्वरत्व का भी तिरोभाव हो जाएगा, परन्तु ईश कभी ईश न रहे ऐसा नहीं हो सकता और सृष्टि रचना लय चक्र कभी रुक नहीं सकता। वास्तव में जो तत्त्व अखंड है उनका विनाश कल्पनातीत है।

आज आधुनिक विज्ञान भी इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि इस भौतिक पदार्थ के मूल में मौलिक तत्त्वों की सत्ता है। विज्ञान में इन मौलिक कणों को फन्डामेंटल पार्टिकल्स कहते हैं। विज्ञान को यह उपलब्धि अत्यन्त कष्टसाध्य अन्वेषण से हुई है। वैदिक ऋषि इस परिकल्पना पर कैसे पहुँचे यह आश्चर्य का विषय है।

अदितिः शब्द का एक दूसरा प्रयोग भी ऋग्वेद में उन सत्ताओं के लिए पाया जाता है जो वास्तव में व्यक्तिगत रूप से तो अखंड नहीं हैं किन्तु जिनमें समग्र रूप में निरन्तरता पाई जाती है। इनकी अखंडता प्रवाह से है।

1. कारण-कार्य मीमांसा

जिस द्रव्य (या द्रव्यों) से किसी वस्तु का निर्माण होता है उस द्रव्य को उपादान कारण या अधिष्ठान कहते हैं। निर्मित वस्तु को कार्य या परिणाम (इफेक्ट) तथा रचना करने वाले को कर्त्ता या निमित्त कारण कहते हैं। मिट्टी से घड़े के निर्माण में मिट्टी उपादान कारण, घड़ा कार्य एवं कुम्हार निमित्त कारण है। वेद में स्वयंभू (self existent) शब्द का तथा उसके पर्यायवाची शब्द स्वधावान् का प्रयोग मिलता है। स्वयंभू का अर्थ होता है वह सत्ता जो अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य सत्ता पर निर्भर न हो वरन् अपनी स्वशक्ति से सत्तावान् हो। दर्शन की भाषा में कहा जाता है कि वह 'निमित्तोपादानकारणरहितः' अर्थात् वह निमित्त एवं उपादान कारण से रहित है; क्योंकि सुदूर भूतकाल में भी कभी ऐसा समय नहीं था जब वह उत्पन्न हुई हो। वह काल से निरपेक्ष अर्थात् पूर्ण रूप से स्वतंत्र होती है। काल का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह सदैव से (त्रिकाल) सत्तावान् एवं एक-सी रहने वाली होती है इस कारण इसे नित्य, शाश्वत या सत् कहते हैं। यह आदि आरम्भ से रहित होती है इस तथ्य को दर्शाने हेतु इसे अनादि या अज कहते हैं। यह मृत्यु या अन्त से रहित होती है। इस स्थिति को दर्शाने हेतु अनन्त, अमृत, अक्षय, अजर, अमर, अध्वस्म, अमर्त्य, नपात् आदि शब्दों का प्रयोग ऋग्वेद में पाया जाता है।

2. ऋग्वेद कारण-कार्य सिद्धांत का प्रतिपादन करता है

यह ऋग्वेद का स्थिर सिद्धांत है कि ईश्वर जगत् का रचयिता एवं निमित्त कारण है। जगत् का उपादान कारण ईश्वर द्वारा अधिष्ठित एक आद्या स्वयंभू भौतिक सत्ता है जिसे अदिति नाम से संबोधित किया गया है। आदि मौलिक सत्ता होने से इसे यत्र-तत्र माता एवं देवी पदों से विभूषित किया गया है।

ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 81 के 2रे मन्त्र में इस बात की जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कि जगत् का उपादान कारण क्या है एक सीधा प्रश्न प्रस्तुत किया गया है, यथा – (क्र. 36)

किम् स्वित् आसीत् अधिष्ठानं कैसा था उपादान कारण आरंभणं कतमत् स्वित् आरंभ कैसे हुआ।

कथा आसीत् कैसा था – वह मूल कारण यतः भूमिं जनयन् विश्वकर्मा जिससे अप्रकाशित लोक उद्भूत करते हुए विश्वकर्मा (ईश्वर) ने (वि द्याम्, और्णोत्, वृ = आच्छादित करना, आत्मने की लङ् ल. पृ. 558 महिना विश्वचक्षाः) प्रकाशित लोकों को भी आच्छादित किया अपने महत्त्व से सर्वद्रष्टा ने।

वैदिक ऋषियों की मीमांसा में ईश्वर का अस्तित्व एक स्वयंसिद्ध प्रतिज्ञा (axiom) की तरह स्वीकार किया गया है साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि भौतिक जगत् के उपादान कारण का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। केवल प्रश्न यह है कि वह उपादान कारण क्या है, कैसा है ? इसी सूक्त के 4 थे मन्त्र में इस जिज्ञासा को एक सांकेतिक प्रश्न (leading question) के रूप में प्रस्तुत किया गया है, यथा – (क्र. 37)

किम् स्वित् वनं कौन सा वन (समग्र कारण) है। कः उ स वृक्ष आस कौन निश्चय ही एक वृक्ष (समग्र कारण में इकाई रूप) है यतः द्यावा पृथिवी निः ततक्षुः जिससे प्रकाशित अप्रकाशित लोकों को गढ़कर बाहर प्रकट किया। स्पष्ट है कि वन से, वृक्ष से लोकों की रचना की बात एक रूपक है, वन समग्र उपादान कारण का तथा उसके वृक्ष, जितने प्रकार के हों, मूल कारण के वर्गों के द्योतक हैं। अस्तु मन्त्र में उपादान कारण के वर्गों के ज्ञान की जिज्ञासा की गई है। मन्त्र की दूसरी पंक्ति है – मनीषणः मनसः पृच्छत इत् उ तत् मननशीलों मन से विचार कर पूछो निश्चय ही वह- उपादान कारण क्या था यत् अधि अतिष्ठत् भुवनानि धारयन् जो आधारभूत होकर ठहरा है लोकों को धारण करते हुए अर्थात् जो सृष्टि का मूलभूत आधार है।

मन्त्र में यह तथ्य मान्य हुआ है कि यह स्वाभाविक निष्कर्ष है कि उपादान कारण के अभाव में जगत् रचना संभव नहीं है। इसी प्रकार की जिज्ञासा ऋग्वेद मंडल 1 के 22वें सूक्त के मन्त्रों में प्रश्नोत्तर के रूप में व्यक्त है। वहाँ 16वें मन्त्र में यह प्रश्न आता है – (क्र. 37)

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः।।

देवा: विद्वान् न: अत: हमें उस मूल कारण तत्त्व का (अवन्तु, अव = अवगम) ज्ञान करावें, यत: विष्णु: विचक्रमे जिससे व्यापक परमात्मा ने विविध रचना की पृथिव्या: सप्त धामभि: पृथ्वी से लेकर सात लोकों की।

अवन्तु का अर्थ (अव= रक्षणे) 'रक्षा करें' लेना अनुपयुक्त है क्योंकि मन्त्र में प्रश्न है। रक्षा करें अर्थ लेने से प्रश्न नहीं बनता तथा आगामी दो मन्त्रों में इस प्रश्न के संदर्भ में जो उत्तर आया है वह निरर्थक होता है। अस्तु धातु अव् का अर्थ अवगम (प्रत्यक्षीकरण, ज्ञान) ही सार्थक है। आगामी मन्त्र है - (क्र. 38)

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।

विष्णु: परमात्मा ने इदं इस जगत् को त्रेधा नि दधे तीन प्रकार से अन्तर्निहित किये गये (पदम् = पदवी, मर्यादा, कारण, विषय, कोश पृ. 572) कारण पदार्थों, तत्त्वों से विचक्रमे विविध रचना की। (इस विषय पर विशेष चर्चा पृथक् अध्याय में है।)

3. अदिति: शब्द की व्युत्पत्ति

अदिति[1] शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से सिद्ध होती है। निषेधार्थक 'अ' पूर्वक "दा" (अवखंडने वै.व्या. संस्कृत की दो धातु) धातु से इस अर्थ में होती है "न विद्यते खण्डनोयस्य" अर्थात् जो अखंड हो, स्वयं ही अन्ततम अवयव हो।

अदिति: शब्द अद् (भक्षणे) धातु पूर्वक इति शब्द से भी सिद्ध होता है जिसका तात्पर्य है कि भक्षण का यहाँ अन्त होता है। अदिति सबको भक्षण करती है, अदिति में सब समा जाते हैं, लय हो जाते हैं किन्तु अदिति स्वयं अभक्ष्य है, घटकों से रहित है, अवयवों (constituents) से रहित है।

4. अखंड तत्त्व की कल्पना

यदि हम किसी भौतिक पदार्थ के अनेक भाग करें तथा उन भागों में से एक भाग को लें। पुन: इस भाग के अनेक छोटे-छोटे भाग करें व पुन: एक छोटे भाग को लें। यदि यह प्रक्रिया कार्यरूप में संभव न हो तो मानसिक रूप से ही पदार्थ का विभाजन करते जाएँ। कुछ समय उपरान्त पदार्थ की अव्यक्त अवस्था (न दिखाई देने वाली-मालीक्यूल के स्तर से) आरम्भ हो जाती है। विभाजन की यह प्रक्रिया यदि

---

1. दातुं छेत्तुम् अयोग्या - दो + क्तिन्, कोश।

निरन्तर जारी रहे जब तक कि एक ऐसी स्थिति न आ जाय कि अब जो भाग प्रस्तुत है वह विभाजन स्वीकार नहीं करता, इसका कारण यह है कि शेष बचा भाग यौगिक नहीं है। यौगिक ही विभक्त हो सकता है उन अवयवों में जिनके संयोग से वह बना है। जो स्वयं इकाई है, अवयवों से रहित अन्ततम भाग है वह अखंड है, अदिति है, उसके विभक्त होने का हेतु विद्यमान नहीं है। जो तत्त्व इकाई है, अखंड है उसके विनाश होने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। विनाश अर्थ है अवयवों का पृथक् होना जो असम्भव है, क्योंकि अखंड तत्त्व खंडरहित है, अवयवरहित है। अखंड के खंड की कल्पना असंभव है। इस प्रकार अखंड तत्त्व काल के संदर्भ से अन्तरहित अनन्त होता है। अखंड तत्त्व उत्पत्ति का विषय भी नहीं है। उत्पत्ति का अर्थ है अवयवों के संयोग का होना। अखंड के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु यौगिक है। किसी यौगिक के अवयवों का जब परस्पर संयोग (Union) होता है तब वह यौगिक सत्ता में आता है जिसे उसकी उत्पत्ति होना कहा जाता है। अखंड तत्त्व में अवयवों के संयोग की कल्पना नहीं हो सकती अर्थात् अखंड तत्त्व उत्पत्तिरहित है, आदिरहित है, अनादि है। इस प्रकार अदिति अनादि-अनन्त है।

5. भौतिक द्रव्य के दो वर्ग

ऋग्वेद ने भौतिक सत्ता को दो वर्गों में विभक्त किया है, एक वर्ग वह है जो अनादि

अजायमान एवं स्वयंभू है, दूसरा वर्ग उत्पत्तिधर्मी एवं विनाशधर्मी है। इस विषय पर ऋ. 1/96/7 वें मन्त्र से प्रकाश डाला जाता है। मन्त्र है - (क्र. 39)

नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्।।

नू च अब और पुरा च पहले भी सदनं आश्रय था रयीणां भौतिक द्रव्यों का जातस्य उत्पन्न हुए च जायमानस्य च क्षाम् तथा भविष्य में उत्पन्न होने वालों का भी आश्रय है सतः च सत् स्वरूप अजन्मा, अनादि का भी तथा गोपां रक्षक है भवतश्च होने वाले पदार्थों का भी द्रविणोदां ऐश्वर्य प्रदाता, भौतिक शक्तियों के प्रदाता, अग्निं तेजस्वरूप परमात्मा को (भूरेः देवाः) सभी देव (धारयन्) धारण करें।

मन्त्र में भौतिक सत्ता को दो भागों में विभक्त किया गया है एक तो वह जो जन्म या उत्पत्तिविनाशधर्मी है और दूसरा वह जो सत् स्वरूप अनादि अनन्त है या यों कहें कि एक वर्ग खंडनीय है तथा दूसरा वर्ग अखंड, स्वयंभूसत्ता वाला है।

ये दोनों भाग ईश्वर से पृथक् अचेतन किन्तु ईश्वराधीन हैं। इन दो प्रकार के पदार्थों की बात कई स्थलों पर आयी है जैसे ऋ. 8/64/3 में कहा गया है कि - इन्द्र सुतानां उत्पत्तिधर्मी एवं असुतानां जो अजन्मा अर्थात् अनादि हैं ऐसे दोनों वर्गों के पदार्थों का अधीक्षक है।

6. अनादि सत्ता संबंधी विचार

भौतिक जगत् सत्ता की मूलाधार ऋग्वेद की इस अजन्मा, अनादि अचेतन मूल आद्या शक्ति के विषय में ऋग्वेद की आन्तरिक साक्षी से प्रकाश डालना इस अनुच्छेद का अभिप्राय है। सर्वप्रथम ऋग्वेद मंडल 3, सूक्त 25 के 3रे मन्त्र से इस विषय का विवेचन किया जाता है। मन्त्र है - (क्र. 40)

अग्निर्द्यावा पृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः।
क्षयन्वाजै पुरूश्चन्द्रो नमोभिः।।

भाष्य - (अग्निः) मूल शक्ति (अमूरः) ईश्वरीय सकाश से ज्ञानी की तरह (विश्व जन्ये देवी अमृते द्यावा पृथिवी) सबको उत्पन्न करने वाले दिव्य गुण संपन्न प्रवाह से अविनाशी द्युलोक पृथिवी को (आभाति) प्रकाशित करती, उद्भूत करती है (वाजैः) बलों (नमोभिः) अन्नादि शक्तियों से (पुरूः चन्द्रः) बहुत प्रकार प्रकाशित करती हुई वह मूल शक्ति (क्षयन्) सर्वत्र व्याप रही है।

अब ऋग्वेद मंडल 1, सूक्त 62 के 12वें मन्त्र से इस विषय पर प्रकाश डाला जाता है। मन्त्र है - (क्र. 41)

सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म।
.... इन्द्र ....।।

(दस्म, दस् = उजाड़ना से म- प्रत्ययान्त पृ. 341) है दुःखो कों उजाड़ने वाले इन्द्रः ईश्वर सनात् एव अनादि परम्परा से ही तव गभस्तौ तेरे हाथों में, तेरे वश में, आधिपत्य में विद्यमान रायः भौतिक द्रव्य न क्षीयन्ते क्षीण नहीं होते न उप दस्यन्ति न कभी नाश को प्राप्त होते हैं।)

अनादि परम्परा से प्रकृति ईश्वर के वश में है अर्थात् जगत् का उपादान कारण अनादि है तथा अन्तरहित भी है। ऋग्वेद मंडल 2, सूक्त 8 का देवता अग्नि है, सूक्त का 4था मन्त्र है - (क्र. 42)

आ यः स्व 1 र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा।
अंजानो अजरैरभिः।।

भाष्य - अजरैः नित्य, अविनाशी शक्तियों से उद्भूत हुआ यः यह चित्रः अद्भुत (अर्चिषा, अर्चिस् = प्रकाश, किरण, अग्नि, कोश) तेज, इनर्जी के द्वारा आ विभाति पूर्ण रूप से प्रकाशित हो रहा है भानुना स्वः न सूर्य के प्रकाश के तुल्य (अभि अंजानः, अंज् = लेप करना, शानज, अंजान से) सर्वत्र लेप करता हुआ, फैला हुआ। नित्य प्रकृति से उद्भूत परिणाम सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त किये सूर्य के प्रकाश के तुल्य (हस्तामलकवत्) सब ओर दर्शनीय है।

उसी मंडल के 9वें सूक्त का 5वाँ मन्त्र है - (क्र. 43)

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवे दिवे जायमानस्य दस्मः। अग्ने ....।।

अग्ने हे ज्ञानस्वरूप दस्मः दुःख विनाशक दिवे दिवे प्रतिदिन, आगामी सृष्टियों में जायमानस्य भविष्य में उत्पन्न होने वाले ते तेरे उभयं दोनों प्रकार के (क्रमांक 39 में देखें) वसव्यं भौतिक द्रव्य न क्षीयते कभी क्षीण नहीं होते।

पूर्वोक्त मन्त्रों में सिद्धांत की एकरूपता दर्शनीय है। इस प्रकार अमृत, सनातन, अनादि विशेषणों से विभूषित एक मूल अन्ततम, आद्या शक्ति की परिकल्पना मन्त्रों में है। यह शक्ति भौतिक जगत् का उपादान कारण है। ऋग्वेद में इस आद्या शक्ति को अदिति नाम से संबोधित किया गया है। ऋग्वेद में 1/113/19वाँ मन्त्र है - (क्र. 44)

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि।

देवानाम् सूक्ष्म स्थूलभूत एवं ज्योतिपिण्डों की माता अदितेः माता, मूल कारण अदिति की, से उत्पन्न अनीकं सेना (यज्ञस्य, यज् = संगतिकरणे) सृष्टि संगतिकरण की बृहती केतुः विस्तृत पताका की तरह विभाहि शोभित है।

माता अदिति नाम से कहा गया मूल कारण, मूल तत्त्व देवों की उत्पत्ति का हेतु है अर्थात् मूल मातृ शक्ति (mother cause) भौतिक जगद्रूप परिणाम का आद्य कारण है।

7. ईश्वर एवं अदिति दोनों नित्य हैं

ईश्वर तथा अदिति दोनों सह-अस्तित्ववान् एवं नित्य हैं। अदिति संज्ञा मूल कारण (fundamental cause), चरम भौतिक सत् (ultimate physical reality), आद्य कारण (initial material cause) की है। अदिति जगत् का उपादान कारण (material cause) है, ईश्वर जगत् का निमित्त कारण (efficient cause) है। अदिति अचेतन, नित्य एवं अधिष्ठित है, ईश्वर नित्य अधिष्ठाता है।

ईश्वर के सकाश से सृष्टिप्रलय के अबाध चक्र में मूल शक्ति परिभ्रमण करती है। ऋग्वेद मंडल 1, सूक्त 141 के 2रे मन्त्र पर विचार किया जाता है - (क्र. 45)?

पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्त शिवासु मातृषु।

(पृक्षः = सन्तुष्टि, पृ. 665 वै. व्या.) सन्तुष्ट हुई पितुमान् पिता ईश्वर के तुल्य नित्य शाश्वत वपुः देह, स्वरूप का आ शये आश्रय लेती हूँ, निवास करती हूँ। सप्त शिवासु सात कल्याणप्रद महाभूतों में मातृषु माताओं के रूप में द्वितीयम् दूसरी अवस्था को आ शये प्राप्त हुई शयन करती, निवास करती हूँ।

मन्त्र में कहा गया है कि माता अदिति का मूल स्वरूप ईश्वर की तरह नित्य एवं स्वयंभू है तथा स्वगुण स्वशिक्त सम्पन्न है। अदिति माता अपनी दूसरी अवस्था में सप्तवर्गीकृत दृश्य जगत् को उत्पन्न करती है अर्थात् समस्त भौतिक जगत् सात मुख्य वर्गों में विभाजित कर परिभाषित किया जा सकता है। इन सात भौतिक सत्ताओं का उपादान कारण, द्राव्यिक कारण (material cause) एक ही केन्द्रीकृत आद्या स्वयंभू सत्ता अदिति (प्रकृति) है।

यह सिद्धांत विविध रूपों में अनेक मन्त्रों में निहित है। अब ऋ. 10/48/1 मन्त्र के विषय पर प्रकाश डाला जाता है। मन्त्र है - (क्र. 46)

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।

भाषार्थ - अहं मैं परमात्मा वसुनः भौतिक पदार्थ सत्ता का पूर्व्यः अनादि काल से पतिः पूर्ण स्वामी भुवं हूँ अहं मैं धनानि भौतिक ऐश्वर्य धनों का संजयामि सह-अस्तित्ववान् होकर शश्वतः सनातन काल से उसका अधिपति हूँ।

प्रश्न - आपने मूल भौतिक सत्ता पर कब आधिपत्य किया था ?

उत्तर - शश्वतः, अनादि काल से। ईश्वर तथा अदिति काल से निरपेक्ष सत्ताएँ हैं। कब का प्रश्न उत्पत्तिधर्मी सत्ता को प्रयुक्त होता है।

मन्त्र में यह कहा गया है कि ईश्वर तथा आद्या मूल भौतिक सत्ता दोनों सनातन हैं तथा ईश्वर उस द्रव्य सत्ता का शाश्वत अधिपति है। साथ ही धनानि वसुनः, जयामि, आदि संज्ञाओं से प्रकृति को आद्या भौतिक (अचेतन) धनों निरूपित किया गया है।

ऋग्वेद मंडल 6, सूक्त 76 के प्रथम मन्त्र से इसी विषय पर और प्रकाश डाला जाता है। मन्त्र है - (क्र. 47)

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः।।

भाष्य - (विश्वानरः, विश्व-अन्-अरः, अन् = श्वसनं, अर् = स्थिर करना[1]) समस्त श्वास लेने वाले प्राणियों को प्राणापान से युक्त कर स्थायित्व प्रदान करने वाले देवः प्रकाशक सविता जगत् उत्पादक देव ने विश्वजन्यं विश्व को उत्पन्न करने वाली अमृतं अविनाशी ज्योतिः प्रकाशमय तेज, शक्ति का (उत्अश्रेत्, श्रि=आश्रय लेना की लुङ् धातु) पूर्ण रूप से या निश्चय ही आश्रय लिया उ तथा (क्रत्वा, क्रतुः= ज्ञान, योग्यता) इस ज्ञानमय योग्यता से देवानाम् देवों की (अजनिष्ट, धातु जन् का लुङ्) उत्पत्ति की (अकः, अक् = टेढ़े मेढ़े चलना) टेढ़े मेढ़े चलने वाले विश्वं भुवनं उषाः समस्त लोक एवं सृष्टि काल चक्षुः ज्ञान चक्षु से आविः रक्षित हुए।

मंत्र में यह कहा गया है कि विश्व की जन्मदायिनी अविनाशी ज्योति मूल शक्ति का आश्रय लेकर जगत् उत्पादक ईश्वर ने देवों का उद्भव किया अर्थात् जगत् का उपादान कारण नित्य प्रकृति है तथा सविता (ईश्वर) अपने ज्ञानमय सामर्थ्य से जगत् का कर्त्ता, निमित्त कारण है तथा प्रकृति देवों का उपादान कारण है अतः देव प्रकृति के भौतिक पहलू है।

8. देवी एवं माता अदिति के उपनाम हैं

आद्या अन्ततम भौतिक सत्ता को ऋग्वेद में माता एवं देवी पदों से विभूषित किया गया है। प्रसंगानुसार देवी एवं माता अदिति के पदनाम ही हैं, इस हेतु यहाँ ऋग्वेद से कुछ उद्धरण दिये जाते है।

"अवतु देव्यदितिः" दिव्य अदिति रक्षा करे, ऋ. 2/40/6

"अभि यं देव्यदितिर्गृणाति"

जिसकी दिव्य अदिति वन्दना करती है, ऋ. 7/38/4।

"सुहवा देवी अदितिः" दिव्य अदिति को आदरपूर्वक बुलावें, ऋ. 7/40/4 ऋग्वेद 8/25/10 में यह पद आता है।

"उत नो देव्यदितिरूरूष्यतां" दिव्य अदिति हमारी रक्षा करें।

इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रों से हम देखते हैं कि देवी, अदिति का पदनाम ही है।

---

1. व्याख्या गीता श्लोक - 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनाम् देहमाश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्'। पर आधारित।

ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 72 के 9वें मन्त्र में अदिति के सात पुत्रों की बात आयी है। मन्त्र है - (क्र. 48)

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम्।

पूर्व्यं युगं आदि सृष्टि काल में अदितिः माता अदिति सप्तभिः पुत्रैः सात पुत्रों के द्वारा उप प्र ऐत् आयी थी।

इस मन्त्र से यह ज्ञात होता है कि क्रमांक 45 के मन्त्र में जो सात पुत्रों की बात है वह अदिति के सात पुत्रों की ही है तथा वहाँ जो माता पद आया है वह अदिति के लिए ही आया है। क्र. 44 में भी माता अदिति पद आया है। अस्तु, माता पद भी संदर्भानुसार अदिति का पदनाम है।

9. अदिति स्वयंभू सत्ता है

पूर्वमीमांसा में हम यह देख चुके हैं कि ऋग्वेद ने भौतिक द्रव्य सत्ता को दो वर्गों में विभक्त किया है। इनमें से एक वर्ग सत्स्वरूप अजन्मा, असुता कहा गया है। इस सत्ता को मन्त्रों में अमृत, सनातन अजर, नित्य, शाश्वत आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। जैसा कि अध्याय 1 में कहा जा चुका है कि यह वेद की अपनी विशिष्ट शब्दावलि है जिसका प्रयोग निष्प्रयोजन नहीं है वरन् दार्शनिक महत्त्व की असाधारण स्थिति को दर्शाने हेतु हुआ है। अस्तु, भौतिक अन्ततम मूल आद्या सत्ता अदिति का अस्तित्व निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है।

10. अदितिः शब्द का दूसरा प्रयोग

अदितिः शब्द का प्रयोग अखंड सत्ता के लिए हुआ है यह बताया जा चुका है। कुछ सत्ताएँ ऐसी हैं जो अखंड नहीं है आदि अन्त वाली हैं किन्तु सृष्टिक्रम में बार-बार आने से उनकी निरन्तरता बनी हुई-सी दिखाई देती है। नदी का जल प्रतिक्षण बदलता है। इस प्रतिक्षण बदलने वाली नदी को समग्र रूप में जब देखा जाता है तो एक स्थिर अखंड सत्ता प्रतीत होती है। हम कहते हैं यह वही गंगा है जो गत वर्ष देखी थी यद्यपि इस काल में न जाने कितना जल प्रवाहित हो चुका। इस प्रकार की सत्ता को प्रवाह से नित्य या अखंड कहते हैं। इस वर्ग में आने वाली सत्ताएँ अखंड न होते हुए भी प्रवाह से अखंड हैं। अखंडता के इन उदाहरणों को निहित करने की दृष्टि से ऋग्वेद ने इस वर्ग में आने वाली सत्ताओं को अदिति कहा है। ऋचा (1/89/10) में कहा गया है - (क्र. 49)

द्यौ अदिति है, अन्तरिक्ष अदिति है, माता अदिति है, पिता अदिति है, पुत्र अदिति है।

जगत् में माता-पिता पुत्र का कभी अभाव नहीं होता। कोई यह नहीं कह सकता कि आज जगत् में कोई स्त्री माता नहीं, कोई पुरुष पिता नहीं है या कोई पुत्र की संज्ञा को पूर्ण करने वाला बालक नहीं है। फ्रांस में जब एक राजा मरता है तो तुरन्त दूसरे को सिंहासन पर बैठाया जाता है। तब कहा जाता है राजा मर गया है राजा दीर्घजीवी हो। इस प्रकार राजा पद की सत्ता की निरन्तरता बनाये रखी जाती है वैसे ही जगत् में माता, पिता, पुत्र पदों की अविरलता है, अखंडता है इस अर्थ में ये अदिति हैं।

ऋग्वेद के अनुसार सृष्टिप्रलय का अनन्त क्रम दिन-रात की तरह चल रहा है। प्रत्येक सृष्टिकाल में प्रकाशित लोकों की व पृथ्वी की रचना होती है यह तथ्य मंडल 10 के सूक्त 190 की 3 ऋचा में व्यक्त हुआ है। इस प्रकार बार-बार विनष्ट होने पर भी बार-बार उत्पन्न होने के कारण इनकी सत्ता की निरन्तरता देखी जाती है ये प्रवाह से अखंड है। अतः उस अर्थ में अदिति कहे गये हैं। यही सत्य उपनिषद् वचन में अभिप्रेत है[1]।

इसी अर्थ में अदितिः शब्द का प्रयोग यदा कदा पृथ्वी के लिए हुआ पाया जाता है। (क्र. 1/24/1,2)

11. ऐतरेय ब्राह्मण की आख्यायिका में अदिति की सत्ता संबंधी विचार

ऋग्वेद के अनुसार अदिति मूल शक्ति है, ब्राह्मी अवस्था है। सृष्टियज्ञ अदिति से आरम्भ होता है, अदिति से शनैःशनैः समस्त जगत् प्रादुर्भूत होता है। प्रलयकाल में उसी मूल शक्ति अदिति में विलीन होता है। इस तथ्य को ऐतरेय ब्राह्मण (1/2/1) में एक सुन्दर कथा के माध्यम से कहा गया है। (क्र. 50)

यज्ञो वै देवभ्यः उपक्रामत ते देवा न किंचनाशक्नुवन् कर्तुं न प्राजानंस्तेऽब्रु-वन्नदितिं त्वयेमं यज्ञं प्रजानामेति, या तथेत्यब्रवीत्। सा वै वो वरं वृणा इति, वृणीष्वेति। सैतमेव वरमवृणीत मत्प्रायणा यज्ञाः सन्तु मदुदयना इति तथेति।

यज्ञ देवों के पास से चला गया। वे देव न कुछ भी कर सके, न ही कुछ जान सके। उन्होंने अदिति से प्रार्थना की तुम्हारे प्रसाद से हम यज्ञ को जानने में समर्थ

1. ऊर्ध्वमूलोऽधः शाखा एषोऽश्वत्थः सनातनः। कठ. 2/3/1
ऊपर की ओर मूल वाला, नीचे की ओर शाखा वाला यह (जगत्) सनातन पीपल वृक्ष है।

होवें। उसने कहा- तथास्तु किन्तु मे एक वर का वरण करती हूँ, उन्होंने कहा- वरण करो। उसने यही वर माँगा कि यज्ञ मुझसे ही आरम्भ हों तथा तुझसे ही समाप्त हों। (उन्होंने कहा) ऐसा ही होगा।

इस कथा का सार यह है कि सृष्टि यज्ञ मूल शक्ति अदिति से आरम्भ होता है तथा उसी पर सामप्त होता है। देव मध्यवर्ती सत्ताएँ है मूल शक्ति के प्रसाद से ही देव सृष्टि रचना में भाग लेने में समर्थ है। इसीलिए यज्ञों में आरम्भ की इष्टि में अदिति के लिए प्रथमतः चरू होता है तथा अन्त की इष्टि में भी अदिति के लिए चरू होता है।

12. मूल तत्त्व के विषय में आधुनिक विज्ञान की स्थिति

अब हम इस पर विचार करेंगे कि विज्ञान की स्थिति 19वीं सदी के पूर्व क्या थी ? डाल्टन के परमाणु के सिद्धांत (1808) के पूर्व रसायन शास्त्र का ज्ञान ऐलीमेन्ट्स् तक सीमित था। ऐलीमेन्ट उसे कहते हैं जो खंडरहित हो, अवयव या घटक रहित हो अर्थात् जो मूल हो, इकाई हो। उस समय ज्ञात ऐलीमेन्ट्स् की संख्या लगभग 90 थी तथा ऐसी परिकल्पना थी कि सम्पूर्ण भौतिक जगत् इन्हीं ज्ञात लगभग 90 ऐलीमेन्ट्स् तथा इनके यौगिक के परिणामस्वरूप बना है, उदाहरण के लिए सोना, लोहा, तांबा, एल्युमीनियम आदि की गिनती ऐलीमेन्ट् में थी। तब ऐसा समझा जाता था कि ये सोना, लोहा, तांबा आदि मूल तत्त्व है अर्थात् इनका छोटे से छोटा कण मूल तत्त्व है, विभागरहित है, अन्तिम सत्ता है। आज विज्ञान स्वयं यह मानता है कि 18वीं सदी के अन्त तक का वह ज्ञान कितना भ्रान्तिपूर्ण था।

इस 19वीं सदी के हजारों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों ने सृष्टि की उत्पत्ति के मूल में एक आद्य अन्ततम भौतिक सत्ता के होने की कल्पना की थी। उन्होंने अन्ततम सत्ता को अखंड शब्द से परिभाषित किया था। उनकी परिकल्पना में 90 नहीं, मूल तत्त्व केवल त्रिवर्गी माना गया है, (अध्याय 8)। उनकी यह उपलब्धि उनकी दार्शनिक विश्लेषणात्मक शक्ति की परिचायक है, किन्तु हमारे लिए आश्चर्य का विषय है। ऋषियों ने अपनी अन्तर्दृष्टि से सृष्टि के रहस्यों के ज्ञान को कल्पना में साकार कर साक्षात् किया तथा अद्भुत भाषा कौशल के माध्यम से रहस्यों के उस ज्ञान का मन्त्रों में समावेश किया, विज्ञान ने उसे अत्यंत कष्टसाध्य प्रयोग सिद्धविधि से प्राप्त किया।

अध्याय 4

आप:
मूलतत्त्व की क्रियाशीलता

वेदों पर अनेक भाष्य एवं लेख प्रकाशित हो चुके हैं। ऐसा मत भी व्यक्त हुआ है कि वेद में कोई क्रमबद्ध विषय नहीं है तथा दर्शन संबंधी गंभीर चर्चा नहीं है। इस मत का प्रमुख कारण यह है कि वेदों का रहस्य आज भी अज्ञात है। वेदों की भाषा परोक्ष, सांकेतिक, प्रतीकात्मक एवं अलंकारों विशेषकर रूपकों से परिपूर्ण है। मन्त्रों में निहित सत्य तक पहुँचने के लिए संकेतों को दृष्टि से ओझल न करना आवश्यक है। पूर्व अध्याय में यह बताया जा चुका है कि अमृत, अजर, अज, सनातन आदि सांकेतिक शब्द हैं जिनका दार्शनिक महत्त्व है। इसी प्रकार "यज्ञ" शब्द है। यज्ञ: का अर्थ अग्निहोत्र ही नहीं है वरन् धातु यज् का अर्थ संगतिकरण (synthesis) भी है। इस अर्थ में यज्ञ शब्द तत्त्वमीमांसा के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा आदि सृष्टिकाल की तत्त्व संगतिकरण के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस अध्याय में क्रमांक 55, 57 के मन्त्रों में यह तथ्य दर्शनीय है। दूसरी प्रमुख बात यह है कि वेदों में प्रतीकवाद (symbol-ism) है। अस्तु, मन्त्रों में निहित रहस्यों के अनावरण के लिए प्रतीकों के भाव का पूर्व निर्धारण आवश्यक है। आप: का साधारणत: अर्थ जल है किन्तु ऋग्वेद में इसका प्रयोग एक प्रतीक (सिम्बल) के रूप में हुआ है। ऋग्वेद में त्रिवर्गी मूल तत्त्व के समग्र रूप को अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। त्रिवर्गी मूल तत्त्व की मूल सत्ता को ब्राह्मी स्थिति कहते हैं, (श्वेताश्वतर उपनि. 1/9)। इस स्थिति के अनन्तर मूल तत्त्व के तीन वर्ग उद्वेलित हो जाते हैं। सृष्टि में नियोजित होते ही त्रिवर्गी मूल तत्त्व की इस क्रियाशील अवस्था का प्रतीक "आप:" हो जाता है। अस्तु संदर्भानुसार आप: का अर्थ मूल तत्त्व की क्रियाशील (active) अवस्था है किन्तु ऐसे स्थल पर आप: का अर्थ जल ग्रहण करने पर मूल भाव तिरोहित हो जाता है। आप: का यह प्रतीकात्मक अर्थ स्वादि० परस्मै० धातु आप्लृ व्याप्तौ (अमर कोश)

के आधार पर सर्वव्यापी मूल तत्त्व के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त है। इस प्रकार आपः का साधारण प्रयोग जल के अर्थ में तथा विशिष्ट प्रयोग प्रतीक के रूप में हुआ है।

ऋग्वेद के अनुसार भौतिक मूल आद्या सत्ता अदिति या माता है। सृष्टि में नियोजित होते ही प्रकृति क्रियाशील हो जाती है। प्रकृति की इस द्वितीय अवस्था का प्रतीक आपः, अप् या माया है।

विज्ञान के अनुसार सृष्टि आरम्भ एक बृहत् अग्निकाण्ड से होता है। उस अग्निकाण्ड के समय प्रथम प्रादुर्भूत हुई द्रव्य की अवस्था क्वान्टम अवस्था कही गई है। विज्ञान की इस अवस्था की द्योतक ऋग्वेद की आपः अवस्था है। वास्तव में क्वान्टम अवस्था तो इस प्रकार की है जो वर्णन के परे ही है।

1. आपः के विशिष्ट अर्थ पर ब्राह्मण प्रमाण

ऐतरेय ब्राह्मण (2/2/6) में आपः शब्द के व्यापक अर्थ में ग्रहण किये जाने को कारण सहित एक आख्यायिका के द्वारा दर्शाया गया है।

यज्ञ में प्रजापति के स्वयं होता होकर प्रातरनुवाक बोलने के लिए उद्यत होने पर सभी देवाताओं ने अपेक्षा की कि मुझे लक्ष्य करके आरम्भ करेंगे। सभी को आशान्वित देखकर प्रजापति ने विचार किया कि यदि किसी मंत्र से प्रतिपादित एक देवता को लक्ष्य करके प्रारम्भ करूँगा तो अन्य देवता कुपित होंगे अतः मुझे किस प्रकार सभी देवता प्राप्त होगें ऐसा विचार कर प्रजापति ने सभी देवों के सिद्धयर्थ "आपो रेवतीः" ऋचा (ऋ. 10/30/12) का दर्शन किया।

"आपो वै सर्वा देवताः"

इस पद पर भाष्य करते हुए भाष्यकार सायण ने लिखा है :-

तत्राप्शब्देन सर्वा देवता उक्ता भवन्ति। आप्नुवन्तीत्यापः।

उस अप् शब्द से सब देवता कहे गये। आपः शब्द प्राप्तार्थक है। सायण ने यह भी कहा है -

"सर्वा देवताः अप्युपाप्ता उपक्रमे प्राप्ता भविष्यन्ति"

सभी देवताओं का (उपक्रमे, उपक्रमः = आरम्भ, उपाय) आरम्भ ईश्वरीय योजना से होता है अतः सभी देवता उप-आप्ता (आप् - आप्नोति स्वादि धातु) आरम्भ होने पर ही प्राप्त होते हैं। ईश्वरीय योजना, उपाय से ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार "अप्" शब्द इस व्यापक अर्थ में सर्व देवों को समाविष्ट करता है। यहाँ

"अप्" शब्द केवल जल महाभूत (देव) का ग्रहण नहीं किया गया है जल महाभूत में सभी देव सन्निहित नहीं है। ध्यान रहे, मूल आद्या शक्ति (मूल तत्त्व) में सभी देवों (भौतिक अवस्थाओं) का समावेश है उसी शक्ति से सभी देव प्रातव्य हैं अत: आपः शब्द इस अर्थ में मूल सत्ता का द्योतक है।

1. (अ) आपः के विशिष्ट अर्थ पर गोपथ ब्राह्मण प्रमाण

मूल आद्या शक्ति का नाम आपः क्यों पड़ा इस तथ्य को गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग प्र. 1/कं. 1) ने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा है यद्यपि यह कथन एक रूपक के द्वारा व्यक्त किया गया है।

सर्वप्रथम ब्रह्म अकेला था उसने अपने से ही अपने समान दूसरा देव (दिव्य शक्ति) बनाने का निश्चय किया, उसने श्रम किया, सब ओर से तप किया, भली भाँति तप किया। तम् वै उस ही एतम् इस सुवेदम् अच्छी तरह जानने योग्य (पदार्थ) को स्वेदः इति आचक्षते स्वेद (पसीना) कहते हैं।

क्योंकि पसीना द्रव (जल रूप) है इस कारण ईश्वरीय श्रम से उद्भूत सर्वप्रथम तरल को आपः कहा गया है जिसका स्पष्ट उल्लेख कंडिका 2 व 3 में इस प्रकार है-

उस श्रम किये हुए, तपे हुए, भली भाँति तपे हुए (ब्रह्म) के सर्वेभ्यो रोम-गर्तेभ्यः सभी रोम छिद्रों से पृथक् स्वेदधाराः पृथक्-पृथक् पसीने की धाराएँ प्र अस्यन्दन्त बहने लगी तब उस ब्रह्म ने कहा - आभिः वै अहं इदं सर्वम् जनयिष्यामि यत् इदं किञ्च इति इनसे ही मैं इन सबको उत्पन्न करूँगा यह जो कुछ भी होगा,[1] उसने कहा - आभिः वै अहं इदं सर्वम् धारयिष्यामि यत् इदं किञ्च इति इन (पसीने की धाराओं) से ही मैं इन सबको धारण करूंगा यह जो कुछ भी होगा, तस्मात् धाराः अभवन् उसी से वे धाराएँ (धारण शक्तियाँ) हुईं तत् च धाराणां धारत्वं यत् आसु ध्रियते वह धाराओं का धारापन (धारण सामर्थ्य) है जो इन सबमें धरा गया है। वह जो उसने कहा ....

1. इस वाक्य के आगे जो वचन है उसमें 'जाया' शब्द का वैदिक निर्वचन के प्रयोग का रहस्य है यथा - आभिः वै अहम् इदं सर्वम् जनयिष्यामि यत् इदं किञ्च इति, तस्मात् जायाः अभवन् - उससे वे (पसीने की धाराएँ) जायाएँ (माताओं के समान उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ) हुईं, तज्जायानां जायात्वं यच्चासु पुरुषो जायते - भाष्यानुसार आदि सृष्टि में उत्पन्न तरलों को जाया क्यों कहा गया है यह कारण सहित कहा गया है।

(ओ३म् ब्रहा ह .... स्वेद इत्याचक्षते)

आभिः वै अहँ इदं सर्वम् आप्स्यामि यत् इदं किञ्च इति इन सबमें आप्स्यामि - आप्लृ व्याप्तौ- लृट व्याप्स्यामि व्यापूंगा यह जो कुछ भी होगा। तस्मात् आपः अभवन् उसी से वे आप् (व्यापक तत्त्व) हुए तत् अपां अप्त्वम् वह आपः का व्यापकपन है। सः वै सर्वान् कामान् आप्नोति यान् कामयते वह (विद्वान्) अवश्य सब कामनाओं को पाता है जिन्हें वह चाहता है (जो आपः के इस व्यापक अर्थ को जानता है), (कंडिका 2)। इस प्रकार इस आख्यान में आपः को मूल तत्त्व के व्यापक अर्थ में लेने का आधार क्या है इसे निर्वचन सहित कहा गया है। कंडिका 3 में कहा गया है - उन आपः को प्रकट करके ब्रह्म ने उसमें अपनी छायाँ छाया, तेज को देखा तब ब्रह्म का रेतः बीज अपने आप टपका वह आपः में ठहर गया (अर्थात् रेतः)[1] ईश्वरीय कामना आपः मूल शक्ति में अवस्थित हुई। यही जगत् उत्पत्ति का कारण हुआ। उनको (उन आपः को) उसने भली भाँति दबाया, सब ओर से दबाया, सब ओर से तपाया। वे दबे हुए, तपे हुए द्वैधम् अभवन् दो प्रकार के हो गये। ये दो प्रकार के रूप हैं द्रव्य (मैटर) एवं विकिरण (रेडियेशन)।

आगे गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग प्र. 1/कं. 39) में कहा गया है - आपो गर्भं जनयन्तीः इति संसार रूप गर्भ (बालक) को उत्पन्न करते हुए आपः प्रकट हुआ अपां गर्भः पुरुषः आपः का गर्भ ब्रह्म है अर्थात् आपः में ब्रह्म छिपा हुआ है, आपः सर्वप्रथम तत्त्व है सः यज्ञः वही यज्ञ है, आपः ही संगतिकरण का मूलाधार है।

तदप्येतद् ऋचोक्तम् यह भी इस ऋचा में कहा गया है -

आपः भृग्वङ्गिरोरूपम् आपः भृग्वङ्गिरोमयम्। सर्वम् आपोमयं सर्वं भूतम् भृग्वङ्गिरोमयम्। आपः भृगु अंगिरस् रूप वाला है आपः भृगु अंगिरस से परिपूर्ण है। यह सब जगत् आपः से परिपूर्ण है सभी भूत (सूक्ष्म स्थूल) भृगु अंगिरस से परिपूर्ण है।

भृगु अंगिरस् के दो रूप हैं। भृगु आद्या विकिरण (रेडियेशन) का द्योतक माना जा सकता है तथा अंगिरस् प्रकृति का द्रव्य भाग माना जा सकता है जो कण-प्रतिकण का संघात है। भृगु अंगिरस् का परचिय ग्रन्थ के द्वितीय भाग में है। इस प्रकार आपः के विशिष्ट अर्थ पर प्रकाश पड़ता है। आपः सृष्टिरचना में ब्रह्म से उद्भूत हुआ सर्वप्रथम तत्त्व है, क्रियात्मक प्रकृति है।

आपः के स्वरूप पर शतपथ ब्राह्मण प्रमाण -शतपथ ब्राह्मण (कं.11, अ. 1) में कहा गया है -

1. कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् (ऋ. 10/129/4)

आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास

अग्रे आदि सृष्टिकाल में ह निश्चय ही इदम् यह (सलिलम् = सलति गच्छति निम्नं) प्रवाहशील तरल आपः एव आस आप कहा जाने वाला तत्त्व ही था। इस प्रकार यह विदित होता है कि आपः का उपनाम सलिल है जो मूल क्रियात्मक तत्त्व के लिए प्रयुक्त[1] होता है।

1. (ब) आपः के विशिष्ट अर्थ पर स्मृति प्रमाण

आपः के विशिष्ट अर्थ पर स्मृति से प्रकाश डाला जाता है। मनुस्मृति (1/ 8) श्लोक है -

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप् एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।।

पूर्ण चिंतन कर अपने देहभूत उपादान कारण से विविध सृष्टि प्रकट करने, रचने के हेतु उसने "अप् तत्त्व" को ही सर्वप्रथम (ससर्ज, सृज् की लिट् ल.) रचा प्रकट किया, उसी में (उसी अप् तत्त्व में) नीचे के (आगामी रचना के) लिये बीज का सृजन किया। श्लोक में अत्यंत स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि अप् सर्वप्रथम तत्त्व है जो पुरुष देहभूत उपादान कारण (अदिति) से प्रादुर्भूत हुआ यही आगामी भौतिक द्रव्य सृष्टि का बीजवत् कारण हुआ।

इसी को आगे के श्लोक (1/9) में कहा गया है -

तदण्डमभवद्धैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम्।

तत् उस अप् तत्त्व का पिण्ड स्वर्ण वर्ण वाला सहस्रों सूर्यों की प्रभा वाला हुआ।

विवरण से स्पष्ट है कि आपः तत्त्व जल नहीं है, वरन् मूल उपादान कारण की क्रियात्मक अवस्था है। जल से अग्नि पिण्ड की उत्पत्ति असम्भव है।

स्मृति के श्लोक 75-78 में आकाश से वायु, वायु से अग्नि व अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी यह क्रम बताया गया है। अस्तु, जल की उत्पत्ति बहुत बाद की है।

---

1. **तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्** (ऋ. 10/129/3)
तं घोरात् क्रूरात् सलिलात् सरसः उदानिन्युः (गो. ब्रा. पू. भा. 2/18)
उस महादाहक भंयकर मूल तत्त्व के सागर से उन्हीं वेदों ने महाशक्ति रूपी अश्व को ऊँचा किया। आदिकाल में प्रज्वलित अग्नि के महासागर से आदि शक्ति प्रादुर्भूत हुई।

यहाँ अप् से जल ग्रहण करना महान् असावधानी का द्योतक है जिससे समस्त सृष्टि विज्ञान तिरोहित हो जाता है।

सृष्टिउत्पत्ति अव्यक्त कारण से होती है। सूक्ष्माति सूक्ष्म अवस्था से क्रमशः अपेक्षाकृत स्थूल अवस्थाएँ उद्भूत होती हैं। जल महाभूत है, जल की उत्पत्ति अंतिम चरण में होती है। इसी प्रकरण में स्मृति के 11वें श्लोक में कहा गया है -

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।

वह जो (सृष्टि का) उपादान कारण अव्यक्त नित्य सत्, असत् स्वरूप वाला है।

सत् असत् नित्य अव्यक्त प्रकृति की अवस्थाएँ हैं। अव्यक्त प्रकृति से सर्व प्रथम महत् तत्व की उत्पत्ति कही गई है (स्मृति श्लोक 15)। महत्तत्त्व से अहंकार, पंच तन्मन्त्राणि की उत्पत्ति होती है, (श्लोक 16)। तत्पश्चात् महाभूतों की उत्पत्ति कही गई है। महाभूतों की उत्पत्ति के क्रम में भी जल (द्रव) की उत्पत्ति बाद की है। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल व जल से पृथ्वी की उत्पत्ति का क्रम कहा गया है। (श्लोक 75-78 अ - 1)

यही क्रम सांख्य दर्शन में कहा गया है यथा -

प्रकृतेर्महान्, महतो अहंकार .... आदि ....

सभी शास्त्रों में जल तत्त्व उत्पत्ति क्रम में अन्त में उद्भूत हुआ कहा गया है।

खम् वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी (मुण्डक उ. 2/1/3)

सर्वप्रथम आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी का होना कहा गया है।

इसी प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् में भी यही क्रम कहा गया है -

तस्माद्वा एतस्मादात्मन् आकाशः सम्भूतः,
आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः ....।

सर्वप्रथम प्रकृति से अत्यंत सूक्ष्म सर्वव्यापी आकाश (विकिरण) उत्पन्न हुआ। उस विकिरण से वायु (गैसीय अवस्था) हुई। उससे प्रज्वलित अग्नि पिण्ड (मोलटन स्टेट) हुई तदन्तर तरल (लिक्विड) अवस्था हुई।

इस प्रकार जल (द्रव) अवस्था की उत्पत्ति बहुत बाद की है। अप् सर्वप्रथम उत्पन्न तत्त्व कहा गया है। "अप्" मूल शक्ति की क्रियात्मक अवस्था का द्योतक है

जो सृष्टि में नियोजित किया जाता है। यहाँ "अप्" से जल ग्रहण करना महान् असावधानी का द्योतक है।

2. आपः मूल तत्त्व की परिणामी क्रियाशील अवस्था का प्रतीक है

आपः के प्रतीकात्मक अर्थ को प्रकाश में लाने हेतु सर्वप्रथम ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 82 के 5वें, 6वें मन्त्र पर विचार किया जाता है जो प्रश्नोत्तर के रूप में है। मन्त्र है - (क्र. 51)

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कं स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे।।

भाष्य - परः दिवः द्यु-लोक से परे एना पृथिव्या परः इस पृथ्वी से परे देवेभिः परः महाभूतों से परे असुरैः परः यत् अस्ति सूक्ष्म शक्तिशाली भूतों से परे जो है तत् प्रथमं उस सर्वप्रथम आद्या अवस्था के गर्भम् गर्भ को आपः आपः अवस्था कं स्वित् कहाँ दध्रे धारण करती है यत्र जहाँ विश्वे देवाः समस्त पूर्वोक्त शक्तियाँ (सं अपश्यन्त, सम्यक् अपश्यन्त परस्परं एवं एकस्मिन् रूपे) एक दूसरे को एक ही रूप में देखते अर्थात् जहाँ सब अपने मूल कारण (अदिति) में लीन हो एक रूप (मूल तत्त्व के रूप में) हो गये थे।[1]

मन्त्र में यह अत्यन्त स्पष्ट है कि जल का यहाँ कोई सरोकार नहीं है। जैसा कहा जा चुका है मूल तत्त्व की प्रथम अवस्था अदिति है। मूल तत्त्व की द्वितीय अवस्था त्रिवर्गी तत्त्वों की क्रियाशील अवस्था आपः है। मन्त्र में यह प्रश्न है कि इस द्वितीय अवस्था आपः ने इस अवस्था को अपने गर्भ में कहाँ रखा ? प्रश्न के उत्तर में, जो आगामी मन्त्र में है, यह तथ्य असंदिग्ध रूप से प्रस्थापित हुआ है। यथा - (क्र. 52)

तमिद् गर्भम् प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः।।

भाष्य - यस्मिन् जिस पर विश्वा भुवनानि समस्त लोक तस्थुः स्थित है। यस्मिन् एकं जिस एक को अर्पितं समर्पित हो विश्वे देवाः सारे महाभूत, सूक्ष्म भूत यत्र जहाँ सम् अगच्छन्त सम्यक् रूप से (अपने पृथक् रूपों को खोकर) एक हो गये

---

1. सर्वे ह वै देवा अग्रे सदृशा आसुः, सभी देव आदि में एक से ही थे।
   श. ब्रा. वै. व्या. से उद्धृत।

थे तं इत् उस ही अजस्य नाभौ अधि अजन्मा प्रकृति (अदिति) के नाभि स्थान में आप: आप: अवस्था प्रथमं गर्भम् आद्या अवस्था को, मूल कारण को गर्भ रूप में दध्रे धारण करता है।

मंत्र में यह बताया गया है कि आप: अजन्मा प्रकृति की अत्यन्त निकट की अवस्था है। दोनों की स्थिति नाभि चक्र में है (मन्त्र क्रमांक 62 देखें) इस प्रकार आप: के प्रतीकात्मक अर्थ का निर्धारण होता है। मन्त्रों में यह अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा गया है कि समस्त देव अज प्रकृति में लीन होते हैं उसी अज प्रकृति से उत्पत्तिवान् है अत: देव भौतिक सत्ताएँ है, चेतन देवता (गॉड्स) नहीं है।

आप: के प्रतीकात्मक अर्थ की पुष्टि के लिए अन्य स्थलों से प्रकाश डाला जाता है।

ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 125 की मन्त्रद्रष्टा ऋषिका वाग् आम्भृणी देवी है। सूक्त का प्रत्येक मन्त्र (4 को छोड़कर) "अहम्" से प्रारम्भ होता है अर्थात् मन्त्र का प्रवचन ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति के द्वारा हुआ माना गया है। शक्ति का वैयक्तीकरण किया गया है। वह शक्ति तृतीय मन्त्र में कहती है - (मन्त्र क्र. 53)

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

अहं मैं (राष्ट्री, ईश्वर के चार नामों में से राष्ट्री एक है निघुण्टु अ. 2/22) ईश्वरीय निर्माणकर्त्री शक्ति वसूनां सङ्गमनी जहाँ तक भौतिक सत्ता है वहाँ तक गयी हूँ। मैं (यज्ञियानाम् यज् = संगतिकरण) तत्त्व संगतिकरण की प्रथमा सर्वश्रेष्ठ (चिकितुषी, चिकित्सु = बुद्धिमान, कोश 1267) ज्ञानवती हूँ।

इस ईश्वरीय निर्माणकर्त्री शक्ति का जन्म कहाँ हुआ इस तथ्य को 7वाँ मन्त्र प्रकाश में लाता है। मन्त्र है - (क्र. 54)

अहम् सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व 1 न्तः समुद्रे।

भाष्य - अहम् मैं अस्य मूर्धन् इस सृष्टि रचना के शीर्ष स्थान पर अर्थात् सृष्टि रचना आरंभ करने के लिए पितरं पिता परमेश्वर को सुवे प्रेरणा देती हूँ। मम योनि: मेरा जन्मस्थान अप्सु आप: के समुद्रे विस्तार के अन्त: अन्त:स्थान में है।

ईश्वरीय निर्माणकार्य का आरंभ अप् तत्त्व व्यापी स्थिति के अन्तर्भाग से प्रारंभ हुआ जैसे चित्रकार की चित्रकारी कला उसे चित्र बनाने की प्रेरणा देती है ऐसे ही ईश्वर की सृजनकला जगत् रचने की प्रेरणा देती है।

ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 121 के 8 वें, 9 वें मन्त्र आपः शब्द के विशिष्ट प्रतीकात्मक अर्थ पर प्रकाश डालते हैं यथा - (क्र. 55)

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम।

भाष्य - य चित् जिस ईश्वर ने (महिना, महिमन्, की तृ. एक व. व्या. पृ. 92) अपनी महिमा से आपः आपः को दक्षं प्रारंभिक सामर्थ्य (दधाना, धा का शानजन्त कृ.) धारण किये यज्ञं संगतिकरण को जनयन्तीः आरंभ करते हुए परि-अपश्यत् समग्र रूप में देखा था यः जो एकः एक अद्वितीय देवेषु अधि देवः देवों पर अध्यक्ष देव, देवाधिदेव उस समय असीत् विद्यमान था न च अन्यः अन्य नहीं - तब कस्मै किस देवाय देव के लिए हविषा विधेम अर्चना का विधान करें वस्तुतः उसी एक अद्वितीय के लिए।

दक्षः शब्द सर्गारंभ की प्रारंभिक सामर्थ्य के लिए प्रयुक्त होता है। इसके प्रमाण हैं यथा -

'अदितेः दक्षो अजायत', मूल आद्या शक्ति से दक्ष उत्पन्न हुआ, ऋ. 10/72/4! दक्षस्य वादितेजन्मनि, अदिति से दक्ष का जन्म होने पर। मूल शक्ति से सृष्टि उत्पादक सामर्थ्य उद्भूत हुई (ऋ.10/64/5)

आपः से वह कौन-सा यज्ञ था जो आरंभ हुआ था ? क्या आपः जल है ? यह बात कि ईश्वर ने उस यज्ञ को देखा था ईश्वर की महिमा को बढ़ाने के लिए कही गयी है। उस समय देवों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। अस्तु, बात आदिकाल की है। वह यज्ञ सृष्टिरचना, तत्त्व संगतिकरण के अतिरिक्त अन्य कुछ और नहीं था। उस समय एकमात्र अधिपति वर्तमान था जिसने (आपः को) मूल तत्त्व को क्रियात्मक होते देखा था। इस प्रकार मंत्र में जहाँ एक ईश्वरवाद की छटा दर्शनीय है वहीं यह तथ्य भी निहित है कि आपः मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था है तथा देव भौतिक द्रव्य सत्ताएँ है जो क्रियात्मक मूल तत्त्व आपः से उद्भूत होती हैं।

ऋग्वेद मण्डल 4, सूक्त 26 के 2 रे मन्त्र का उत्तरार्ध भाग है - (क्र. 56)

अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्।

अहं मैं ईश्वर (वाक्शाना, वश् = चाहना के शानजन्त कृ. वावशान से पृ. 554) विविध इच्छा करता हुआ अपः मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था अनयं लाया था देवासः लोक समूह, महाभूतादि मम मेरी (केतम्, केतः = झंडा, इच्छा शक्ति, इरादा - कोश पृ. 301) योजनानुसार अनु आयन् पीछे आये।

मन्त्र में कहा गया है कि विविधता की इच्छा करते हुए ईश्वर ने सर्वप्रथम अप् तत्त्व का सृजन किया। अनन्तर उसी अप् तत्त्व से देवों का निर्माण हुआ। अस्तु, देव भौतिक सत्तात्मक स्थितियों, अवस्थाओं, यौगिकों के द्योतक हैं तथा आपः मूल तत्त्व की परिणामी अवस्था है जब उसे सृष्टि रचना के हेतु नियोजित किया जाता है।

3. माया अप् का उपनाम है

ऋग्वेद में माया शब्द प्रकारान्त से मूल तत्त्व का आपः अवस्था का द्योतक है यह तथ्य ऋग्वेद 10/88/6 वें मन्त्र से प्रकट होता है, यथा – (क्र. 57)

मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन्।

भाष्य – यत् जो (तूर्णिः, भ्वा. आ. त्वर् से) अति वेगवान् हुई चरति विचरण करती है। यज्ञियानां तत्त्व मीमांसकों का तु निश्चय ही एतां मायाम् उस माया का प्रजानन् अच्छी तरह जाना हुआ नाम आपः आपः उ ही है।

इसी प्रकार ऋग्वेद मण्डल 3, सूक्त 27 का 7वाँ मन्त्र इस तथ्य की पुष्टि करता है । मन्त्र है – (क्र. 58)

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। विदथानि प्रचोदयन्।

भाष्य – अमर्त्यः अविनाशी देवः ईश्वर होता प्रमुख याज्ञिक–प्रमुख तत्त्व संगतिकरण कर्ता मायया अदिति की माया अवस्था (आपः) के द्वारा (विदथानि = ज्ञान समूह, निरुक्त 6/2) ज्ञानमय सृष्टि कर्मों को प्रचोदयन् प्रेरित करने पुरस्तात् एति पूर्व आता है।

मूल शक्ति की साम्यावस्था के अनन्तर माया (आपः) अवस्था आती है जब मूल तत्त्व क्रियाशील हो उठते हैं। इन तत्त्वों के क्रियाशील होने के पूर्व ही ईश्वर प्रकट होता है अर्थात् ईश्वरीय कामना क्रियाशील होती है। पूर्व मन्त्र में यही बात कही गयी है कि मैं ईश्वर इच्छा करता हुआ आपः तत्त्व को लाया था।

माया प्रकृति का नाम है यह तथ्य उपनिषद्प्रोक्त भी है, यथा – (क्र. 59)

मायाँ तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं (श्वेता. 4/10)

माया प्रकृति को ही जानो मायापति सर्वेश्वर को

अस्तु, माया प्रकृति की प्रजनन करने वाली अवस्था आपः ही है। माया का अर्थ असत्ता, जो अस्तित्व में न हो ऐसा नहीं है।

4. आदिकाल में प्रादुर्भूत गतिशील शक्ति (Cosmic Energy) लोकों के सन्तुलन में हेतुभूत है :-

ऋग्वेद मण्डल 3, सूक्त 30 के 9 वें मन्त्र में लोकों के गुरुत्वाकर्षण संबंधी सिद्धांत के विषय में अत्यन्त दूरगामी परिणाम वाले विचार निहित हैं। मन्त्र है - (क्र. 60)

अस्तभनाद् द्याम् वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूता:।

वृषभ: हे सुखवर्षक त्वया इह प्रसूता: तेरे द्वारा यहाँ प्रेषित आप: आप: अन्तरिक्षं लोकों के बीच के भाग को (inter stellar space) (अर्षन्तु, धातु ऋष् = तीव्रता से जाना, की लोट ल.) तीव्रता से जावें अस्तभनात् द्याम् प्रकाशित लोकों को (जिसने) थामा है।

मन्त्र में यह कहा गया है कि आकाश में स्थित ज्योतिपिण्डों के सन्तुलन का कारण (कास्मिक मैटर) आप: का गतिशील होना है। यह अत्यधिक आधुनिक विचार है कि समग्र विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण बल (यूनिवर्सल फोर्स ऑफ ग्रेवीटेशन) का कारण कास्मिक विकिरण है जो महाविस्फोट (big bang) के समय का अवशेष है। ऋग्वेद के अनुसार अप् तत्त्व की उत्पत्ति आदि सृष्टिकाल में उस समय होती है जब हिरण्यगर्भ: (big bang) की घटना होती है।

अध्याय 5

ऋग्वैदिक बृहती: आप: आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में

ऋग्वेद दर्शन एवं विज्ञान का अभूतपूर्व ग्रन्थ है। किन्तु ऋग्वेद की भाषा परोक्ष, प्रतीकात्मक एवं संकेतात्मक है तथा अलंकारों विशेषकर रूपकों से परिपूर्ण है। वेद के अपने प्रतीक हैं। वेद की परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में उन प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

1. बृहती: आप: अवस्था का परिचय

गत लेखों में अदिति, आप: आदि प्रतीकों में निहित अर्थों को प्रकाश में लाया गया है। ऋग्वेद के अनुसार मूल भौतिक सत्ता त्रिवर्गी है। इस त्रिवर्गी मूल तत्त्व के संघात, समुदाय, समष्टि रूप को अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। आदिकाल में जब त्रिवर्गी मूल सत्ता सृष्टि रचना हेतु क्रियाशील हो उठती है तो प्रकृति की उस अवस्था का प्रतीक आप: या माया कहा गया है, त्रिवर्गी मूल तत्त्व उद्वेलित हो परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप विस्तार को प्राप्त होता है। प्रकृति की इस विस्तृत अवस्था में सृष्टि रचना के सर्वप्रथम यौगिकों (परिणामों, इफेक्टस्) की उत्पत्ति होती है इस अवस्था को बृहती: आप: कहते हैं। बृहती का अर्थ (धातु भ्वा. तुदा. पर. बृह्. = बढ़ना, फैलना) विस्तृत, प्रशस्त है। बृहती शब्द आप: का मात्र विशेषण नहीं है वरन् वैदिक द्रष्टाओं के अनुसार आप: से परवर्ती अवस्था बृहती: आप: है। उपनिषद् एवं दर्शनकारों ने बृहती आप: को महत्तत्त्व कहा है। महत् का अर्थ भी प्रशस्त है। बृहती आप: विज्ञान की प्लाज्मा अवस्था के समकक्ष है।

2. बृहती: आप: मूल क्रियात्मक अवस्था आप: का विस्तार है

ऋग्वेद मण्डल 4, सूक्त 42 का 4था मन्त्र इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। मन्त्र है – (क्र. 61)

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदने ऋतस्य।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम।।

भाष्य – अहं मैं ईश्वर ने (दिवं) दिव्य (उक्षमाणा:, धातु उक्ष् = बढ़ना का शानज. कृ. उक्षमाणा वै. व्या.) वृद्धिशील अप: आप: को (अपिन्वं, पिन्व = पुष्ट करना की लुङ् ल. वै. व्या.) पुष्ट किया था। मैं ही उसे (ऋतस्य = सत्य कारणस्य, अदिते:) मूल प्रकृति के सदने आवास में धारयं धारण करता हूँ।

(अदिते:) मूल आद्या शक्ति के (ऋतेन = स्वभाव, सत्य प्राकृतिक) मौलिक गुणों द्वारा (पुत्र: = उत्पन्न कार्य) उत्पन्न पुत्रवत् परिणाम आप: (ऋतावा, ऋतावन् = नियमित की प्रथमा विभ. एक वचन वै. व्या. पृ. 640 व 690) मौलिक गुणस्वभावानुरूप नियमित (उत) निश्चय ही (त्रिधातु:, धातु: = मूल तत्त्व, मूल संघटक, कोश पृ. 494) तीन मूल तत्त्वों वाला (भूम, भूमन = प्रचुरता वै. व्या. पृ 341) प्रचुरता से (वि प्रथयत्) विशिष्ट विस्तार करता है।

आप: अदिति का प्रथम परिणाम इस अर्थ में है कि आप:, अदिति के अंशभूत तीन तत्त्वों की क्रियात्मक अवस्था है। अखंड आद्या शक्ति अदिति की स्थिति जिस सूक्ष्म स्तर में रहती है उसे "सदनं" कहा गया है। इसी सूक्ष्म स्तर पर त्रिवर्गी मूल तत्त्वों की क्रियात्मक अवस्था आप: उद्भूत होती है व उसका विस्तार होता है अर्थात् त्रिवर्गी क्रियात्मक शक्ति के प्रथम परिणाम उद्‌भूत होते हैं। आप: के इस विस्तार को बृहती: आप: कहते हैं। ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 164 के 2 रे मन्त्र में मूल शक्ति के आवास के सूक्ष्म स्तर को नाभि चक्र कहा गया है – (क्र. 62)

त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वम् यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थु:।

आद्या शक्ति अपनी मूलभूत अवस्था अदिति से आप: अवस्था में से गुजरती हुई बृहती: आप: तक इसी आवास (सूक्ष्म स्तर) में विस्तार करती है।

मूल त्रिवर्गी तत्त्व की प्रारंभिक अवस्थाओं के विषय में ऋग्वेद मण्डल 2, सूक्त 13 के मन्त्रों से प्रकाश डाला जाता है। सूक्त का प्रथम मन्त्र है – (क्र. 63)

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्द्धते।
तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोंऽशो: पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम्।।

भाष्य – ऋतु: अवस्थाओं की जनित्री जन्म देने वाली (अदिति) से अप: आप: को (परि = क्रम, कोश) क्रम में आगामी जानो। जात: उत्पन्न हो (मक्षू = शीघ्र, निघ 2/15) शीघ्र आविशत् प्रवेश (सृष्टि रचना में) किया है। यासु वर्द्धते

जिनमें वृद्धि को प्राप्त होता है। अंशोः उसी तरल आपः के किरण रूप से (आ-हना) स्वाभाविक टक्कर (इम्पैक्ट) से तत् प्रथमम् पिपयुषी पयः पीयूषं वह सर्वप्रथम समाविष्ट करने योग्य (absorvable) द्रव (अभवत्) हुआ। तदुक्थ्यम् यह मन्त्र उस (सत्य को प्रस्थापित करने) हेतु है।

अवस्थाओं की जननी अदिति मूल अवस्था है। इस मूल अवस्था से उद्भूत होने वाली आगामी अवस्था आपः है जो त्रिवर्गी शक्ति की क्रियात्मक अवस्था है। इस अवस्था में तीन मूल तत्त्व उद्वेलित हो जाते हैं, तब तीन तत्त्वों के परस्पर टकराव एवं क्रिया से एक तरल उत्पन्न होता है। ऋग्वेद ने रूपक भाषा में इसे पान करने योग्य कहा है जिसका अर्थ यह है कि यह सृष्टि में नियोजित करने की दृष्टि से उपयुक्त है। ध्यान रहे, वैज्ञानिक सृष्टि उत्पत्ति में भी आदिकाल में उत्पन्न हुए तरल को क्वार्क सूप (Quark soup) कहते हैं।

3. आदि सृष्टि काल में बृहत् अग्निपिण्ड की उत्पत्ति

सर आईन्सटीन के सूत्रों के आधार पर आधुनिक विज्ञान की सृष्टि उत्पत्ति (cosmogonical model) का प्रतिमान तैयार किया है। इस प्रतिमान के अनुसार सृष्टि आरंभ एक महाविस्फोट से होता है जिसे बिग बैंग (big bang) कहते हैं। उस समय सर्वप्रथम क्वान्टम क्रियाएँ (effects) होती हैं। आरंभ से क्षण के हजारवें भाग पर तरल प्लाज्मा तैयार होता है।

ऋग्वेद के अनुसार सृष्टि का आदि महाअग्निकाण्ड से होता है, जिसका कुछ विवरण अध्याय 7 में है। विशेष चर्चा ग्रन्थ के द्वितीय भाग में होगी। अग्निकाण्ड के समय जो द्रव्य उद्भूत होता है उसे वेद में आपः या माया कहा गया है। अनन्तर आपः का विस्तार होता है। इस विस्तृत अवस्था का नाम बृहतीः आपः है जो विज्ञान की प्रारंभिक अवस्थाओं की द्योतक है।

ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 121 के 7वें मन्त्र में इस घटना का सजीव वर्णन है। मन्त्र है - (क्र. 64)

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन गर्भम् दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानाम् समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

भाष्य - यत् ह जब निश्चय ही बृहतीः आपः आपः की विकृतियाँ गर्भम् दधाना अपने अन्तस् में धारण किये विश्वं अग्निं जनयन्तीः आयन समग्र अग्नि पिण्ड को उत्पन्न करती आयीं थीं, ततः तब देवानाम् असुः समस्त देवों, भौतिक

शक्तियों का जीवनरूप अर्थात् प्राणप्रदाता एक: केवल एक अद्वितीय सम् अवर्तत सह अस्तित्ववान् था .... नान्य: अन्य कोई नहीं, तब किस देव की उपासना करें, वस्तुत: उसी एक अद्वितीय की।

बृहती आप: से महान् अग्निपिण्ड की उत्पत्ति की बात मन्त्रोक्त है। स्पष्ट है कि आप: जल नहीं है, जल से बृहत् अग्निपिण्ड की उत्पत्ति असम्भव है। बृहती: आप: क्रियात्मक मूल तत्त्व आप: का प्रशस्त स्वरूप है। उसी सूक्त के 9 वें मन्त्र में बृहती: आप: को विशिष्ट पद पर आसीन हुआ देखा जाता है, मन्त्र है - (क्र. 65)

मा नो हिंसीज्जनिता य: पृथिव्या यो वा दिवं सत्य धर्माजजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय .... ।।

य: पृथिव्या जनिता जो पृथ्वी का उत्पन्न कर्ता है वा तथा य: जिस सत्य धर्मा सत्य नियमों के धारण कर्ता ने दिवं जजान द्युलोक को उत्पन्न किया है, चन्द्रा: अत्यन्त प्रकाशवान् बृहती: अप: बृहती आप: को च भी य: जिसने (जजान, जन् की लिट् ल.) उत्पन्न किया न: हमें (मा हिंसीत्, हिंस का इष् लुङ् लोट) पीड़ित न करे।

मन्त्र में पृथ्वी, द्युलोक से बृहती: आप: को विशिष्ट पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। जल एक महाभूत है, पृथ्वी का अंश मात्र है अत: यहाँ लोकों की उत्पत्ति के साथ उसका कोई संदर्भ नहीं हैं अस्तु बृहती: चन्द्रा आप: मूल तत्त्व का विस्तृत परिणाम है। मन्त्रानुसार बृहती: आप: का उत्पन्न किया जाना ईश्वर की महानता का द्योतक है। उसी सूक्त के 8 वें मन्त्र में यही तथ्य प्रकारान्तर से प्रस्थापित हुआ है। ऋचा है - (क्र. 66)

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै ....।।

भाष्य - य चित् जिस ईश्वर ने (महिना, महिमन् की तृ. विभ. वै. व्या. पृ. 92) अपनी महिमा के द्वारा आप: आप: को दक्षं दधाना सामर्थ्य धारण किये यज्ञ तत्त्व संगतिकरण को जनयन्ती: उत्पन्न करते हुए परि - अपश्यत् समग्र रूप में देखा था य: एक: जो एक अद्वैत देवेषु अधि देव: देवों पर अध्यक्ष देव आसीत् विद्यमान था तब किस अन्य की ....

आदिकाल में आप: से कौन सा यज्ञ प्रभूत हुआ था जिसका द्रष्टा मात्र देवाधिदेव था तथा जिसका देखा जाना ईश्वर की महत्ता का द्योतक है ? इस ऋचा

के पूर्व की ऋचा (क्रमांक 65) में आदिकाल में बृहती: आप: से समग्र अग्निपिण्ड की उत्पत्ति की बात है। उसी तथ्य को यहाँ प्रकारान्तर से कहा गया है। इस ऋचा में आप: को आदि सृष्टि रचना की (दक्षं) प्रारंभिक कार्य शक्ति (initial capacity) धारण किये हुए कहा गया है। उस समय आप: को सृष्टि रचना हेतु सन्नद्ध आद्या सामर्थ्य धारण किये केवल ईश्वर ने देखा। वही उस सृष्टि रचना रूप यज्ञ का अधिष्ठाता था। वही प्रारंभिक तत्त्व संगतिकरण की योजना का अधीक्षक था। यह बात ऋचा में कही गयी है। अत: आप: मूल तत्त्वों की क्रियात्मक अवस्था है जो विस्तार की प्रक्रिया में थी तथा जिसके विस्तृत स्वरूप को बृहती: आप: कहा गया है।

अध्याय 6

ऋग्वैदिक अपां नपात् का स्वरूप

ऋग्वेद में अपां नपात् एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक है। यह सूक्तों का देवता अर्थात् प्रमुख विषय भी है। भौतिक सत्ता की मूल अवस्था को अदिति या माता कहा गया है। मूल शक्ति जब क्रियाशील होती है तो इस द्वितीय अवस्था आपः को पुत्र या पुत्री कहा जाता है। यह मूल शक्ति का प्रथम परिणाम (effect) है। शक्ति के क्रियाशील होने के अनन्तर अनेक अस्थिर परिणाम बनते हैं तथा प्रकृति कई अस्थिर अवस्थाओं से गुजरती हुई अपां नपात् अवस्था में पहुँचती है। इस प्रकार यह आपः की आगामी अवस्था है अर्थात् तृतीय अवस्था है। इस अवस्था को अलंकार भाषा में आपः का पुत्र या अदिति का नाती कहा जाता है। नपात् का अर्थ पौत्र है (वै.व्या.)।

यह विज्ञान की नाभिक अवस्था है जो परमाणु रचना की पूर्ववर्ती अवस्था (state) है। इस अवस्था में द्रव्य में दो प्रमुख नाभिक रहते हैं ये हैं हाईड्रोजन नाभि एवं हीलियम नाभि, जिनका अनुपात 74, 26 होता है। इस द्रव्य को कास्मिक मेटर कहते हैं, जो कास्मिक विकिरण से भिन्न है।

1. अपां नपात् का परिचय

बृहतीः आपः के अनन्तर पदार्थ की आगामी अवस्था अपां नपात् कही गयी है। इस अवस्था वाले तत्त्व बड़े अस्थिर स्वभाव वाले होते हैं। इस अवस्था के इस गुण को समाहित करने के अभिप्राय से ही इस अवस्था का नाम अपां नपात् है जिसका अर्थ है (अदादि पा = रक्षणे के आधार पर "स्वे स्वरूपं न पाति, न रक्षति, आशु विनाशित्वात् इति नपात्"- अमरकोष) अपने स्वरूप की रक्षा नहीं करता शीघ्र तिरोभाव को प्राप्त होता है, रूपान्तरित होता है, अस्थाई आयु वाला है।

ध्यान रहे, अपां नपात् त्वरित स्वरूप परिवर्तन के स्वभाव से युक्त होते हुए भी समग्र रूप में (न उपसर्ग पूर्वक पात् = गिरना, पतन, भ्वादि. पर. धातु पत् = गिरना से, न पातयति-अमरकोष) अविनाशी (infallible) है। इस परिभाषा में विज्ञान का शक्ति-संरक्षण (Law of conservation of energy) का सिद्धांत निहित है।

ऋग्वैदिक रूपक भाषा में मूल स्वरूप अदिति को माता, क्रियात्मक अवस्था आपः (या बृहती आपः) या माया को पुत्र या पुत्री तथा क्रियात्मक अवस्था के परिणाम को आपः का पुत्र, एतदर्थ अदिति का नाती, अपां नपात् कहा गया है। नपात् का अर्थ (वै. व्या. पृ. 124) नाती है। इस प्रकार अपां नपात् शब्द अपने कलेवर में अनेक कल्पनाएँ संजोये है।

वैज्ञानिक परिकल्पना से साम्य

विज्ञान के अनुसार सृष्टि-आरंभ एक महाविस्फोट से होता है। आरंभ से क्षण के दस हजारवें भाग पर जिसे प्रामाणिक समय (standard time) कहते है, एक तरल तैयार होता है जिसे "प्लाज्मा" कहते हैं यह प्लाज्मा पदार्थ की वह अवस्था है जब परमाणु तो क्या उसकी नाभि (nucleus) भी अस्तित्व में नहीं आयी थी। यह तरल ऋग्वेद प्रोक्त बृहतीः आपः है।

विज्ञान के अनुसार प्लाज्मा अवस्था के अनन्तर नाभि रचना होती है जिसमें प्रमुख नाभिक हीलियम 26 प्रतिशत व हाईड्रोजन नाभिक 74 प्रतिशत होती है। शेष द्रव्य एलीमेन्ट्री कणों के रूप में रहता है। जिनका जीवन-काल क्षण के अत्यन्त लघु भाग के बराबर होता है। पदार्थ की यह अवस्था परमाणु रचना की पूर्ववर्ती है, जिसे कास्मिक मैटर कहते हैं। ऋग्वेद के अनुसार बृहतीः आपः के बाद तथा परमाणु (अर्धगर्भाः) रचना के पूर्व की अवस्था अपां नपात् है जो विज्ञान के कास्मिक मैटर की द्योतक है।

2. अपां नपात् सूक्त की व्याख्या

ऋग्वेद मण्डल 2, सूक्त 35 का देवता अपां नपात् है अर्थात् सूक्त का विषय नाभिक द्रव्य या कास्मिक मैटर है। अपां नपात् (भ्वा. पर. पत् = गिरना) का अर्थ द्रव्य की अविनश्वरता भी है। इस प्रकार इस सूक्त में विज्ञान के ऊर्जा संरक्षण के सिद्धांत का भी प्रतिपादन हुआ है। सूक्त की 2 री ऋचा है - (क्र. 67)

इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्वा विश्वान्यर्यो भुवना जजान।।

भाष्य - अर्यः जगत् के स्वामी ने नपात् अपां अविनाशी मूल तत्त्व के असुरस्य बीजरूप बल की मह्वा महिमा से विश्वानि भुवना जजान समस्त लोक समूहों को उत्पन्न किया।

सः वह ही (अस्य कुवित वेदत्, विद् लेट् ल.) इसके रहस्य को अच्छी तरह जाने। अस्मै उस देव ईश्वर के लिए हृदः सुतष्टम् हृदय में मथे गये परम सारभूत (इमं मन्त्रं सु वोचेम, विधि लिङ्) इस मन्त्र को हम लोगों को अच्छी तरह कहना चाहिए।

आपः का सारभूत उन्नत भाग जिसे ऋचा के पूर्व पद में सुतष्टं कहा गया है उसी को उत्तर (आगामी) पद में अपां नपात् कहा गया है। अन्यत्र अपस्तमं सम्बन्ध भी पाया जाता है। ये अतिशयार्थक शब्द अपां नपात् के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसी मौलिक द्रव्य (cosmic matter) से समस्त लोक समूह उत्पन्न होते हैं।

ऋग्वैदिक परिकल्पनानुसार आदिकाल से दृश्य जगत् तक भौतिक पदार्थ सत्ता पाँच अवस्थाओं में से निष्क्रमण करती है ये अवस्थाएँ है क्रमशः आपः, बृहतीः आपः अपां नपात्, अर्ध गर्भः (परमाणु अवस्था) एवं (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) पँच महाभूतों का दृश्य जगत्। सृष्टिरचना में प्रवेश करनेवाली प्रकृति की प्रथम अवस्था आपः या माया है। बृहतीः आपः का कार्यकाल अत्यंत संक्षित है। इसके अनन्तर अपां नपात् अवस्था आती है। अब सूक्त की 3री ऋचा का भाष्य किया जाता है। मन्त्र है - (क्र. 68)

समन्या यन्त्युपा यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः।।

भाष्य - सं अन्याः नद्यः जैसे अनेक नदियाँ (समानं ऊर्वम् उपयन्ति पृणन्ति च, पृण = भरना) एक ही समुद्र के पास जाती व उसको भरती हैं, वैसे ही शुचयः आपः पवित्र जल तत्त्व - लिक्विड स्टेट, द्रव अवस्था उ निश्चय ही (तं शुचिं दीदिवांसं, दीदि = चमकना के क्वसु प्रत्ययान्त से) उस पवित्र तेजस्वी आपां नपात् अक्षय नाभिक तत्त्व को परितस्थुः चारों ओर से घेरकर स्थित हैं अन्याः सं यन्ति अन्य महाभूत - पृथ्वी, वायु, तेजादि भी उसी प्रकार जाते हैं।

भावार्थ - अपां नपात् (नाभिक तत्त्व) ही महाभूतों का उद्‌गम स्थान है तथा वही उनका अन्तिम आश्रय है, जैसे नदियों का समुद्र है। समस्त महाभूत नाभिक तत्त्व के महासागर से उद्भूत होते, उसी के आश्रय स्थित होते व अन्त में उसी में समा जाते हैं। सूक्त का 4 था मन्त्र है - (क्र. 69)

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभीरेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णीगप्सुः।।

भाष्य - (अस्मेरा = अस्मे-ईरा, ईर् = प्रेरणे) हम सबको प्रेरणादायक युवतयः सदैव युवा रहने वाले - पृथ्वी जलादि भूत तं युवानं उस नित्य (मर्मृज्यमानाः,

मृज = शुद्धौ, शत्रन्त वै. व्या.) विशुद्ध रूप आप: आद्या उत्पादक मूल शक्ति को परियन्ति सब ओर से जाते हैं अर्थात् उसी आद्या शक्ति में सारे महाभूत पृथ्वी जलादि लय होते हैं।

स: वह आप: शुक्रेभि: तेज के, बीज रूप शक्ति के (शक्विभि:, भ्वादि धातु शीक् = छिड़कना से विशेषण शिक्व वै. व्या. पृ. 342) सिंचन के द्वारा रेवत् श्रीमान् की तरह होता हुआ अस्मे हमें अन् - इध्म: इन्धन रहित = स्वरूप तेज से अप्सु आप: में प्राणों में घृत निर्णीक् उज्ज्वल तेज से दीदाय चमकाता है।

आप: सृजन में नियोजित सर्वप्रथम अर्थात् आधारभूत मौलिक सत्ता है। स्थूल अवस्था का स्रोत सूक्ष्म अवस्था है। पृथ्वी जलादि भूत या प्राणादि भी इस नित्य विशुद्ध (मूल) स्वभूत्योजा बीज रूप तेज प्रदाता आप: से शक्ति ग्रहण करते हैं। सूक्त की 5वीं ऋचा है - (क्र. 70)

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषनत्यन्नम्।

कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम्।।

भाषार्थ - अस्मै उस (अव्यथ्याय, धातु व्यथ् = डगमगाना पृ. 561) स्थिर, अचल देवाय परमात्मा देव के लिए तिस्र नारी: देवी: तीन श्रेष्ठ दिव्य शक्तियाँ अन्नं परिपूरक शक्ति दिधिषन्ति धारण करती हैं। (कृता: धातु कृ = बनाना के क्तान्त कृत से) सम्पन्न हुए इव जैसे, की तरह - वे तीन शक्तियाँ अप्सु आप: में ही हि उपप्रसर्स्रे समीपता से बहती हैं। स: वह आप: तत्त्व पूर्वसूनाम् पूर्व में सन्तान रूप से उत्पन्न करने वाली पूर्वोक्त दिव्य शक्तियों का पीयूषं धयति अमृत रस पीता है।

अदिति शक्ति प्रदान करने वाली तीन वर्गों वाली आद्या शक्ति है जिसे यहाँ तीन देवी कहा है। अदिति का प्रथम परिणाम पुत्रवत् आप: तत्त्व है जो मूल सत्ता माता रूप अदिति से अक्षय शक्ति ग्रहण करता है। मूल शक्ति आप: को उद्भूत कर उसका कार्य सम्पन्न हो गया है ऐसी हो जाती है, क्योंकि सृजन के आगामी चरण का भार अदिति से उद्गत (जन्मे) आप: पर होता है।

3. समग्र गुरुत्वाकर्षण (Universal gravitation) बल की आधारभूत शक्ति

लोकों को सन्तुलन में आबद्ध करने एवं उन्हें वक्र मार्गों पर अवस्थित करने में सृष्टि में नियोजित आप: तत्त्व (कास्मिक इनर्जी) आधारभूत है। यह विचार सूक्त की 9वीं ऋचा में है - (क्र. 71)

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परियन्ति यह्वी।।

भाष्य - (अपां नपात्) अपां नपात् देव ने (उपस्थं विद्युतं) विद्यमान विद्युत् को (वसानः) वरण किया (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में (जिह्मानाम्) वक्र मार्ग का अनुगमन करने वाले ज्योतिर्पिण्डों का (आ अस्थात्) पूर्ण रूप से स्थापन किया है।

(तस्य) उसकी (ज्येष्ठं महिमानं) श्रेष्ठ महिमा को (हि) ही लेकर (यह्वी हिरण्यवर्णाः) बड़ी तेजस् रूप ऊजाएँ (वहन्तीः) प्रवाहित होती हुई (परियन्ति) सब ओर बह रही हैं।

मन्त्र में निम्नलिखित तथ्य प्रस्थापित किये गये है :-

अपां नपात् से सृष्टि में नियोजित प्रकृति की अविनश्वरता, संरक्षण के सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है! द्वितीय यह कि ज्योतिपिण्ड वक्र मार्ग पर चलते हैं। तृतीय यह कि इस कास्मिक मेटर (हाईड्रोजन हीलियम नाभि) की सत्ता के कारण ही आकाशीय पिण्डों में नाभिकीय क्रिया से ऊर्जा उद्भूत हो सब ओर बहती है।

अब क्रमांक 10 का भाष्य किया जाता है। मन्त्र है - (क्र. 72)

हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात् सेदु हिरण्यवर्णाः।
हिरण्यात् परि योनेर्निषद्याः हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै।।

भाष्य - सः हिरण्यरूपः अपां नपात् वह तेजस् रूप आपः तत्त्व हिरण्य सन्दृक् तेजस् अनुरूप (पूर्व मन्त्र की अनुवृत्ति से) विद्युत् ऊर्जा को जायते उत्पन्न करता है।

सः वह हिरण्यवर्णः तेजस् वर्ण वाली विद्युत् हिरण्यात् योनेः तेजस् स्वरूप निजकारणः - आपः से उद्भूत हो इत् उ निश्चय ही यहाँ (परि नि = नीचे, सद्य सद् का कत्वाद्यन्त) चारों ओर फैले अन्तस् में वर्तमान है।

हिरण्यदाः वही तेज प्रदाता अस्मै इस (विद्युत्, प्रकाश) के लिए अन्नं ददति परिपूरक शक्ति देता है।

मूल तत्त्व की प्रथम अवस्था अदिति (ब्राह्मी अवस्था) है। सृष्टिरचना हेतु नियोजित होते ही मूल तत्त्व की संज्ञा आपः हो जाती है। पूर्व मन्त्र (क्र. 71) में हिरण्यवर्ण पद विद्युत् के लिए आया है उस पूर्व मन्त्र की अनुवृत्ति से हिरण्यवर्ण पद इस मन्त्र में भी विद्युत् के लिए आया है। आपः मूल तत्त्व की निकटस्थ द्वितीय अवस्था है।

मूल तत्त्व की आपः अवस्था से परवर्ती (बाद की) विद्युत अवस्था है। मन्त्र में हिरण्य पद 5 बार आया है जो 3 बार आपः के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा दो बार विद्युत् का विशेषण हैं ऋषि ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से आपः के लिए प्रयुक्त हिरण्य पद में तथा विद्युत् के लिए प्रयुक्त हिरण्य पद में भेद किया है। आपः के लिए प्रयुक्त विशेषणों को हिरण्यरूपः = तेजस् रूप वाला, हिरण्यात् योनेः = तेजस् स्वरूप कारण कहा है, किन्तु विद्युत् के लिए प्रयुक्त विशेषणों को केवल हिरण्यसंदृक् = तेजस् जैसा, हिरण्यवर्णः = तेजस् वर्ण वाला (तेजस् नहीं तेजस् से भिन्न तेजस् जैसा ही) कहा है।

वास्तव में हिरण्य का अर्थ मूल ज्योति अर्थात् मूल तत्त्व है -

'ज्योतिर्वै हिरण्यम् ज्योतिरेषोऽमृतं हिरण्यम्' शत. ब्रा. 6/7

(वै = वस्तुतः, सचमुच वै. व्या. पृ. 326) वास्तव में हिरण्य अमृत ज्योति है सनातन ज्योति रूप मूल तत्त्व है। अस्तु, ऋचा में हिरण्य पद सूक्ष्म मौलिक शक्ति का द्योतक है।

एतदर्थ मन्त्र में यह बताया गया है कि मूल तत्त्व की आपः से परवर्ती (next) अवस्था विद्युत् ऊर्जा है जिसका समकक्ष परिवर्तित रूप चुम्बकीय शक्ति (magnetism) विश्वव्यापक है। मन्त्र क्रमांक 71 में यह बताया गया है कि उसी मूल क्रियात्मक शक्ति आपः (cosmic matter) की सत्ता मात्र से आकाश में ज्योतिपिंण्ड सन्तुलित होकर अपनी 2 वक्र कक्षाओं में गतिमान हैं।

सूक्त का 7वाँ मन्त्र है - (क्र. 73)

स्व आ दमे सुदुधा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व 1 न्तर्वसुदेयाय विधते विभाति।।

भाष्य - स्वे दमे अपने घर में यस्य धेनुः जिसकी गाय-प्रकृति, अदिति सुदुधा स्वशक्तिवान् है सः अपां नपात् वह अपां नपात् = तृतीय अवस्था स्वधां पीपाय मूल तत्त्व की ऊर्जा पानकर सुभु अन्नम् अत्ति उत्तम खाता है अर्थात् ऊर्जावान् हो जाता है। सः अपां नापात् वह अपां नपात् अप्सु अन्तः आपः के आन्तरिक भाग में अर्थात् द्वितीय अवस्था में (ऊर्जयन्, ऊर्ज=बल, प्राण) शक्ति संगृहीत करता हुआ वसुदेयाय भौतिक द्रव्यों को देने के लिए विधते विधान के लिए आविभाति विवित्त प्रकार से शोभित होता है।

इस रूपक में यह कहा गया है कि अपां नपात् (नाती) तृतीय अवस्था को

ऊर्जा देने वाली मूल प्रकृति स्वशक्ति युक्त है, स्वयंभू है। वह अपां नपात् (नाभिक अवस्था) आपः के आन्तरिक भाग से = मूल स्रोत (प्रथम अवस्था = आपः) से शक्ति प्राप्त करता है।

रूपक भाषा में अदिति को माता, आपः को पुत्र एवं नाभिक अवस्था को अपां नपात् नाती कहा गया है।

सूक्त का 14 वाँ मन्त्र है - (क्र. 74)

अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम्।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः।।

भाष्य - अस्मिन् - परमे पदे इस सर्वश्रेष्ठ पद पर (अध्वस्मभिः, ध्वर = नष्ट होना) अक्षय गुण स्वभाव के साथ (तस्थिवांसं, स्था के क्वसु प्रत्ययान्त से) स्थित हुई विश्वहा सब दिन, नित्य ही (दीदिवांसं, दीदि = चमकना के क्वसु प्रत्ययान्त से) तेज स्वरूप यह्वीः महान् आपः क्रियाशील प्रकृति स्वयं नप्त्रे नाती (अपां नपात्) के अत्कैः भोगों के लिए, पुष्टि के लिए घृतं अन्नम् ऊर्जा, विकिरण एवं प्रकृति का द्रव्य भाग वहन्तीः ढोती हुई परिदीयन्ति चारों ओर व्याप्त हो रही है।

क्रियाशील प्रकृति आपः अपने सर्वश्रेष्ठ प्रथम पद पर स्थित है। मूल तत्त्व अविकारी है, न गिरने वाले गुण स्वभाव से युक्त है। मूल तत्त्व के तीन शाश्वत वर्ग हैं। इनमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता। इन तीनों के संयोग से यौगिक बनते हैं। उन यौगिकों के अन्तस् में ये तीन मूल स्वरूप में स्थित रहते हैं। प्रकृति अपनी तीसरी अवस्था (नाती) के पालन (for subsistence) के लिए घृतं विकिरण एवं अन्नं द्रव्य भाग प्रदान करती हुई मूलाधार रूप से स्थित है।

अध्याय 7

ऋग्वैदिक अश्वशक्ति एवं अग्नि अश्व की उत्पत्ति

गत अध्याय में आप:, अदिति आदि प्रतीकों पर विशद् रूप से प्रकाश डाला गया है। वहाँ यह बताया गया है कि आप: प्रकृति की प्रारंभिक अवस्था है जब आद्या शक्ति सृष्ट्युत्पत्ति हेतु उद्वेल्लित होती है। इस लेख में अश्व शब्द के प्रतीकात्मक प्रयोग पर ऋचाओं से प्रकाश डाला गया है। वेद के अनुसार सृष्टि-आरम्भ एक भीषण अग्निकाण्ड से होता है। कुछ ऋचाओं में इस घटना को अग्नि अश्व की उत्पत्ति के रूपक से कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण में भी अग्नि अश्व का विवरण है। इस लेख के द्वितीय चरण में अग्नि अश्व संबंधी विषय को प्रकाश में लाया गया है।

अश्व शब्द के प्रतीकात्मक अर्थ को प्रकाश में लाने हेतु ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 107 के 2 रे मन्त्र पर विचार किया जाता है, यथा - (क्र. 75)

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण।

भावार्थ - सूर्य ऊँचा इसलिए है कि वह दान देता है, जो अश्व देते हैं वे सूर्य के समकक्ष हैं।

सूर्य के समकक्ष वही हो सकता है जो वही वस्तु दान करे जिसे सूर्य दान करता है। यह विदित ही है कि सूर्य शक्ति का दान करता है अत: जो शक्ति का दान देते हैं वे सूर्य के समकक्ष हैं। इस प्रकार यहाँ अश्व का अर्थ शक्ति ही है।

अब एक-दूसरे मन्त्र से इसी विषय पर प्रकाश डाला जाता है। मन्त्र है, ऋग्वेद 3/27/14 यथा - (क्र. 76)

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः तं हविष्मंत ईलते।

भाषार्थ - वृषः सुख वर्षाने वाली देववाहनः महाभूत जिसका वाहन है, अश्वः न जो अश्व के समान है अग्निः ऐसी अग्नि सम् इध्यते सम्यक् रूप से

प्रकाशित की जाती है, तं उसको हविष्मंतः प्राप्त करने की इच्छा वाले ईडते उसकी उपासना करते हैं।

मन्त्र में शक्ति को देव वाहनी अर्थात् जिसका वाहन पृथ्वी, जल, वायु, आदि महाभूत हैं। ऐसी द्रव्यवाहिनी कहा है जैसी कि विज्ञान की उक्ति है कि द्रव्य शक्ति की सवारी है (matter is the vehicle of energy)। मन्त्र में शक्ति को अश्व की उपमा दी गई है। प्राचीन काल में अश्व शक्ति का प्रतीक था इस कारण पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी शक्ति की नाप हॉर्स पावर में रखी।

ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर अश्वः शब्द का प्रयोग ऊर्जा के लिए हुआ है। नीचे मण्डल 10, सूक्त 11 का 7वाँ मन्त्र उद्धृत किया जाता है। (क्र. 77)

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमान् अमवान्भूषति द्यून।।

भाषार्थ – अग्ने हे ऊर्जा यः मर्तः जो मरणधर्मा मनुष्य ते सुमतिं तेरे उत्तम ज्ञान को (अक्षत्, अंश् की लुङ् स् लेट ल. भविष्यत् की तरह वै. व्या.) प्राप्त करता है, सः वह सहसः सूनः शक्ति के पुत्र की तरह अति अत्यधिक प्र शृण्वे सुना जाता है अर्थात् प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। अश्वैः शक्तियों के द्वारा वहमानः संचालित हुआ होकर अर्थात् प्रयोगों में सिद्धहस्त हो वह इषं दधानः शक्ति को धारण करता हुआ द्यून सब दिनों द्युमान् तेज – इनर्जी का स्वामी (अमवान्, भ्वा.पर. अम् = सम्मान करना कोश, के क्वसु प्रत्ययाँत प्रातिपादिक की प्र. विभ.) सम्मानित आ भूषति होकर सुशोभित होता है।

2. सूर्य ऊर्जा का उपयोग करो

ऋग्वेद मण्डल 3, सूक्त 2 का 3रा मन्त्र मानवों को सूर्य ऊर्जा के भौतिक प्रयोग हेतु निर्देश देता है – (क्र. 78)

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुपब्रुवे।।

भाषार्थ – (देवासः) विद्वानों ने (चित्तिभिः) ज्ञानों के द्वारा (भानुना ज्योतिषा) सूर्य ज्योति से, ऊर्जा से (अत्यं न महां वाजं) अश्व की तरह महा बलशाली (रुरुचानं अग्निं) तेजस्वी ऊर्जा को (जनयन्त) उत्पन्न किया।

(क्रत्वा) कर्म और ज्ञान से (विधर्मणि) विविध नियमों में (दक्षस्य) सामर्थ्य, योग्यता की (उप सनिष्यन्) निकटता से (तरुषः) पार हुआ मैं (ब्रुबे) कहता हूँ।

मन्त्र में निश्चयात्मक ज्ञान के आधार पर स्पष्ट निर्देश है कि सूर्य की किरणों से घोड़े के समान शक्ति उपलब्ध हो सकती है। यहाँ भी शक्ति की उपमा अश्व से ही दी गयी है। अस्तु, अश्वः शब्द ऊर्जा का ही प्रतीक है। मन्त्र में जिस निश्चयात्मक ढंग से बात कही गयी है उससे यह विदित होता है कि वैदिक काल में सूर्य ऊर्जा नियोजित करने का प्रयोग हो चुका था।

3. ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत

ऋग्वेद में ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत अनेक मन्त्रों में अनेक प्रकार से अभिव्यक्ति पाये है। इस दृष्टिकोण से ऋग्वेद मण्डल 2, सूक्त 6 के 2 रे मन्त्र में आये विचार को प्रस्तुत किया जाता है। (क्र. 79)

अया ते अग्ने विधमोर्जो नपादश्वमिष्टे, एना सूक्तेन सुजात।

भाषार्थ - अग्ने हे अग्नि ते तेरी अश्वं शक्ति की इष्टे अभिलाषा के लिए (अया, क्रिया विशे. पृष्ठ 280) इस प्रकार हम नपात् पतन से परे, न गिरने वाली, अक्षय (ऊर्जः, बहु व., स्त्री लि. पृ. 72) ऊर्जाओं की सुजात हे उत्तम प्रकार से उद्भूत एना इस सूक्तेन सूक्त के द्वारा (विधेम विध् = आदर करना, वि. लि.) आदर करें, विधान करें।

अग्नि से घोड़े की अभिलाषा करते हुए अक्षय ऊर्जा के विधान की बात प्रसंग रहित है। भौतिक ऊर्जा और घोड़े का कोई संबंध नहीं है। शक्ति की इच्छा से शक्ति की प्राप्ति का विधान ही अभिप्रेत है। अस्तु अश्वः शक्ति के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। मन्त्र में ऊर्जा को नपात् विशेषण से युक्त किया है अर्थात् ऊर्जा क्षय, पतन से रहित है।

अब ऋग्वेद 2/11/1 से इसी विषय पर आगे और प्रकाश डाला जाता है। (क्र. 80)

श्रुधि हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वामूर्जो वर्द्धयन्ति वसूयवः सिन्धवः न क्षरन्तः।।

भाषार्थ - इन्द्र हे इन्द्र श्रुधि सुनिये, मा रिषण्यः आप रुष्ट न हों। स्याम हम तेरे हों (ते दावने, धातु दा = देना का तु. कृ.) तेरे दान देते समय वसूनाम् ऐश्वर्यों के।

(वसूयव:, वसूय = धन चाहना, पृ. 272) ऐश्वर्य के इच्छुक त्वां हवं तुझे पुकारते हैं। (इमा:,) ये (ऊर्ज:) ऊर्जाएँ हि निश्चय ही वर्द्धयन्ति बढ़ती हैं, किन्तु सिन्धव: नदियों की तरह प्रवाहशील सूक्ष्म, स्थूल भूतों के प्रवाह (न क्षरन्त: क्षर = नष्ट होना) (भौतिक ऊर्जा में) किसी प्रकार क्षय नहीं होते।

इस मन्त्र में यह कहा गया है कि भौतिक ऊर्जा का भण्डार एक अक्षय निधि है, जिसमें किसी प्रकार की कमी नहीं होती। ऊर्जा से भौतिक पदार्थों की वृद्धि होती है। इस प्रकार वृद्धि करने वाली ऊर्जा नियोजित होकर भौतिक पदार्थ - ठोस, द्रव, वायु में परिवर्तित हो जाते हैं किन्तु ऊर्जा किसी प्रकार भी क्षय नहीं होती। इस प्रकार मन्त्र में भौतिक पदार्थ (मेटर) तथा ऊर्जा (इनर्जी) की तुल्यता का सिद्धांत (Law of equivalence of mass energy) निहित है।

ऋग्वेद मण्डल 7, सूक्त 16 के प्रथम मन्त्र में ऊर्जा को भौतिक द्रव्य सत्ता के अक्षय प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है अर्थात् भौतिक जगत् के मूल में ऊर्जा स्थायी तत्त्व है। (क्र. 81)

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्।।

भावार्थ - व: आप लोगों के लिए एना अग्निं इस शक्ति तत्त्व को नमसा आ हुवे नम्रता पूर्वक बुलाता हूँ ऊर्ज: नपातम् इस कभी न पतन होने वाली ऊर्जा को प्रियं प्रिय चेतिष्ठं चेतना देने वाली को अरतिं अरमणशील को, अव्यय को (सु - अ - ध्वरं, ध्वर= तोड़ना, विभक्त करना, अध्वर = विभाग रहित, अक्षय संयोजक, यथास्थिति कर्ता, सुअध्वर = उत्तम न तोड़ने वाला = संयोजक = stabilizer) यथास्थिति स्थापन कर्ता, अक्षय, नित्य को, विश्वस्य सब भौतिक पदार्थ सत्ता ने अमृतं अक्षय दूतं प्रतिनिधि को।

मन्त्र में ऊर्जा को भौतिक जगत् सत्ता का शाश्वत प्रतिनिधि कहा है तथा तीन विशेषणों अमृत, नपात्, अध्वर द्वारा ऊर्जा के अविनाशी होने के सिद्धांत को प्रस्थापित किया गया है तथा यह बताया गया है कि ऊर्जा द्रव्यों की संरक्षण (stability) में हेतु है।

पदार्थ की वाहक शक्ति अर्थात् भौतिक पदार्थ को गति (motion) प्रदान करने वाली शक्ति ऊर्जा है ऐसा विचार क्र. 7/17/6 में व्यक्त किया गया है, यथा -

त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातं।

अग्ने हे शक्ते, ऊर्जः नपातं हे पतनरहित ऊर्जा त्वाम् तुझे उ निश्चय ही देवासः महाभूतों ने हव्यवाहं पदार्थों को वहन करने के लिए, ढोने के लिए आ दधिरे धारण किया है।

ऋग्वेद मण्डल 2 के 35 वें सूक्त का देवता अर्थात् विषय "अपां नपात्" है। इस सूक्त का विषय है कि मूल तत्त्व अविनाशी है। सूक्त के अनेक मन्त्रों में से केवल एक मन्त्र में आये विचारों को प्रस्तुत किया जाता है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में नाभिकीय शक्ति (मूल ऊर्जा) को अविनाशी एवं उपयोगी कहा गया है तथा उसके उपयोग का स्पष्ट निर्देश है, यथा - (क्र. 82)

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्याँ चनो दधीत नाद्यो गिरो मे।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि।।

भाषार्थ - वचस्याँ वाणी में (असृक्षि, सृज् की स् लङ् धातु) प्रकाशित किया वाजयुः शक्ति का इच्छुक, उप ईम पास हो। (चनः दधीत, वि. लि.) कदापि न धारण करे गिरः मे मेरी वाणी में हुए नाद्यः नाद, उच्चारण मात्र केवल पाठ को ही। आशुहेमा शीघ्रकारी, वेगवान् अपां नपात् ऊर्जा अविनाशी है। सः वह कुवित् बहुत से सुपेशसः सुन्दर रूप करति बना लेती है, (हि जोषिषत्, धातु जुष् लुङ् लेट् भविष्यत् की तरह) उसे निश्चय ही सेवन करे।

यहाँ मन्त्रों के मात्र पाठ को वर्जित किया है। मन्त्रों में निहित भौतिक ज्ञान (विज्ञान) को प्रयोग सिद्ध करके दोहन करने का उपदेश दिया गया है। ऊर्जा अनेक रूप वाली है। ऊर्जा रूपान्तरित होने के स्वभाव से युक्त होते हुए मूल में अविनाशी है।

4. आदि सृष्टिकाल में अश्व नाम से कही गयी महाशक्ति की उत्पत्ति

ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 164 के दो लगातार मन्त्रों में प्रश्नोत्तर के रूप में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला है, ऋचा है - (क्र. 83 अ)

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम।।

मैं तुमसे पृथ्वी का परम् अंत (दूसरा छोर) पूछता हूँ। पूछता हूँ कि ब्रह्मांड का मूलाधार कहाँ है। नाभिः शब्द नह = बन्धने धातु से बना है। नाभि की जिज्ञासा का अर्थ है कणों को परस्पर यौगिक में बांधने वाली शक्ति क्या है जिससे जगत् रचना संभव हुई यह प्रश्न है । तुमसे वृष्णः वर्षणशील अश्वस्य भौतिक शक्ति के रेतः

बीज, मूल स्रोत को पूछता हूँ और पूछता हूँ कि परमं व्योम आकाशवत् सर्वाश्रयी, सर्वाधार सर्वव्यापक सबको अपने में समाहित करने वाली देश काल से परे परम सत्य वाणी क्या है अथवा ईश्वरीय वाणी क्या है।

ध्यान रहे, ऋग्वेद में व्योम आकाश के लिए तथा परम व्योम आकाश से विशिष्टता दर्शाने के लिए ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसकी ऋचाएँ है इसी सूक्त की 39 वीं ऋचा- "ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्" (भाष्य अध्याय 1 में देखें), 'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्' ऋ. 10/129/7।

आगामी ऋचा में इसका उत्तर इस प्रकार है – (क्र. 83 ब)

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम।।

इयं वेदिः यह यज्ञ वेदि पृथिव्याः परः अन्तः पृथ्वी का परला छोर है, परम अन्तः है अर्थात् पृथ्वी गोल है इस कारण आदि अन्त मिले हुए हैं। (अयं यज्ञः, यज् = संगतिकरणे) यह संगतिकरण शक्ति प्रकृति के तत्त्वों में परस्पर संयुक्त होने का स्वाभाविक गुण (afinity for mutually holding together) ही इस जगत् के सृजन का मूलाधार है।

प्रकृति स्वयंभू है। प्रकृति के गुण लक्षण भी स्वयंभू हैं। प्रकृति के तत्त्वों में एक विशिष्ट प्रकार का गुण है जिससे कुछ एक वर्ग के कण, अन्य या समान वर्ग के कण के साथ संगति करके एक विशिष्ट बल (फोर्स) के साथ परस्पर एक दूसरे को आकर्षण में आबद्ध किये रहते हैं। इसी गुण के कारण तत्त्व संगतिकरण (synthesis) संभव हो सकी है। इसी आन्तरिक स्वभावगत (inherent), मौलिक (intrinsic) आधारभूत गुण के कारण तत्त्वों का परस्पर संयोग (Union) संभव हुआ, जिससे उत्तरोत्तर सूक्ष्माति सूक्ष्म कण परस्पर संयुक्त होते व अपेक्षाकृत स्थूल कण, जो सूक्ष्म कणों का संयुक्त रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, बनाते हैं। इस प्रक्रिया की पुनरुक्ति से परमाणु बनता है फिर परमाणु से अणु तथा अणु से द्रव्य बनता है। दो सूक्ष्म कणों के बीच जो परस्पर बाँधे रहने की शक्ति है, उसे विज्ञान ने परस्पर शक्तिशाली क्रिया (strong interaction) ऐसा नाम दिया है। कण-कण को मिलाकर जगत् रचना में इस परस्पर क्रिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अतः यही नह् बंधने ब्रह्माण्ड को ब्रह्माण्ड के कणों को बाँधने वाली नाभि है।

अयं सोमः वृषणः अश्वस्य रेतः यह सोम विकिरण ही (अ. 10) वर्षणशील शक्तियों ताप, प्रकाश, विद्युत् का बीजरूप मूल आश्रय है। यह ब्रह्म वेदवाणी ही सर्वाश्रयी परम सत्य ईश्वरीय वाणी है।

ऋचा में थोड़े के जन्म के मूलकारण की जिज्ञासा नहीं है। अश्व का अर्थ जगत् में उपलब्ध ऊर्जा है।

गोपद ब्राह्मण की आख्यायिका :- आदि सृष्टिकाल में जो महाशक्ति प्रादुर्भूत हुई थी जिससे इस भौतिक जगत् की रचना आरंभ हुई, उसे ऋग्वेद मंडल 1 सूक्त 163 में अश्व की उत्पत्ति कहा गया है। तदनुसार सूक्त का देवता भी अश्व है गोपथ ब्राह्मण में "अश्व अग्नि" की उत्पत्ति संबंधी कथा है। विदित है कि ब्राह्मण ग्रंथ यज्ञों के कर्मकाण्ड पर प्रकाश डालते हैं। ऋग्वेदी होता अग्नि के पूर्व दिशाा में, यजुर्वेदी वेदी के पश्चिम में, सामवेदी उद्गाता वेदी के उत्तर में तथा ब्रह्मा दक्षिण दिशा में क्यों बैठते हैं? इस तथ्य को एक कथा द्वारा कहा गया है। इस कथा में अलंकारिक भाषा में आदि सृष्टि काल में प्रकट हुई अश्वरूप महाअग्नि का विवरण है, जो इस प्रकार है – (गोपथ ब्रा. पूर्व भा. 2/18)

(प्रजापतिः वेदान् उवाच अग्निन् आ दधीय इति) प्रजापति ईश्वर ने वेदों से कहा अग्नियों को मैं स्थापित करूँ।

(तान् वाक् अभ्युवाच अश्वः वै सम्भाराणाम् इति) उन (वेदों) से वाणी ने कहा अश्व (अग्नि) ही भार को सम्यक् वहन करने वाला है। तं घोरात् क्रूरात् सलिलात् सरसः उत् – आ निन्यु उस (अश्व अग्नि) को भंयकर दाहक तरल अप् (मूल क्रियात्मक तत्त्व) से भरे हुए सरोवर से उन्हीं (वेदों) ने ऊँचा किया।

तान् वाक् अभि उवाच अश्वः शम्येत इति उनसे वेदों से वाणी ने स्पष्ट कहा अश्व (अग्नि) शान्त किया जाये। वे बोले वैसा ही होगा। तब ऋग्वेद ने कहा मैं अश्व को शान्त करूँ? उस अच्युत अश्व को भय उत्पन्न हुआ; उसने पूर्व दिशा का सेवन किया इस कारण ऋग्वेदी होता अग्नि के पूर्व में बैठता है। उसने कहा यह अश्व (अग्नि) अशान्त ही है। तब यजुर्वेद ने आकर कहा मैं अश्व को शांत करूँ? उस अच्युत अश्व को भय हुआ। उसने प्रतीची दिशा का सेवन किया इस कारण यजुर्वेदी अध्वर्यु पश्चिम में बैठता है। उसने कहा वह अश्व अशांत ही है। इसी प्रकार सामवेद के कहने पर अश्व ने भयभीत हो उत्तर दिशा का सेवन किया, इस कारण सामवेदी उद्गाता उत्तर दिशा में बैठता है। अन्त में उस अश्व को चारों वेदों के ज्ञाता शंयु ऋषि ने शांत किया।

तस्य ह स्नातस्य अभि उक्षितस्य अश्वस्य सर्वेभ्य रोमशमरेभ्यः अंगारा आ अशीर्य्यन्त उस शुद्ध किये हुए और भले प्रकार सींचे हुए अश्व के सब रोम कूपों से अंगारे निकल पड़े।

उपर्युक्त कथा का यह भाव है कि आदिकाल में महाशक्ति अग्नि रूप से प्रकट हुई। यह अश्व रूप कही गयी शक्ति मूल क्रियात्मक तत्त्व के महाप्रलयकारी भीषण अग्नि सरोवर से निकली। इसने सभी दिशाओं को अपनी शक्ति से आक्रान्त किया; तब ईश्वर ने–"**आथर्वणीभिः च आङ्गिरसोभिः च आतनैः मातृनामभिः वास्तोष्पत्यैः शान्त्युदकम् चकार इति**"–सृष्टिरचयिता के व्यवहार से आथर्वणीय, आंगिरस, मौलिक मातृशक्त्यादि से शांति के तरल बनाये, अर्थात् सृष्टि रचना हेतु उपयोगी विकासशील तरल रचे[1] तथा इनसे अश्व अग्नि (अव्यवस्थित शक्ति) को शांत किया। उस अश्व अग्नि के रोम कूपों से अंगारे निकल पड़े तब वह अश्व शान्त हुआ था इस प्रकार आदि सृष्टिकाल में भयंकर अग्नि ताण्डव (big bang) हुआ था। उसे इस कथा के माध्यम से कहा गया है। इस यज्ञ विधान के साथ ब्रह्मा पाँच मन्त्रों का पाठ करता है। **यत् अक्रन्द .... इति पंच**। ये पाँच मन्त्र ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 163 के हैं। उनकी व्याख्या आगामी अनुच्छेद में है।

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमुख विषय यज्ञों की विधि का विस्तार है, किन्तु यह विधि का विस्तार निरुद्देश्य नहीं है। इस विधि की योजना इस प्रकार बनाई है कि यह पदे पदे सृष्ट्युत्पत्ति के तारतम्य में हुई घटनाओं की स्मृति रूप पुनरुक्ति की बोधक है।

यह सृष्टि-उत्पत्ति का रूपक है। यज्ञाग्नि उस ईश्वरीय शक्ति तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है जिसने सृष्टि उत्पन्न की थी। ईश्वरीय मूल आद्या शक्ति इस क्रमबद्ध जगत् को उत्पन्न करने एवं प्रतिष्ठापित करने में समर्थ एवं सफल रही अत-एव यज्ञाग्नि उसकी नकल रूप क्रिया सम्पन्न करते हुए ज्योतिर्पिण्डों (नक्षत्रों) का स्थान ब्रह्मचारी ले लेते हैं। नक्षत्र आदिकाल में उत्पन्न हुई महाग्नि (हिरण्यगर्भ) के अवशेष हैं तथा वे आदिकाल में मूल शक्ति से प्राप्त शक्ति व तेज से प्रज्ज्वलित हैं। उसी प्रकार ब्रह्मचारी यज्ञाग्नि रूप मूल शक्ति से तेज ग्रहण करने की आकांक्षा रखते हैं जिस तेज से प्राप्त शक्ति की उन्हें अपनी देह व मस्तिष्क के विकास के लिए आवश्यकता है। इस प्रकार यज्ञ सृष्ट्युत्पत्ति का प्रतिमान है, प्रतिरूप है।

अश्व शब्द की वैदिक व्युत्पत्ति

इसी अश्व-प्रकरण के तारतम्य में कण्डिका 20 व 21 में अश्व शब्द शक्ति का प्रतीक क्यों माना गया? इस तथ्य का हेतु सहित प्रतिपादन किया गया है। उपर्युक्त अग्नि शक्ति ने शान्त होकर जगत् को उत्पन्न किया।

सः अयं वैश्वानरः अग्निः ब्राह्मणेन ध्रियमाणः इमान् लोकान् जनयते।

सो यह वैश्वानर अग्नि ब्रह्म से (यज्ञ में) धारण किया हुआ इन लोकों को उत्पन्न करता है।

अयं जातवेदाः अग्निः ह वै (इदम्) ईक्षते, अयम् वैश्वानरः अग्निः इदम् ज्वलति। यह जातवेदा (उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान) अग्नि (इस जगत् को) देखता हुआ और यह वैश्वानर (सब नरों का हितकारी) अग्नि इस जगत् को प्रकाशित करता है।

हन्त यत् मयि तेजः इन्द्रियं वीर्य्यं तत् अहम् दर्शयामि उत् वै मा विभियात् इति। अग्नि बोला – हर्ष हो! जो मुझमें तेज, ईश्वरत्व और बल है उसको मैं दिखाऊँ और उसे निश्चय ही मुझसे डरना चाहिए।[1]

सः अयम् अब्रवीत् जातवेदः अग्ने मा अभिनिधेहि एहि इति। सो वह (ब्राह्मण) बोला– हे जातवेदा अग्नि मुझे सब ओर से पुष्ट कर जिससे तस्य द्वैतं नाम अघोरं च अकूरं च अधत्त उस अग्नि के दो नाम अभयानक व अहिंसक रखे स अश्वः अभवत् वह अग्नि घोड़े के समान हो गया। इसी कारण शक्ति का प्रतीक अश्व हुआ।

इस कण्डिका में यह कहा गया है कि आदि सृष्टिकाल में उत्पन्न हुआ प्रज्ज्वलित अग्नि शान्त हो जगत् में दो रूपों में स्थापित हो गया। वैश्वानर अग्नि सूर्य रूप में तथा जातवेदा अग्नि अव्यक्त रूप से सभी पदार्थों में विद्यमान हुआ। अग्नि स्वभाव से ज्वलनशील है। ऋचा में कहा गया है कि अग्नि के दो रूप अहिंसक और भयानकता रहित हुए। इससे सुन्दर जगत् का निर्माण हुआ। इसी अनुरूपता से ब्रह्मचारी को शक्ति धारण करना चाहिए किन्तु यह शक्ति अहिंसा व सुन्दरता को उत्पन्न करने वाली हो। इस उपमा में यह निर्देश है। (कण्डिका 20)

सः अशाम्यत् वह अग्नि शान्त हो गया **तस्मात् अश्वः पशूनां जिघत्सुतमः भवति** इसलिए अश्व पशुओं में अधिक खाने वाला होता है। (वैसा ही अग्नि है इस अग्नि में सब कुछ समा जाता है।) **एष हि वैश्वानरः** यही अश्व वैश्वानर (अग्नि) है, **तस्मात् अश्वः रथं वहेत** इसीलिए अश्व रथ को चलाता है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में अश्व शक्ति का प्रतीक क्यों है? इस कल्पना को व्युत्पत्ति द्वारा कहा गया है। शक्ति आरंभ में भयंकर दाहक रूप थी फिर यह शक्ति

1. वैज्ञानिक सृष्ट्युत्पत्ति से तुलना करें जिसमें क्वार्क सूप, गट्स सूप, प्लाज्मा आदि तरलों की उत्पत्ति मानी गयी है।

विकसित होकर सुन्दर जगत् रूप में हुई अर्थात् जैसे अश्व रथ को निर्दिष्ट मार्ग पर ले जाता है, वैसे ही यह शक्ति मूल सत्ता से जगत् रूप में विकास पाती है। शब्द निर्वचन के अनुसार अश्व कैसे है? तो कहते हैं–**अश्नुते अध्वानम् या महाशनो भवति** (निरु. 2/7)। शक्ति पर ये दोनों कर्म प्रयुक्त होते हैं। शक्ति निर्दिष्ट मार्ग से होती हुई अश्व की तरह अपने गन्तव्य स्थल पर जाती है तथा इस शक्ति में सब कुछ समा जाता है अर्थात् यह महाशनो भवति। इस प्रकार इस कण्डिका में शक्ति को अश्व नाम देने का आधार क्या है? इसे स्पष्ट किया है। सृष्टि रथ क्यों कहा जाता है इसमें भी यही कारण है कि यह सृष्टि रथ शक्ति द्वारा वहन किया जा रहा है। इसकी ऋचा है–

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा। (1/164/2)

5. अश्व सूक्त की ऋचाओं की व्याख्या

सूक्त की प्रथम ऋचा है - (क्र. 84)

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हिरणास्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्।।

भाष्य - समुद्रात् मूल तत्त्व के महासागर से **उद्यन्** ऊपर आता हुआ **उत वा** तथा **पुर्-ईषात्** जगत् की इच्छा करता हुआ **प्रथमं** आदिकाल में **जायमानः** उद्भूत हुआ **यत् अक्रन्दः** जो गरजा था **श्येनस्य पक्षा** बाज की तरह शक्तिशाली पंख वाला अर्थात् अपने गन्तव्य पर पहुँचने की शक्ति वाला **हरिणास्य बाहू** हिरण की तरह छलाँग लगाकर चरणों (stages) को पूरा करने की शक्ति वाला **अर्वन्** हे महाशक्ते **ते महिजातं** तेरा महान् जन्म **उप स्तुत्यं** अति प्रशंसनीय है।

ऋचा में आदि सृष्टिकाल का वर्णन है जब मूल तत्त्वों के महान् विस्तार से महान् सृष्टि उत्पादक सामर्थ्य का उदय होता है जिसमें अपने लक्ष्य लोकों की उत्पत्ति तक जाने की पूर्ण सामर्थ्य व क्षमता होती है। उसी शक्ति को अर्वन् कहा गया है तथा स्तुति की गयी है।

आगामी ऋचा है - (क्र. 85)

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनरिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट।।

भाष्य - यमेन दत्तं नियंत्रक किरणों अर्यमा द्वारा प्रदत्त (**त्रितः आयुनक्** युज की लङ् लकार) तीन प्रकार से संयुक्त हुए **एनं** इसको **प्रथमः** सर्वप्रथम,

आदिकाल में **इन्द्रः** इन्द्र ने **अधि अतिष्ठित्** पूर्ण रूप से अधिकृत किया। (**गन्धर्वः** = गन्ध्+अर्व+ अच्)[1] सूक्ष्म शक्ति ने **रशनाम्** लगाम को **अस्य** उसके **अगृभ्णात्** पकड़ा **सूरात्** सूर्य के समान प्रज्ज्वलित पिण्ड से **अश्वं** अश्व शक्ति को **वसवः** आठ वसुओं ने (निर् अतष्ट तक्ष् की लङ् लकार) उत्तम रीति से बनाया। तुलना करें वैज्ञानिक अष्टवर्गी प्लाज्मा अवस्था के चरण से।

यह शक्ति (वरुण, मित्र) कण-प्रतिकण एवं नियंत्रक शक्ति (अर्यमन्) विकिरण से संयुक्त हुई तथा वसुओं ने इस शक्ति को गढ़ा तब सूर्य की तरह प्रज्वलित पिण्ड उद्भूत हुआ जिसे विज्ञान में बिग बैंग कहते हैं। आगामी ऋचा है - (क्र. 86)

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि।।

भाष्य - अर्वन् हे महाशक्ति तू **यमः असि** नियंत्रक है, **आदित्यः असि** तू मूल शक्ति अदिति से उत्पन्न है। **त्रितः गुह्येन व्रतेन असि** तू तीन गुप्त नियम (सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय) वाला है, **सोमेन समया** सोम विकिरण के साथ उपयुक्त समय पर (विपृक्त, धातु पृच् = मिलाना का क्तान्त पृक्त) अच्छी तरह संयुक्त है। तेरे तीन दिव्य बंधन (प्रकृति के तीन वर्ग- मित्र, वरुण, अर्यमा) कहे जाते हैं।

ऋचा में कहा गया है कि यह अर्वन् मूल शक्ति अदिति से उत्पन्न आदिकाल की प्रारंभिक कार्य शक्ति है जो सर्व योजना की नियंत्रक है जिसका लक्ष्य पदार्थ (मेटर) को प्रलय की अवस्था से सृष्टि-उत्पत्ति स्थिति तक ले जाना है यही इसका गन्तव्य मार्ग है जिससे इसकी संज्ञा अश्व (अर्वन्) हुई है; क्योंकि '**अश्नुते अध्वानम् अश्वः**' मार्ग को तय करता है (निरु.)।

आगामी ऋचा में कहा गया है कि मूल शक्ति त्रिवर्गी है। क्रियात्मक होने पर भी मूल शक्ति जो आपः नाम से विज्ञेय है तीन वर्ग वाली है। ऋचा में कहा गया है हे अश्व! हे महाशक्ति मेरी कल्पना शक्ति को वहाँ ले जा, जहाँ तेरा जन्म हुआ है। सूक्त की 5वीं ऋचा है - (क्र. 87)

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः।।

भाष्य - वाजिन् हे शक्ति **इमा** ये वितरित किये गये **निधाना** आश्रय स्थान

---

1. गन्धं सौरममर्वति। अर्व गतौ (भ्वा. प.) अमरकोश। गन्ध को, सूक्ष्म तत्त्वों को ले जाने वाली वायु या शक्ति।

पृथिवी सूर्यवत् लोक **अवमार्जनानि** प्रकाश, तेज के द्वारा शुद्धीकृत हुए **ते शफाना** तेरे खुर की तरह (सृष्टि- उत्पत्ति के) चरण होते हुए (**सनितुः**) उपभोक्ता मानव के कल्याण के लिए हैं। **अत्र ते भद्रा रशनाः गोपाः अपश्यम्** यहाँ मैंने तेरे कल्याणकारी लगाम रूप (नियंत्रक) रक्षक देखे हैं या **ऋतस्य** जो प्राकृतिक प्रवाह की **अभि रक्षन्ति** सब प्रकार से रक्षा करते हैं।

आदि सृष्टिकाल में महान् प्रज्ज्वलित पिण्ड की उत्पत्ति हुई थी। सूर्यवत् तेजस्वी लोक उसी महापिण्ड के अवशेष हैं। जो महाशक्ति आदि सृष्टि में उद्भूत हुई थी उसी शक्ति का सातत्य प्रवाह इस जगत् रूप में अवस्थित है उसी शक्ति का नियंत्रण चल रहा है। जैसे लगाम से अश्व नियंत्रित होता है वैसे ही उस शक्ति के लगाम रूप नियंत्रण से यह जगत् गतिमान् है अर्थात् आदिकाल में जो प्रतिबंध, जो आद्या शर्तें (initial conditions) प्रयुक्त हुईं उन्हीं के अनुरूप जगत् का विस्तार हुआ है; जैसे रॉकेट फायर करने में जो आद्य प्रतिबंध होते हैं तदनुसार ही रॉकेट प्रयाण करता है।

आगामी ऋचा है – (क्र. 88)

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि।।

भाष्य – ते आत्मानं मनसा आरात् अजानाम् हे शक्ति! तेरे स्वरूप को मैंने चित्त की सन्निकटता से जाना, **दिवा पतयन्तं** आकाश से गिरते हुए **अवः** रक्षण सामर्थ्य से युक्त **पतङ्गम्** प्रज्ज्वलित मंडल के **शिरः** शीर्ष भाग के समान मुख्य प्रथम स्वरूप को **पतत्रि** पक्षी की तरह **अरेणुभिः सुगेभिः पथिभिः** रेणुरहित सुगम मार्गों द्वारा **जेहमानं** त्यागते हुए को **अपश्यम्** मैंने देखा।

ऋचा में कहा गया है कि यह अश्व कही गयी महाशक्ति आदि सृष्टिकाल में प्रज्ज्वलित महामंडल के रूप में उदय हुई। वही इस शक्ति का शीर्ष स्थान रूप प्रथम स्वरूप था। अनन्तर आकाश से गिरती हुई तथा पक्षी की तरह सुगमता से फैलती हुई इस शक्ति से आकाश परिपूर्ण हुआ, जिस शक्ति के ऋषि ने साक्षात् कल्पना में दर्शन किये। तुलना करें विश्व प्रसार की वैज्ञानिक कल्पना से।

आगामी ऋचा है – (क्र. 89)

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणामिष आ पदे गोः।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानलादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः।।

भाष्य – अत्र ते यहाँ तेरा **पदे गोः आ** पृथ्वी के पद तक, पृथ्वी की उत्पत्ति, जो अन्तिम कड़ी है रचना की तक इषः इच्छित (**जिगीषमाणां**, जि = जीतना का शानच्-प्रत्ययान्त) विजय प्राप्त किये हुए **उत्तमं रूपं अपश्यं** सर्वोत्तम कान्तिवान् स्वरूप को मैंने देखा।

ओ शक्ति जब (**अजीगः** गृ = निगलना लुङ् धातु साभ्यास म.पु. एक वचन) तुमने समस्त भौतिक द्रव्य को निगल लिया व **ग्रसिष्ठः**, उस अपरिष्कृत अनगढ़ को पचाकर **ओषधिः** मानव उपयोग के लिए वनस्पति रूप में **आतः** इत तब ही **मर्तः** मानव ने (**भोगम्** अनु आनट् धातु नश् लुङ् धातु वै. व्या.) भोग के लिए अनुकूल पाया।

ऋचा में कहा गया है कि जो महाशक्ति आदि सृष्टिकाल में प्रज्वलित अग्नि पिण्ड के रूप में उद्भूत हुई थी। पृथ्वी रचना उसकी अन्तिम कड़ी है उसी शक्ति के तारतम्य को वनस्पत्ति व अन्न रूप से पृथ्वी पर पाया जाता है।

अश्व शब्द किरणों के लिए प्रयुक्त हुआ है। शब्द निर्वचन के अनुसार '**अश्नुते अध्वानम् अश्वः**' (निरु. 2/7) **अध्वन्** = मार्ग को तय करता है किरण भी मार्ग को तय करती है अतः इस अर्थ में किरण के लिए भी अश्व का प्रयोग उपयुक्त है, इसका वैदिक उदाहरण भी है –

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिवः आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावा पृथिवी यन्ति सद्यः।।

सूर्यस्य अश्वाः सूर्य की शक्ति वाहक **भद्राः** कल्याणकारी **चित्रा** अद्भुत (**हरितः**, हरितो रस हरणशीलाः रश्मयः, सायण) **किरणे अनुमाद्यासः** हर्षोत्पादक **नमस्यन्तः** नीचे झुकती हुई **दिवः पृष्ठं आ तस्थुः** आकाश के अन्तराल में स्थित होती है। **सद्यः** शीघ्र **द्यावा पृथिवी परि यन्ति** प्रकाशित लोकों, पृथ्वी पर फैल जाती हैं।

अध्याय 8

ऋग्वैदिक एवं वैज्ञानिक पदार्थ की अवस्था

ऋग्वेद के अनुसार आदि सृष्टिकाल की मूल सत्ता से जगत् रूप में विकसित पाँचवी अवस्था तक पदार्थ क्रमशः पाँच अवस्थाओं से गुजरता है। पदार्थ की ब्राह्मी स्थिति अथवा नित्य सत्ता अदिति है जो त्रिवर्गी तत्त्व समूह की समग्र सत्ता है। पदार्थ की प्रथम अवस्था त्रिवर्गी तत्त्व की क्रियाशील अवस्था आपः है। पदार्थ की द्वितीय अवस्था बृहतीः आपः कही गयी है जिसमें त्रिवर्गी तत्त्व समूह परिणामी होकर यौगिक बनाते हैं। दर्शन में इस अवस्था को महत्तत्त्व कहते हैं। यह अवस्था विज्ञान की प्लाज्मा अवस्था के समकक्ष है। पदार्थ की तृतीय अवस्था अपां नपात् कही गयी है जो विज्ञान की नाभिकीय (न्यूक्लेयर) अवस्था की द्योतक है इसमें हाईड्रोजन और हीलियम परमाणु नाभि (nucleus) स्वतंत्र रूप से सत्ता में रहती है। इसे विज्ञान में कास्मिक मेटर भी कहते हैं। चतुर्थ अवस्था में सप्तवर्गी परमाणु रचना होती है। अन्तिम पाँचवीं अवस्था सप्तवर्गी दृश्य जगत् की है।

1. अर्वन् एवं अनर्वन् में भेद

गत अध्यायों में आपः, अदितिः, अश्वः आदि प्रतीकों में निहित भावों पर विशद रूप से प्रकाश डाला गया है। वैदिक ऋषियों ने भौतिक द्रव्य सत्ता को दो भागों में विभक्त किया है। एक वर्ग अश्वः व अर्वन् कहलाता है तथा दूसरा वर्ग अनर्वन् कहलाता है। अनर्वन् वर्ग अश्वः वर्ग से स्वरूपगत भिन्न एवं परे है। अनर्वा संज्ञा मूल तत्त्व की है, मूल तत्त्व से भिन्न सभी द्रव्य परिणाम हैं, मूल के यौगिक हैं, संयुक्त हैं, सावयव (with constituents) हैं। अतः अश्वः प्रतीक से विज्ञेय हैं। अनर्वा तत्त्व मूल, असंयुक्त, अविभाज्य, निरवयव (without constituents) है तथा अनादि, नित्य एवं स्वयंभू है। निरुक्त (6/5) के अनुसार **"अनर्वा अप्रत्यृतं ऽन्यस्मिन्"**। [1]अनर्वा का अर्थ है जो दूसरे पर आश्रित न हो अर्थात् स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता वाला।

---

1. अनर्वा के वैदिक भाषा में 3 अर्थ हैं प्रथम अर्वा (अश्व) का निषेध है, दूसरा अर्थ है (अर्व

अर्वन् (अश्वः) मूल से उत्पन्न परिणाम है। गत लेखों में यह बताया गया है कि मूल तत्त्वों के समग्र रूप को अदिति प्रतीक से विभूषित किया गया है। ऋग्वेद में अनर्वा पद केवल अदिति के लिए प्रयुक्त हुआ है, यथा ऋ. 2.40.6 में यह पद आता है '**अवतु देव्यदितिरनर्वा**' अनर्वा शक्ति की अधिष्ठात्री दिव्य शक्ति अदिति रक्षा करे। इसी प्रकार ऋ. 7.40.4 में यह पद आता है '**सुहवा देव्यदितिरनर्वा**' अनर्वा दिव्य अदिति को आदर पूर्वक बुलावें आदि।

2. एक चक्र वाला सृष्टि रथ

ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 164 के 2रे मन्त्र में विश्व की एक चक्के वाले रथ के रूप में कल्पना की गयी है। इस चक्के के बाह्य घेरे (रिम) में अश्व शक्ति तथा आन्तरिक नाभि चक्र में अनर्वा शक्ति नियोजित है, मन्त्र है - (क्र. 90)

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा,
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।

भावार्थ - '**रथं** रथ के **एकचक्रं**' एक चक्र (रिम) को **सप्त युञ्जन्ति** सात घटक नियोजित हैं। **एकः अश्वः** एक ही शक्ति (ऊर्जा) **सप्तनामा** सात नाम रूपों को (वहति) धारण करती है। **त्रि** तीन **नाभि** नह् = बंधने) बंधन वाला, **अजरं अनर्वम् चक्रं** चक्र कभी क्षीण न होने वाला अन्य पर अनाश्रित है **यत्र इमा विश्वा भुवना अधि तस्थुः** जिस पर समस्त लोक पूर्ण रूप से स्थित हैं।

मन्त्र में निम्नलिखित परिकल्पना (थ्योरी) है। समस्त बहुरूपी जगत् एक रथ है जो एक चक्र पर आधारित है। यह चक्र काल से प्रेरित हो घूमता है तथा इस जगत् की निरंतर परिवर्तनशील अवस्था का द्योतक है। इस चक्र में दो घेरे हैं। एक बाह्य तथा दूसरा आन्तरिक। बाह्य घेरा सात भागों से मिलकर बना है यह दृश्य जगत् का द्योतक है। सात अवयव हैं - पृथ्वी (ठोस अवस्था), जल (द्रव अवस्था), तेज (अश्व ऊर्जा = ताप, विद्युत्, प्रकाश), वायु (गैसीय अवस्था), आकाश (सर्वव्यापक आदिकाल की सोम ऊर्जा = कास्मिक विकिरण), दिक् (अंतरिक्ष = inter stellar space = लोकों के बीच का रिक्त स्थान), संवत्सर (सृष्टिकाल = age of universe)। वास्तव में सात विभिन्न दर्शनीय रूप एक ही ऊर्जा की परिवर्तित अवस्थाएँ हैं। सप्तवर्गी जगत् का विवरण अध्याय 16 का विषय है।

= हिंसायाम्) अकुत्सित, अनिन्दनीय, तीसरा अर्थ है अनाश्रित, स्वतंत्र, आत्मनिष्ठ निरु. भाष्य। अनर्वन् = अप्रतिहार्य वै. व्या.

अनर्व संज्ञा अदिति की है और अदिति तीन मूल शाश्वत तत्त्वों का संघात है अत: 3 बंधन वाले आन्तरिक चक्र से तीन अजर तत्त्व ही अभिप्रेत हैं जो मित्र वरुण, अर्यमा तीन आदित्य हैं; देखें अध्याय 4 (क्र. 86) **आहु: ते त्रीणि दिवि बन्धनानि।**

मंत्र में जगत् के विभिन्न रूपों में एकत्व, एक ही ऊर्जा के होने का सिद्धांत (Law of equivalence of mass energy relation) का प्रतिपादन किया गया है। इस अश्व शक्ति के अति परे तीन शाश्वत, नित्य वर्गों वाली मूल आद्या शक्ति है जो भौतिक जगत् की उत्पत्ति का परम आधार है अर्थात् यह शक्ति तीन प्रकार के शाश्वत तत्त्वों का संघात (यूनियन) है। समग्र तत्त्व समुदाय को ऋग्वेद में अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है यह शक्ति नाभि चक्र में अवस्थित है। मूल तत्त्वों के तीन वर्गों के बीच सन्तुलन भंग होते ही क्रियाशील स्थिति उद्भूत होती है जो वेद के आप: प्रतीक से विज्ञेय है।

3. आन्तरिक नाभिकीय परिणाम (nuclear effects) संबंधी विचार

त्रिवर्गी आद्या मूल भौतिक शक्ति अदिति: के क्रियाशील रूप आप: से सृजन के तारतम्य में सर्वप्रथम अनेक परिणामों की उत्पत्ति होती है इस तथ्य को ऋ. 4.42. 4 से प्रस्तुत किया जाता है – (क्र. 91)

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणां धारयं दिवं सदन ऋतस्य।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयत् विभूम्॥

भाष्य मन्त्र क्रमांक 61 में देखें।

मन्त्र में यह कल्पना है कि दिवं सदने जो कि पूर्व मन्त्र में नाभि चक्र है, में मूल आद्या शक्ति की क्रियाशील अवस्था आप: ऋत को, सृजन रूपी प्राकृतिक बहाव को आरंभ करता है अर्थात् नाभि चक्र में अदिति के तीन शाश्वत तत्त्व परस्पर क्रिया करके अनेक अति सूक्ष्म परिणामों की रचना करते हैं। मन्त्र के अनुसार यह आप: का पुष्ट होना आप: अवस्था का विस्तार ही है। आप: के इस विस्तृत स्वरूप को, जिसमें त्रिवर्गी आप: के यौगिक या परिणाम सम्मिलित है, बृहती: आप: कहते हैं। नाभि चक्र में अवस्थित ये परिणाम विज्ञान की प्लाज्मा अवस्था का द्योतक है। मूल तत्त्व के तीन वर्गों की स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता होने से उनके गुण स्वभाव की भी स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता है जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ऋत शब्द का वेद में विशेष महत्त्व है। ऋत का अर्थ होता है वह क्रिया जो स्वकीय स्वशक्ति से अपने आप (spontaneous) आन्तरिक कारण से घटित हो। उदाहरण के लिए

अपने आप किन्हीं परिस्थितियों में ऑक्सीजन और हाइड्रोजन गैसें संयोग करके पानी बनाती हैं। यह एक ऋत है। जब तक परिस्थितियाँ वही रहेंगी इन्हें कोई भी, ईश्वर भी, इस क्रिया के सम्पन्न होने से नहीं रोक सकता। मन्त्र में ऋत शब्द तीन बार आया है। यह इस बात का द्योतक है कि वैदिक ऋषियों की यह धारणा है कि ईश्वर मूल तत्त्व की स्वयंभू सत्ता में किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकता। वह मूल तत्त्व के गुण, धर्म स्वभावानुसार ही मूल तत्त्व का विकास सृष्टिपर्यन्त करता है।

मन्त्र में आपः को अदिति का गुण-स्वभावानुसार उत्पन्न पुत्र कहा गया है। अतः आपः (अदिति से) प्रथम क्रियाशील अवस्था है। इस अवस्था में तीन मूल तत्त्वों का प्रचुरता से विस्तार होता है यह स्थिति अग्नि-काण्ड (बिग बैंग) के समय की है। अतः आपः से आगामी महत्त्वपूर्ण अवस्था **'अपाम् नपात्'** कही गयी है। यह अवस्था आधुनिक विज्ञान की नाभिकीय अवस्था है। हीलियम, हाईड्रोजन नाभि जिसके प्रमुख अंश है इसे कास्मिक मेटर भी कहते हैं। सृष्टि-उत्पत्ति-क्रम में विज्ञान के अनुसार महा विस्फोट के 30 मिनट के अन्दर ही द्रव्य की अनेक अवस्थाएँ उत्पन्न हो आगामी अवस्था में लय हो जाती हैं।

इन समस्त घटनाचक्र को एक अवस्था के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस प्रकार प्रारंभिक अवस्थाओं के बाद विज्ञान द्वारा कही गयी दूसरी अवस्था जो महाविस्फोट के 30 मिनट बाद आती है वह है नाभिकीय अवस्था। ऋग्वेद की अवस्थाएँ इस प्रकार हैं - अदितिः, माता या क्रियात्मक मूल तत्त्व आपः के समकक्ष विज्ञान में कोई कल्पना नहीं है। माता का प्रथम परिणाम या पुत्र **बृहतीः आपः** विज्ञान की प्रारंभिक अवस्था का द्योतक है तथा **अपां नपात् बृहतीः** आपः का पुत्र (परिणाम) या अदितिः का नाती है (नपात् = नाती, वै. व्या.)। इस प्रकार ऋग्वेद प्रोक्त **अपां नपात्** अवस्था क्रम में तीसरी है तथा विज्ञान की नाभिकीय (nuclear state = संस्कृत नाभिक) अवस्था की द्योतक है।

4. ऋग्वैदिक एवं वैज्ञानिक अवस्थाओं में साम्य

आधुनिक वैज्ञानिक मान्यता है कि महाविस्फोट के क्षण के दस हजारवें भाग के अन्तराल में प्रमाणित समय पर (standard era) प्लाज्मा नामक महत्त्वपूर्ण तरल उत्पन्न है। यह पदार्थ की वह अवस्था है जब अत्यधिक ताप के कारण परमाणु तो क्या उसकी नाभि (nucleus) भी अपने अवयवों में विखंडित हो जाती है तथा इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि स्वतंत्र रूप से रहते हैं। विज्ञान के अनुसार उस समय प्लाज्मा में कण-प्रतिकण की संख्या आठ थी। ऋग्वेद के अनुसार **बृहतीः आपः** अष्टवर्गी थी अतः ऋग्वेद की बृहतीः आपः आधुनिक विज्ञान की प्लाज्मा कही जा

सकती है। विज्ञान के अनुसार महाविस्फोट के बाद द्रव्य अबाध गति से प्रसार में संलग्न रहता है, जिससे क्रमशः तापमान भी गिरता जाता है। तापमान के इस निरन्तर परिवर्तन से पदार्थ की अवस्थाओं में भी परिवर्तन होता है। प्लाज्मा अवस्था के बाद द्रव्य की नाभिकीय अवस्था (nuclear state) आती है; अनन्तर विज्ञान के अनुसार सप्तवर्गी (मेन्डलीफ पीरियाडिक टेबिल) पीरियड वाले परमाणु बनते हैं। विज्ञान के अनुसार परमाणु अवस्था अस्थाई अवस्था है इस कारण उसे nascent state कहते हैं। ऋग्वेद के अनुसार परमाणु सप्तवर्गी हैं जिन्हें **सप्त अर्धगर्भाः** कहते हैं। अर्धगर्भः का अर्थ है भ्रूणावस्था अपरिपक्व अवस्था है जो विज्ञान की nascent state की परिकल्पना के अनुरूप है।

5. आदिकाल में अष्टवर्गी बृहती आपः एवं सप्तवर्गी परमाणु की उत्पत्ति

विज्ञान की परिकल्पना के अनुरूप प्लाज्मा अष्टवर्गी थी।ऋग्वेद का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने हेतु ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 72 के 8 वें मन्त्र को उद्धृत किया जाता है – (क्र. 92)

अष्टौ पुत्रासो आदितेर्ये जातास्तन्व १ स्परि।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत्।।

अदितेः तन्वः अष्टौ पुत्रासः परिजाताः अखण्ड आद्या शक्ति प्रकृति के मूल स्वरूप के आठ परिणाम उद्भूत हुए। (मार्ताण्डम्, मार्तण्ड = सूर्य, यहाँ संदर्भानुसार आदि सृष्टि का बृहदिग्न पिण्ड) आदिकाल के महा सूर्य को परा दूर (आस्यत् अस् = फेंकना की लङ् ल.) फेंका गया था अर्थात् द्रव्य मंडल का दूर तक प्रसार हो जाने पर **सप्तभिः देवान् उप प्र ऐत्** सात देवों (सूक्ष्म भूत, अवस्थाओं) द्वारा प्रकर्षता से आगमन हुआ था।

इन्हीं आठ प्रारंभिक परिणामों को आठ वसु कहा गया है।[1] महावसु मूल तत्त्व की संज्ञा है (अध्याय 11)। अतः वसु संज्ञा मूल के प्रथम परिणाम की है।

महाविस्फोट के अनन्तर द्रव्य का प्रसार हो जाने पर तापमान गिरता है तब द्रव्य की दूसरी अवस्था आती है यह परमाणु अवस्था है। इस अवस्था में सात देव अर्थात्

---

1. आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टो कीर्तिता। (प्रति ऊषः) प्रत्येक आदिकाल में (ध्रुवः आपः) शाश्वत मूल तत्त्व तथा (सोमः) विकिरण का अंग्निमय मण्डलाकार वायु रूपी तरल पिण्ड था तथा आठ प्रदीप्त वसुओं का होना प्रसिद्ध है। –मत्स्य पु. (5/21)

सप्तवर्गी परमाणु उद्भूत हुए। ऋग्वेद में इस घटना को प्रकारान्त से सप्तसिन्धु की उत्पत्ति कहा गया है। ये सात परमाणु प्रवाह हैं जो आकाश में उद्भूत होते हैं। ऋग्वेद में इस अवस्था को सप्त अर्धगर्भाः भी कहा गया है, अर्धगर्भः का अर्थ भ्रूणावस्था, अन्तरिम अवस्था, अपरिपक्व अवस्था है जो परमाणु अवस्था की द्योतक है।

ऋग्वेद 1/164/36 में कहा गया है -

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो।

सप्त अर्धगर्भाः सात भ्रूणावस्था में, अन्तरिम अवस्था में ब्रह्माण्ड के बीजरूप है।

प्रसिद्ध है कि परमाणु अवस्था अन्तरिम, अस्थाई है। स्थायी अन्तिम अवस्था अणु है। अतः नाभिकीय अवस्था एवं अणु (molecule) अवस्था के बीच की अन्तरिम अवस्था परमाणु अवस्था है जो अर्धगर्भः की द्योतक है। एतदर्थ सप्त अर्धगर्भः सप्तवर्गी परमाणु अवस्था के द्योतक हैं।

दर्शन में परमाणु अवस्था को तन्मात्रा कहा गया है। तन्मात्रा, तत् - मात्रा की संधि है। ठोस, द्रव, गैस में से किसी द्रव्य (element) की तन्मात्रा उस द्रव्य की छोटी से छोटी मात्रा है जिसमें द्रव्य का स्वरूप वर्तमान रहे और यह सूक्ष्माति-सूक्ष्म भाग परमाणु है जो उस द्रव्य के रूप को बनाये रखता है। अतः तन्मात्रा परमाणु का पर्याय है। ऋग्वेद की इस अवस्था से विज्ञान के सप्त पीरियाडिक परमाणु अवस्था का साम्य है।

6. ऋग्वेद की दूरगामी भविष्यवाणी एवं आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषण

विज्ञान को परमाणु के अवखंडन से इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि कणों के अस्तित्व का ज्ञान हुआ। इस खोज से प्रोत्साहित हो विज्ञान ने समवर्ग वाले अन्य कणों की खोज अनवरत जारी रखी। ऐसे कणों को जिनका अवखण्डन नहीं हो सकता विज्ञान ने मौलिक (fundamental) कण कहा।

ज्ञात ऐलीमेन्ट्स् (लोहा, तांबा, जस्ता, आक्सीजन आदि) की संख्या लगभग 117 है। मौलिक कणों की संख्या के संबंध में वर्तमान स्थिति यह है कि इन मौलिक कणों की संख्या ज्ञात ऐलीमेन्टस् की संख्या से स्पर्धा कर रही है। मौलिक कणों की संख्या कही आगे बढ़ चुकी है। दिन-प्रतिदिन नवीन मौलिक कण ज्ञात हो रहे हैं इनमें से अनेक अत्यंत संक्षिप्त आयु वाले हैं तथा कुछ दो अस्तित्वों के मध्य की कड़ी मात्र है जो क्षणों की अन्तरिम अवधि के लिए अस्तित्व में आते हैं। इस प्रकार

मौलिक कणों की संख्या निर्धारित करना आधुनिक न्यूक्लेयर भौतिकी शास्त्र की एक ज्वलंत समस्या है।

ऋग्वेद की मूल आद्या शक्ति से प्रादुर्भूत हुए प्रथम परिणामों को, जिन्हें ऋग्वेद ने बृहती: आप: वर्ग में रखा है, विज्ञान के मौलिक कणों के वर्ग के समकक्ष रखा जा सकता है। इन परिणामों के विषय में ऋग्वैदिक अवधारणा ऋचा (1/95/4) में निहित है – (क्र. 93)

क इमं वो निण्यमाचिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभि:।
वह्वीनाम् गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान्।।

व: इमं निण्यम् क: आप में से कौन इस गुप्त रहस्य को जानता है, जब **वत्स:** मूल प्रकृति का प्रथम परिणाम रूप वत्स **स्वधाभि:** अपनी स्वधारक शक्तियों से **मातृ:** मूल प्रकृति रूप (तीन) माताओं को, उनके स्वरूप को **जनयत** प्रकट करता है। **गर्भ:** वत्स रूप गर्भ **वह्वीनाम् अपसाम्** अनेक स्फूर्तिदायक परिणामों, द्रव्यों के (**उप-स्थात्** स्था लेट् लकार) निकट स्थित होगा, होता है, **स्वधावान्** स्वधारणा शक्ति से युक्त **महान् कवि:** महान् क्रांतिदर्शी ईश्वर **नि: चरति** सभी अवस्थाओं के अन्तस् में विचरण करता है व्याप्त है।

मन्त्र में यह कहा गया है कि मौलिक कणों तक (direct) सीधे कभी भी पहुँच नहीं हो सकती। उनके प्रथम परिणाम रूप यौगिक, जिसे वत्स कहा गया है, के माध्यम से ही त्रिवर्गी मूल मातृशक्ति के स्वरूप का उद्घाटन हो सकता है।

मूल आद्या शक्ति से उद्भूत प्रथम परिणाम अनेकानेक हैं व स्वशक्ति से युक्त हैं। इन मौलिक परिणामों का क्रमागत विकास किस प्रकार आदि सृष्टि आरंभ काल में होता है, उनका वर्गीकरण क्या है, उनका परस्पर संबंध क्या है, उन कणों की संख्या क्या है आदि प्रथम परिणामों से संबंधित तथ्य अत्यन्त रहस्यमयी हैं। ऋषि कहता है उस अवस्था का पूर्ण ज्ञान एकमात्र ईश्वर को है जो प्रकृति की उस अवस्था में व्यापक होने से साक्षात्कृतधर्म से सर्वज्ञाता है।

विज्ञान की यह आधुनिकतम स्थिति है कि वह मौलिक कणों के विषय में (purplexed) चमत्कृत है तथा इसके विषय में जितना अन्वेषण करती है उतनी ही विस्मय ग्रसित एवं (confused) भौंचक्की हो रही है। किसी प्रकार भी मौलिक कणों के विवरण को ज्ञान की परिधि में लाना संभव नहीं हो रहा है तब क्या अतीन्द्रिय ज्ञान के परिणामस्वरूप अपने दिव्य दर्शन से ऋग्वेद के ऋषि के द्वारा की

हुई भविष्यवाणी सर्वथा निर्दोष एवं पूर्णतः आप्तकाम सिद्ध नहीं हुई है। यास्क ने ठीक ही ऋषि को साक्षात्कृतधर्मा कहा है।

7. त्रिवर्गी मूल तत्त्व की स्वतंत्र सत्ता

त्रिवर्गी मूल तत्त्व की स्वगुण संपन्न निरपेक्ष सत्ता संबंधी विचार ऋग्वेद में भरे पड़े हैं। क्रमांक 90 में इस सत्ता को "त्रि अजरं" पद से संबोधित किया है अर्थात् तीन शाश्वत तत्त्व कहा गया है। क्रमांक 91 के मन्त्र में उसे त्रिधातुः कहा है। ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 22 के 18 वें मन्त्र में यह विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है कि ईश्वर, प्रकृति (मूल तत्त्व) के गुण स्वभाव के अनुरूप ही उससे सृष्टि रचना करता है अन्यथा नहीं। मन्त्र है - (क्र. 94)

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्।।

भाषार्थ - अदाभ्यः विष्णुः शाश्वत ईश्वर **गोपा** सबका रक्षक **त्रीणि पदा** तीन सर्वोच्च तत्त्वों से **विचक्रमे** विविध रचना करता है। **अतः** उन तत्त्वों के **धर्माणि** गुण स्वभाव को **धारयन्** धारण करके अर्थात् उनके अनुरूप ही। यही प्रकारांत से ऋ. 1/102/8 में कही गयी है - (क्र. 95)

त्रिविष्ट धातु प्रतिमानमोजसः।

ओजसः तेजस्वी ईश्वर ने **त्रि** तीन **विष्ट** व्यापक **धातु** मूल तत्त्वों के **प्रतिमान** अनुरूप विविध रचना की है।

वेद के इस सिद्धांत को उपनिषद् ने अपनाया है, श्वेताश्वतर (5/5) कहती है - **"यत् च स्वभावं पचति"** जो प्रकृति को भी पकाता है।

गुणान् च सर्वान् विनियोजयेत यः।

यः जो **सर्वान् गुणान्** प्रकृति के सभी गुणों को **वि-नियोजयेत** अच्छी तरह नियोजित करता है। यही सिद्धांत गीता के श्लोक (8/9) में व्यक्त है।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्रामिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।

प्रकृतिं स्वां अवष्टभ्य अपनी प्रकृति के गुणों को स्वीकार कर **प्रकृतेः** उन प्रकृति के गुणों के द्वारा **अवशं** परतंत्र हुआ, बंधा हुआ **वशात्** वशीभूत-सा होकर **इमं** इस **कृत्स्नम्** सम्पूर्ण **भूतग्रामं** भूत समुदाय को **पुनः पुनः** बार-बार **विसृजामि** रचता हूँ।

रचे हुए को बार-बार रचता हूँ अर्थात् यही रचा हुआ मिट-मिट के बनता है बन-बन के मिटता है। मूल प्रकृति शाश्वत है, शाश्वत प्रकृति के गुण भी शाश्वत है, अत: उनका उल्लंघन नहीं हो सकता। उन्हें स्वीकार करके, अङ्गीकार करके ही रचना संभव है, यह इसका सार है।

इस प्रकार वेद और उससे संबंधित साहित्य में प्रकृति की अविनश्वरता और प्रकृति तथा उसके गुणों की स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता स्वीकार की गयी है। वेद की अदिति का स्थान उत्तर साहित्य में प्रकृति ले लेती हैं। तथा वेद के ऋत का भाव स्वभाव शब्द में अभिव्यक्त है।

8. सृष्टिचक्र का अद्भुत विवरण

पूर्व में जिन मन्त्रों पर चर्चा हुई है उनके आधार पर सृष्टिचक्र का जो चित्र उभरता है, उसे नीचे प्रस्तुत किया जाता है -
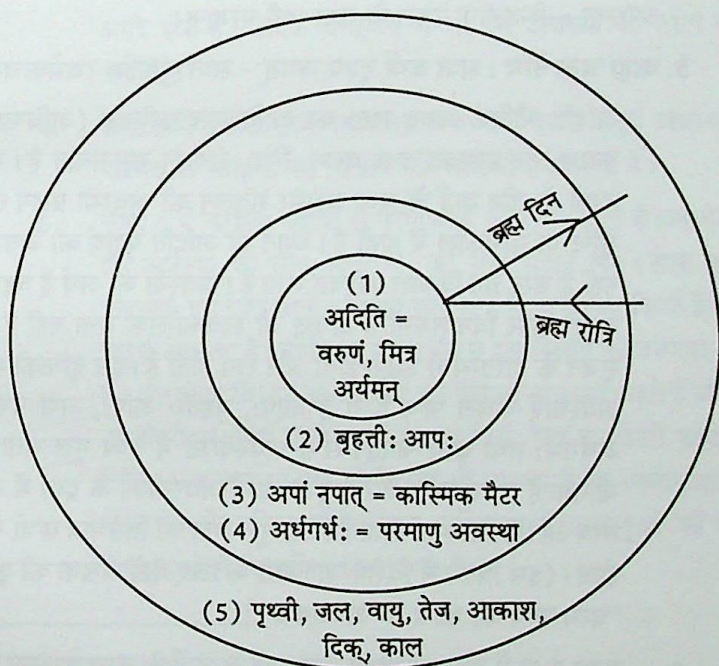
येनेदं भ्राम्यते ब्रह्म चक्रं

1. नाभि चक्र का आन्तरिक भाग

ब्राह्मी स्थिति अदिति प्रतीक से विज्ञेय मूल सत्ता – **त्रिनाभि चक्रं अजरं अनर्वं।**

2. नाभि चक्र नेमि

(अ) पूर्वार्ध भाग – आपः प्रतीक से विज्ञेय मूल तत्त्वों की क्रियाशील अवस्था

(ब) उत्तरार्ध भाग – आपः का विस्तृत रूप बृहतीः आपः मूल से उद्भूत प्राथमिक तरल – **उक्षमाण अपः प्रथयत् वि भूम्** = प्लाज्मा अवस्था।

नाभि चक्र नेमि व बाह्य चक्र नाभि के मध्य का रिक्त स्थान :-

3. अन्तरिम पूर्वार्ध कक्ष – अपां नपात् प्रतीक से विज्ञेय नाभिक अवस्था कास्मिक मेटर।

4. अन्तरिम उत्तरार्ध कक्ष – परमाणु अवस्था, **सप्त अर्धगर्भाः** – तन्मात्रा अवस्था = मेन्डलीफ टेबल के सप्त वर्गी परमाणु।

5. बाह्य चक्र नेमि : सप्त वर्गी दृश्य जगत् – सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रं।

1. अदिति भौतिक जगत् सत्ता का आदि मूल द्राव्यिक (अधिष्ठान) कारण तीन शाश्वत तत्त्व वरुण, मित्र, अर्यमन् का संघात है। मूल तत्त्वों के तीन वर्गों के मध्य परस्पर संतुलन की अवस्था प्रलय तथा सृष्टि के संधिकाल में होती है। ध्यान रहे अदिति पदार्थ की अवस्था नहीं है वरन् यह त्रिकाल शाश्वत सत्ता है। अवस्था का अर्थ है वह जो उत्पत्ति और विनाशधर्मी है अर्थात् जो सार्वकालिक सत्ता नहीं है जो सृजन के तारतम्य में उद्भूत होती और लय होती है। इस दृष्टिकोण से अवस्थाएँ केवल पाँच हैं ये हैं आपः, बृहतीः आपः, अपां नपात्, अर्धगर्भः तथा दृश्य जगत्। सभी अवस्थाओं में द्रव्य मूल सत्ता के यौगिक हैं जो खंडनीय हैं किन्तु इन सभी अवस्थाओं के द्रव्य में मूल तत्त्व अदिति विद्यमान रहता है। उस मूल सत्ता का तिरोभाव कभी नहीं होता। (इस विषय में विशेष जानकारी के लिए देखें लेखक की कृति 'चरम सत्य की खोज में' अध्याय 4)।
2. कक्षा 2 अ में प्रवेश करते ही मूल तत्त्व के वर्गों के मध्य सन्तुलन की स्थिति भंग हो जाती है। तीन वर्ग गतिमान् हो परस्पर क्रियाशील हो जाते हैं। समष्टि मूल तत्त्व की यह अवस्था आपः संज्ञा से विज्ञेय है।

वेद की शब्दावली में इस स्थिति को दर्शाने वाले अन्य नाम माया, सलिल या असत् भी हैं। वेद ने इस स्थिति को आपः का आन्तरिक पूर्व भाग कहा है, (ऋ.10/121/7)।

3. कक्षा 2 ब में मूल तत्त्व की क्रियाशील अवस्था के पदार्पण के तुरंत पश्चात् तीन वर्गों की परस्पर क्रिया से अनेकानेक यौगिक उद्भूत होते हैं। ये यौगिक प्राथमिक श्रेणी के हैं। वेद की भाषा में इनके समग्र रूप को बृहतीः आपः अर्थात् आपः का विस्तृत स्वरूप कहते हैं। सृष्टि रचना क्रम में मूल तत्त्वों के संयोग से उत्पन्न हुए ये सर्वप्रथम यौगिक है। यह अवस्था आपः का परवर्ती बाह्य या उत्तर भाग है। मन्त्रों में इस भाग को दिवं सदनं, नाभि चक्र आदि कहा है। उपनिषद् एवं दर्शन में इस अवस्था को महत्तत्त्व की संज्ञा से प्रतिष्ठित किया है, महत् का अर्थ भी बृहद् है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह प्लाज्मा अवस्था है। इस अवस्था में विज्ञानप्रोक्त अनेक तरल क्वार्क सूप, प्लाज्मा आदि होते हैं। वैदिक वाङ्मय में भी इस अवस्था को तरल कहा गया है[1]।

4. कक्षा 3 में पूर्वोक्त द्रव्य यथासमय अपां पात् नामक चतुर्थ अवस्था में परिणत हो जाता है यह विज्ञान की नाभिकीय अवस्था है।

5. कक्षा 4 में नाभिक पदार्थों से परमाणुओं की रचना होती है। ऋग्वेद ने इस अवस्था को सप्त अर्धगर्भाः की संज्ञा प्रदान कर (हाफ कुक्ड प्रोडक्ट) इस दशा वाले द्रव्य को सात वर्गों में विभाजित किया है। यह चतुर्थ अवस्था है। उपनिषद् एवं दर्शन ने इस स्थिति को तन्मात्रा कहा है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसे परमाणु अवस्था कहते हैं जो कि ट्रान्जीटरी अवस्था मानी जाती है। अर्धगर्भः एवं ट्रान्जीटरी शब्दों में निहित भाव लगभग एक ही है। यह भी ज्ञातव्य है कि रसायन शास्त्री मेन्डलीफ के प्रसिद्ध पीरियाडिक वर्गीकरण में परमाणुओं को सात अवस्थाओं में विभाजित किया गया है।

---

1. तत् प्रथमम् पिपयुषी पीयूषं अभवत्। ऋ. 2/13/1 क्र. 63
आथर्वणीभिः च आङ्गिरसोभिः मातृनामभिः शान्त्युदकम् चकार। (गोपथ ब्रा.)
मौलिक मातृशक्ति के अथर्वणीय अंगिरस शान्ति के तरल बनाये। देखिए पृ. 79

6. बाह्य चक्र सात अवयवों का संघात रूप दृश्य जगत् है। इस कक्ष में स्थिर परिणाम बनते हैं। सृष्टि की अवधि को वैदिक भाषा में संवत्सर कहते हैं। जैसे ही मूल तत्त्व कक्षा 1 से कक्षा 2 में बहता है यह घटना सृष्ट्युत्पत्ति का आरंभ कर देती है। यहाँ से वैदिक उषाकाल आरंभ होता है। पुनः महासूर्य (सुपरनोभा) की उत्पत्ति के अनन्तर ब्रह्म दिन। मूल तत्त्व कक्ष 1 से कक्ष 5 तक जाकर जगत् के रूप में स्थित होता है। यह ब्रह्म दिन की अवधि है। अनन्तर प्रलयकाल आरंभ होता है तथा पदार्थ की गति की दिशा पलट जाती है। अब द्रव्य कक्ष 5 से कक्ष 1 की ओर जाता है। कक्ष 1 में प्रवेश करते ही मूलभूत रूप में हो जाता है। यह पूर्ण लय की स्थिति है। यह क्रम एक अनन्त चक्र है। इस प्रकार वेद के अनुसार पदार्थ की पाँच अवस्थाएँ हैं – 1. **आपः** या माया, 2. बृहतीः **आपः** या महत्तत्त्व, 3. **अपां नपात्** या नाभिकीय (न्यूक्लेयर), 4. **अर्धगर्भः**, तन्मात्रा या परमाणु अवस्था, 5. **जगत्**।

इस प्रकार पदार्थ किसी भी समय पाँच में से किसी एक अवस्था में रहता है। वेद के अनुसार पदार्थ (मेटर) संरक्षण का सिद्धांत केवल एक स्वयंसिद्ध प्रतिज्ञा (स्टेटमेन्ट) है। यह स्वयंसिद्ध क्यों है? इसका हेतु वेद ने दर्शाया है कि पदार्थ के नष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। किसी भी समय पदार्थ पाँच में से किसी एक अवस्था में होना ही चाहिए। इस प्रकार केवल अवस्था एवं तदनुसार केवल तद्रूप ही नाशवान् है मूल तत्त्व की आयु अनन्त है। जब वह कक्ष 1 से कक्ष 5 तक जाता है तब यह उसका दिन काल (ब्रह्म दिन) है, जब वह वापस कक्ष 5 से कक्ष 1 की ओर जाता है तब यह परावर्तन काल उसकी रात्रि (ब्रह्म रात्रि) है। सृष्टिकाल में मूल सत्ता अदिति का विकास प्रथम अवस्था से दृश्य जगत् रूपी पाँचवी अवस्था तक होता है। अनन्तर दृश्य जगत् के रूप में अवस्थान्तरित पदार्थ विपरीत क्रम से प्रलयावस्था की ओर प्रयाण करता है तथा अन्त में मूल अव्यक्त अवस्था अदिति में लय को प्राप्त होता है। प्रकृति की पाँच अवस्थाएँ प्रकृति की पाँच कलाएँ हैं। ब्रह्म दिन (सृष्टिकाल) में मूल अवस्था से पाँच कलाओं में विकसित होता हुआ दृश्य जगत् रूप में हो जाता है। भौतिक सत्तात्मक पदार्थ विकास काल में कला (अवस्था) एक से पाँच तथा संकुचन काल में कला पाँच से एक में अवस्थान्तरित होता रहता है। इस प्रकार भौतिक सत्तात्मक पदार्थ अनादि अनन्त काल चक्र में परिभ्रमण कर रहा है। पदार्थ की गति अनवरत है, निरंतर है किसी भी समय भौतिक पदार्थ पाँच अवस्थओं में से किसी एक अवस्था में होना ही चाहिए। इस प्रकार पदार्थ की सत्ता की निरन्तरता बनी

रहती है। इस दर्शन से प्रकृति मूल में अविनाशी है। ऋग्वेद के अनुसार विज्ञान का ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत एक स्वयं- सिद्ध प्रतिज्ञा (Axiom) है।

विज्ञान के अनुसार (थर्मोडायन्मिक्स का दूसरा नियम) पदार्थ जब ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है तो वह द्रव्य सत्ता में नहीं आ सकता; इसे एन्ट्रापी कहते हैं। उदाहरण के लिए 1 टन कोयला जल जाने के बाद ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है उसे पुन: द्रव्य में परिवर्तित नहीं कर सकते। इस प्रकार जगत् शनैः-शनैः ऊर्जा मृत्यु की ओर जा रही है। जब ऊर्जा की मात्रा एक निश्चित सीमा को पार कर जाती है तो प्रलयावस्था आरंभ हो जाती है। सृष्टिकाल में द्रव्य सत्ता बढ़ती है। ऊर्जा सत्ता कम होती जाती है, प्रलयकाल आरंभ होते ही यह संतुलन पलट जाता है, ऊर्जा की मात्रा अपेक्षाकृत बढ़ने लगती है।

दिन रात की उपमा के सदृश सृष्टिकाल (ब्रह्म दिन) प्रलयकाल (ब्रह्म रात्रि) में दो संधिकाल हैं। सृष्टि सृजन का आरंभ उषा का प्रकट होना कहा गया है। यह प्रथम संधिकाल है। सृष्टि की लय का आरंभ प्रलय रात्रि का आरंभ है। यह द्वितीय संधिकाल है। यह (संध्या के तुल्य) दूसरा संधिकाल है। इस प्रकार पदार्थ सत्ता इन दो स्वाभाविक संधिकाल के मध्य आवागमन करती है, इन दो चरम गन्तव्य बिन्दुओं के मध्य आवर्तन - प्रत्यावर्तन करती है (fluctuates between two extremes) यह सत्य ऋचा 1/164/9 में निहित है (क्र. 96)

युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद् वत्सो अनुगामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु।।

भाषार्थ - माता-माता अदिति - मूल तत्त्व **धुरि दक्षिणायाः** अक्ष के चरम (एक्सट्रीम) दक्षिण भाग में **युक्ता आसीत्** जड़ी हुई है। **गर्भः अन्तः** उसके **गर्भः** के अन्तस् में एक भाग अतिष्ठत् ठहरता है। (**गाम् अनु वत्सः अमीमेत्**, धातु मा = रंभाना का लिट् प्रतिरूपक पृ. 537) गाय की नकल कर जैसे बछड़ा रंभाता है **विश्वरूप्यं अपश्यत्** उसी प्रकार **वृजनीषु** बार -बार गमन करने वाला मूल तत्त्व का भाग मूल से निकलकर विश्व के रूप में बार-बार विकास करता हुआ देखा जाता है, **त्रिषु योजनेषु** जन्म, नाम-रूप तथा लय इन तीन की योजना में बंधा हुआ उत्तरी धुरी में।

ऋचा में यह कहा गया है कि मूल प्रकृति का एक भाग ही पूर्ण रूप से जगत् रूप में विकसित होता है शेष अधिकांश भाग कास्मिक विकिरण व कास्मिक मेटर के रूप में रहता है। प्रकृति का, समग्र मूल तत्त्व का एक अंश ही विकसित हो

अन्तिम द्रव्य सत्ता- ठोस, द्रव, गैस में परिणत होता है। ऋचा में व्यक्त यह मत आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के अनुरूप है; वह यह कि प्रकृति का अंशमात्र ही पूर्ण रूप में अर्थात् अणु रूप (matter in molecular state comprising of the elements of which about 117 are known) में होता है। ऋचा में दो छोरों की कल्पना है दक्षिणी छोर में मूल सत्ता अवस्थित है उत्तरी छोर में जगत् हैं। विकास करने वाला अंश दक्षिणी छोर से उत्तरी छोर तक तथा उत्तरी छोर से दक्षिणी छोर तक आवागमन करता है। सृष्टि और प्रलय दो स्वाभाविक सीमाएँ हैं। इनके मध्य गमन करने वाले भाग को वृजनीषु कहा गया है।

अध्याय 9

मूल तत्त्व का स्वरूप-निर्धारण

गत अध्याय में यह बताया गया है कि भौतिक सत्तात्मक पदार्थ अपनी मूल अवस्था में तीन भेद वाला है तथा इस मूल तत्त्व का मूल स्थान नाभि चक्र है। ये तीन वर्ग अखंड, अनादि एवं शाश्वत है तथा इनके समग्र रूप को अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। अदिति को यत्र-तत्र माता और देवी पदों से विभूषित किया गया है जिस प्रयोग में यह भाव निहित है कि अदिति अन्ततम शक्ति है, ब्रह्म शक्ति है। इस अध्याय में यह रहस्योद्घाटन किया जाना है कि मूल तत्त्व के तीन भेद क्या हैं, वेद की इस विषय में क्या परिकल्पना है ? ऋग्वेद में मित्र, वरुण, अर्यमन् पद बार-बार आये हैं। यहाँ तक कि ये सूक्तों के देवता (विषय) भी हैं। इनका वास्तविक स्वरूप क्या है यह अभी तक अज्ञात था। इस अध्याय में ऋग्वेद की आंतरिक साक्षी के आधार पर मित्र, वरुण, अर्यमन् के प्रतीकात्मक स्वरूप को प्रकाश में लाया गया है। ये मूल तत्त्व के तीन भेद हैं। इस प्रतीकात्मक अर्थ के अतिरिक्त भी मित्र, वरुण, अर्यमन् का किसी अन्य अर्थ में प्रयोग हुआ होगा, किन्तु इस विषय पर यहाँ कोई चर्चा संभव नहीं है।

1. मूल तत्त्व तीन भेद वाला है

यह बात यहाँ ठीक से समझ लेना आवश्यक है कि अदिति तीन मूल तत्वों का यौगिक नहीं है वरन् तीन विभिन्न प्रकार के मूल तत्त्व के वर्गों का संघात (यूनियन) है। इनमें प्रत्येक वर्ग के तत्त्व अदिति हैं, अन्ततम सत्ता (ultimate existence) हैं।

वेद में अदिति शब्द मूल तत्त्व के लिए ही अधिकतर प्रयुक्त हुआ है अर्थात् अदिति शब्द मूल तत्त्व का प्रतीक है, किन्तु कहीं-कहीं यह अखंड अर्थ में प्रवाह से शाश्वत सत्ता जैसे माता, पिता, पृथ्वी, आकाश, लोक आदि के प्रवाह से सनातन स्वरूप को दर्शाने के लिए भी हुआ है, जैसे ऋ. 1/89/10 में देखा जाता है।

मूल तत्त्व तीन भेद वाला है यह बात अनेक वेद मन्त्रों में व्यक्त की गयी है।

समस्त बहुरंगी सृष्टि का निर्माण परमात्मा ने तीन प्रकार के मौलिक तत्त्वों से उन तत्त्वों के गुण स्वभाव के अनुसार किया है, यह तथ्य ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 22 के 18 वें मन्त्र में निहित है - (क्र.97)

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्।।

भाष्य हेतु क्र० 94 द्रष्टव्य।

क्रम् धातु का प्रयोग करके वेद ने यह दर्शाया है कि मूल प्रकृति स्वयंभू है। ईश्वर ने प्रकृति को बनाया नहीं वरन् त्रिवर्गी मूल तत्त्वों को जगत् रूप में क्रमबद्ध किया है।

प्रकृति स्वयंभू है, अतः प्रकृति के गुण भी स्वयंभू है, नित्य हैं, अपरिवर्तनशील हैं। वेद की सांकेतिक भाषा में इसे ऋत कहते हैं। ईश्वर ऋतानुसार मौलिक तत्त्व के गुणों के अनुरूप ही रचना कर सकता है। प्रकृति के स्वगुणों की अवहेलना उसकी स्वयंभू सत्ता में बाधक है। विष्णु ने तीन पगों में ब्रह्माण्ड को नापने का विक्रम किया ऐसा भाष्य पौराणिक कथा पर आधारित है; किन्तु ऋग्वेद की आंतरिक भावना के प्रतिकूल है। प्रथम तो धर्माणि धारयन् पद को समझाना कठिन है, द्वितीय यह कि तीन ही पग क्यों लिये? तीन में क्या विशेष बात है? क्या एक पग में नहीं नाप सकता ? वेद का ईश्वर सर्वव्यापी है। सृष्टि को पगों में नापने का प्रश्न एक देशीय के लिए उठता है सर्वदेशीय के लिए कदापि नहीं। तीन पदों से क्या तात्पर्य है इस तथ्य पर स्वयं वेद ने स्थल-स्थल पर प्रकाश डाला है।ऋ. 1/102/8 वें मंत्र पर विचार किया जाता है, यथा -

त्रिविष्ट धातु प्रतिमानमोजसः

ओजसः ओजस्वी परमात्मा त्रि तीन विष्ट व्यापक धातु मूल तत्त्वों, आधार भूत तत्त्वों (**प्रतिमानं**, प्रति-मानं, प्रति = की दिशा में, मुकाबले में, तुलना में, कोश पृ. 647, मा =मापना का शानजन्त मान से वै. व्या. पृष्ठ 240) की तुलना में ब्रह्माण्ड को नापता है अर्थात् रचना की इकाई रूप तीन शाश्वत मूल तत्त्वों से विश्व को क्रमबद्ध किया है, रचा है। अथवा (**प्रतिमानं** = प्रतिमूर्ति, समरूपता, कोश) तीन मूल तत्त्वों के अनुरूप जगत् को रचना है। रचना की इकाई तीन है; अतः तीन मूल तत्त्वों के गुण-स्वभाव के अनुरूप, तीन की प्रतिमूर्ति के रूप में जगत् को रचा है। यह है महत्त्व 3 की संख्या का।ऋ. मडल 2 सूक्त 35 के 5 वें मन्त्र में एक रूपक

के माध्यम से यह बात कही गयी है कि भौतिक जगत् की आधारभूत तीन मौलिक शक्तियाँ हैं, यथा - (क्रमांक 98)

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्।

भाषार्थ - अस्मै अव्यथ्याय देवाय, (अव्यथ् = निश्चल, ध्रुव) उस नित्य, अचल देव के लिए तिस्रः नारीः देवीः तीन श्रेष्ठ दिव्य शक्तियाँ अन्नं परि-पूरक शक्ति (फीडिंग इनर्जी) दिधिषन्ति धारण करती हैं।

मन्त्र में मूल तत्त्व के 3 वर्गों को तीन देवी के रूप में व्यक्त किया गया है, परमात्मदेव को अचल कहकर यह भाव व्यक्त किया गया है कि अचल देव की शक्तियाँ भी नित्य है। ऋग्वेद मंडल 3 सूक्त 56/3 में एक दूसरी उपमा के रूप में मौलिक तत्त्वों के तीन प्रकार के वर्गों को तीन शाश्वत सेना कहा गया है, यथा - (क्र. 99)

त्र्यनीकः पत्यते महिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम्।

भाषार्थ - वृषभः सुख वर्षाने वाला महिनावान् महिमावान् रेतोधाः सृष्टि के बीज रूप तत्त्वों को धारण करने वाला, वह परमात्मा, त्रि-शश्वतीनां तीन प्रकार की सनातन, काल से अनादि-अनन्त अनीकः सेनाओं का (पत्यते, केवल वेद में पत्य = स्वामी होना, इस पद का क्रिया की तरह प्रयोग देखा जाता है वै. व्या. पृ. 405) का स्वामित्व करता है।

मंत्र में यह बताया गया है कि भौतिक जगत् का बीजरूप मूल तत्त्व तीन भेद वाला है। प्रत्येक वर्ग के असंख्य सदस्य (कण, मेम्बर) हैं। इनकी अनादि स्वयंभू सत्ता है। भौतिक जगत् की उत्पत्ति का आदि द्राव्यिक कारण (initial material cause) यही त्रिवर्गी मूल तत्त्व है।

2. विष्णु के तीन पदानि (पदों) का रहस्य

ऋग्वेद मंडल 1 के सूक्त 154 के कुछ मंत्रों में मूल तत्त्व संबंधी चर्चा है। सूक्त का ऋषि दीर्घतमा है। सूक्त का प्रथम मंत्र है - (क्र. 100)

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायादुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणास्त्रेधोरुगायः।।

भाष्य - विष्णु परमात्मा के आनन्दवर्धक पराक्रम का निश्चय ही वर्णन

करूँगा जिसने **पार्थिवानि** (बहु व.), **रजांसि** (बहु व.) पृथ्वी की तरह प्राणीवास को उपयुक्त लोकों को व अन्य लोकों को विशिष्ट नाप से बनाया तथा **यः उरुगायः** जो बहु प्रशंसित, त्रेधा तीन प्रकार से धारण किये गये मूल तत्त्वों से, अथवा (ऋग्वेद 1/164/9 मंत्र से - **विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु**) से तीन प्रकार की योजना से **वि - चक्रमाणाः** विविध प्रकार क्रमबद्ध किये हुए जगत् के उत्तरं आगामी स्वरूप, अर्थात् लय के पश्चात् सधस्थं आश्रय स्थान मूल तत्त्वों से परिपूर्ण आकाश को **अस्कभायात्** थाम कर रखा है।

समस्त जगत् अनेक नियमों में क्रमबद्ध (सिस्टेमेटाइज्ड) है। ज्योतिर्पिण्डों की दूरियाँ विशेष नाप से रखी गयी हैं। उत्पत्ति, स्थिति, लय इन तीन योजनाओं के अन्तर्गत भौतिक सत्तात्मक द्रव्य गतिमान् है। प्रलयकाल में मूल तत्त्व अपने मूल स्वरूप में स्थित हुआ ईश्वरीय सकाश से आकाश में ठहरता है। अनन्तर सृजित जगत् के रूप में विकसित होता हुआ सृष्टि-लय के अबाध काल क्रम में परिभ्रमण करता है। सूक्त का 3 रा मंत्र है - (क्र. 101)

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णौ।
य इदं दीर्घम् प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः।।

भाषार्थ - **गिरिक्षिते** पर्वतवासी **उरुगायाय** बहुतों से प्रशंसित **वृष्णौ** सुख वर्षाने वाले **विष्णवे शूषम्** विष्णु के लिए प्रेरक **मन्म** विचार (प्र.एतु. इ का लोट् लकार) प्रवृत्त हो, **यः** जिस **एकः** अद्वैत ने (इत् निपात पृ. 209) केवल **त्रिभिः** तीन (**पदेभिः** पद् = चरण का रूप नहीं है पद का बहुवचन तृतीय पदभिः है वै. व्या.) मूलभूत तत्त्वों से **इदं दीर्घम्** इस अत्यंत विस्तृत **प्र-यतं** प्रकर्षता से नियंत्रित, मर्यादित **सधस्थं** आश्रय स्थान (लोकों से परिपूर्ण आकाश) को **विममे** विशिष्ट माप से विभक्त किया है।

समस्त जगत् तीन मूल इकाईयों द्वारा रचा गया है। जगत् रचना में तीन मूल तत्त्वों की कितनी-कितनी इकाईयाँ नियोजित हैं यही तीन पदों द्वारा विश्व को नापना है।

आकाश (दिक् = स्पेश) ही द्रव्यों के ठहरने का स्थान है। ज्योतिर्पिण्डों से परिपूर्ण समष्टि लोक जगत् प्रकर्षता से नियंत्रित है। आद्या शक्ति अदिति से स्वाभविक विकास के क्रम में उद्भूत हुआ यह जगत् ईश्वरीय व्यवस्था के अन्तर्गत अनेकानेक स्वाभाविक नियमों में बद्ध है। आदि सृष्टिकाल में अत्यंत सूक्ष्म प्रारंभिक रूप में प्रकृति की महान् मंडलाकर सत्ता (सुपर नोभा) उद्भूत होती है। प्रकृति की इस

स्थिति का आधिपत्य व्यक्त करने के निमित्त से ईश्वर के लिए पर्वतवासी, गिरिक्षिते आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। सूक्त का आगामी मंत्र है – (क्र. 102)

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा।।

भाष्य – **यस्य** जिसके (**मधुना**, विशे. तृ.विभ.) मधुरता, अमृत के द्वारा **पूर्णा** पूर्ण हुए **त्री पदानि** तीन तत्त्व (**अक्षीयमाणा**, तृतीय विभ. क्रियाभिव्याप्त काल पृष्ठ 401) सनातन काल से (**स्वधया**, तृ. विभ. मद् के योग में पृ. 404 ग) स्वधारणा शक्ति में ही **मदन्ति** मस्त रहते हैं, **यः** जो **उ** केवल **एकः** अकेला ही **त्रिधातुः** तीन मौलिक तत्त्वों से **पृथिवीम् द्याम्** पृथ्वी द्यु-लोक **उत विश्वा भुवनानि** तथा समस्त लोकों को **दाधार** धारण करता है, (पूर्व मन्त्र की अनुवृत्ति से प्र....... .... मन्म) उस विष्णु की प्रेरक शक्ति के लिए विचार प्रवृत्त हो।

मन्त्रानुसार तीन पद स्वयं में पूर्ण, स्वधारणा शक्ति से युक्त एवं अक्षय है। क्र. 97 तथा क्र. 101 में आये पदा तथा पदेभिः शब्दों से विष्णु द्वारा तीन पगों में ब्रह्माण्ड नापने की घटना दर्शाने वाले अर्थ वेद की आंतरिक भावना के अनुरूप नहीं हैं। भूतकाल में ईश्वर द्वारा ब्रह्मांड को नापने हेतु उठाये गये कदम व्यतीत हुआ क्षय स्वभावी कर्म है जो ईश्वर पर पूर्ण रूप से आश्रित है। किन्तु मंत्रोक्त तीन पद स्वतंत्र निरपेक्ष सत्तात्मक हैं, अक्षीयमाण हैं, '**स्वधया मदन्ति**' कहे गये हैं। मंत्र के द्वितीय चरण में उन्हीं तीन पदों को "**त्रि धातु**" कहा गया है (धातु शब्द का प्रयोग मूलाधार अवयव, मूल तत्त्व, मूल भाग, मूल संघटक के लिए अति प्राचीन हैं, कोश पृ. 494) तथा यह भी कहा गया है कि जगत् का एक अद्वितीय अधिपति त्रिधातु से निर्मित इस समस्त ब्रह्मांड को धारण कर रहा है। अतः तीन पद तीन मूल तत्त्व ही हैं। इसमें किसी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं हो सकता।

3. मूल तत्त्व के तीन भेदों का निर्णय

अब इस पर विचार करना है कि तीन तत्त्व क्या हैं? उनका स्वरूप क्या है? ऋग्वेद मंडल 7, सूक्त 33 का 7वाँ मंत्र अपने अन्तस् में महत्त्वपूर्ण सूचना समाहित है। मंत्र का पूर्वार्द्ध भाग है – (क्र. 103)

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्त्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः।

भाषार्थ – **भुवनेषु** लोकों में **त्रयः रेतः** तीन बीजरूप, मौलिक आदि कारण

कृण्वन्ति होते हैं। ज्योतिः अग्राः ज्योति जिनके आगे रहती है आर्याः ऐसे श्रेष्ठ तिस्त्रः तीन प्रजाः पूर्वोक्त से जन्मे हैं।

भौतिक जगत् के मूल में तीन अन्ततम मौलिक तत्त्व हैं, यह बात अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कही गयी है। अभी विचार केवल इन्हीं तीन की जानकारी तक ही केन्द्रित रखना होगा।

ऋग्वेद मंडल 8, सूक्त 47 के 9 वें मंत्र में मूल शक्ति अदिति के अंशभूत मूल तत्त्व के तीन वर्गों का सुस्पष्ट निरूपण हुआ है ऋचा है – (क्र. 104)

अदितिर्न उरूष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु।
माता मित्रस्य रेवातोऽर्यम्णो वरुणस्य च ....।

अदिति हमारी रक्षा करें, अदिति हमें शान्ति करें, ऐश्वर्य संपन्न मित्र अर्यमन् तथा वरुण की माता।

अदिति मूल त्रिवर्गी शक्ति का संघात है, समष्टि रूप है। अतः उस समग्र रूप को मातृशक्ति अदिति कहा गया है। उस समग्र रूप के तीन व्यक्तिगत वर्ग में से प्रत्येक को रूपक में पुत्र कहा गया है। इस प्रकार यह ऋग्वेद का विज्ञान है जो रूपक में व्यक्त हुआ है।

ऋग्वेद 7/60/5 में अदिति के तीन पुत्रों की बात आयी है, ये तीन मूल तत्त्व ही हैं, यथा – (क्र. 105)

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रा अर्यमा वरुणो हि सन्ति,
इमे ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः।

भाषार्थ – इमे भूरेः ये सभी **मित्रः, अर्यमा, वरुणः** मित्र, अर्यमन् वरुण **अनृतस्य** असत्य के मार्ग से **चेतारः हि सन्ति** सावधान करने वाले हैं अर्थात् ये तीनों ऋत = सत्य प्राकृतिक नियमों के अनुसार वर्तन वाले हैं, ये चेतना दे रहे हैं कि सत्य नियमानुसार वर्तो।

इमे ये **अदितेः पुत्राः** अदिति के पुत्र, अदिति के अङ्गरूप **अदब्धाः** नित्य, सदा एक से रहने वाले **शग्मासः** शक्तिशाली **ऋतस्य दुरोणे** सत्य के मूल स्थान, प्रकृति के मूल स्थान में **वावृधुः** वृद्धि को प्राप्त होते हैं। मंत्र में यह बताया गया है कि मित्र, वरुण अर्यमन् अदिति के अंश हैं। अदिति के मूल स्थान नाभि चक्र में (क्र. 90 में देखें) इनका निवास है जहाँ से बढ़ना आरंभ करते हैं। ये न दबने वाले अपरिवर्तनशील एवं नित्य हैं।

4. प्रलय-सृष्टि को जोड़ने वाला शक्ति का तारतम्य (Dynamic Continuum)

ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 61, 17 वें मंत्र में प्रलय सृष्टि के संधिकाल की घटनाओं का सुन्दर चित्रण है। वहाँ यह बताया गया है कि त्रिकाल गतिशील शक्ति (the eternal dynamic energy continuum) ने किस प्रकार अखंड आद्या शक्ति अदिति के शाश्वत अंगभूत मित्रः वरुणः अर्यमन् को आदि सृष्टिकाल में उत्तेजित किया - (क्र. 106)

अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु।।

भाषार्थ - अयं स्तुतः राजा यह स्तुत्य राजा (वेधा, वेधा = विधाता, कोश) जगत् स्रष्टा वन्दि वन्दनीय है। **विप्रः** बुद्धिमान् **स्वसेतुः** प्रलयकाल और सृष्टिकाल के मध्य की खाई को (**अपः**) आपः के स्वनिर्मित पुल से तरति पार करता है।

सः वह (**कक्षीवन्तं**, कक्षः = अन्तःपुर, कक्षा = निजी कमरा, कोश) नित्य शक्ति के स्वधाम में आवास वाले मूल तत्त्व को (**रेजयत्** रेज् = काँपना) कँपाता है। **सः** वह **चक्रम्** सृष्टि-प्रलय के अबाध गति चक्र रूप **अग्निं** शक्ति को इनर्जी रूप **नेमिं** धुरे को (**रघुद्रु**, भ्वादि द्रु = दौड़ना) शीघ्रगामी **अर्वतः** न अश्व की तरह चलाता है।

ऋचा में कहा गया है कि ईश्वर ने सातत्य गतिशील अग्नि (dynamic energy continuum) रूप स्वनिर्मित सेतु के द्वारा सृष्टि के मध्य की खाई को पाटा। इस प्रकार आदि सृष्टिकाल में गति के तारतम्य (dynamic continuum) को कायम रखा तथा इसे गतिशील शक्ति के द्वारा मूल शक्ति के दूसरे स्थिर भाग (static part) को उत्तेजित किया। शक्ति के दो भाग हैं एक सदैव अर्थात् त्रिकाल गतिशील रहता है यह गतिशील भाग प्रलयकाल में भी गतिशील रहता है तथा स्थिर भाग को आदि सृष्टि में गतिशील करता है। यदि प्रलयकाल में संपूर्ण मूल तत्त्व स्थिर हो जाय तो आगामी सृष्टि हेतु मूल तत्त्व में गति का स्रोत न रहेगा।

अध्याय 2 में शक्ति के इन दो भागों को आहवनीय अग्निः और मथित अग्निः कहा है। आहवनीय अग्निः सुरक्षित रखी हुई शक्ति (energy) है तथा मथित अग्नि घर्षण से उत्पन्न ऊर्जा है। आगामी ऋचा है - (क्र. 107)

स द्विबन्धुर्वैरणो यष्टा सवर्धुम् धेनुमस्वं दुहध्यै।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः।।

भाषार्थ - सः वह (**यष्टा,** यज् से यष्टिन्) सृष्टियज्ञकर्ता **द्विबन्धुः** रात्रि-उषा-प्रलय-सृष्टि दोनों को जोड़ने वाले **वैतरणाः** विशेष रूप से खाई को पार करने वाला (अ-स्वं) अपनी स्वसत्ता से पृथक् **सर्वधुम्** सब कामनाओं को दुहनेवाली **धेनुम्** मूल प्रकृति को *दुहध्यै* दुहने में समर्थ है।

यत् जो वह **मित्र वरुण अर्यमणं** मित्र वरुण अर्यमा को (**सवः** = **शवः** = बल निघ. 210) बल सहित (**उक्थैः प्रशंसित ज्येष्ठेभिः वरूथैः**, वरूथः गृहताम् निघ. 3/4) आवासों, चरणों से **वृञ्जे**) ले जाता है।

प्रकृति में जगत् उत्पादक सामर्थ्य है; यही सर्वकामधुक् कहने का तात्पर्य है। ईश्वर मित्र वरुण अर्यमन् मूल कणों को अनेक चरणों से निष्क्रमण कराता हुआ सृष्टि तक ले जाता है।

5. मित्र, वरुण, अर्यमन् मूल सत्ता हैं

ऋग्वेद मंडल 1, सूक्त 136 के प्रथम मंत्र में इस विषय पर प्रकाश डाला जाता है - (क्र. 108)

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्याँ बृहन्नमो ....।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञे यज्ञ उपस्तुता।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाघृषे देवत्वं नू चिदाधृषे।।

(नि-चिराभ्याँ, नि = स्थायित्व) नित्य सत्ता वाले **मृळ्यद्भ्याँ** सुख देने वाले **ज्येष्ठं** सर्वश्रेष्ठ, मूल संघटक को **बृहत् नमः** उत्तम अभिवादन, सत्कारयुक्त वचन कहें।

ता सम्राजा घृतासुती यज्ञे यज्ञे उपस्तुता वे दोनों सर्वोच्च शासक, मूल सत्ता वाले (**आग्नेयं वै घृतम्** शत. 7/4/1/41) अग्नि वर्ण, यज्ञों के अवसर पर स्तुति योग्य हैं।

अथ तथा एनोः इन दोनों के **क्षत्रं** अधिराज्य, सामर्थ्य को (**आधृषे, धृष् =** साहस करना का तुम. कृ.) चुनौती देने के लिए, क्षति पहुँचाने के लिए **कुतः चन न** कोई भी समर्थ नहीं है।

एनोः देवत्वं नू चित् आधृषे इन दोनों की दिव्य शक्ति को निश्चय ही कोई भी क्षति पहुँचाने की धृष्टता नहीं कर सकता।

ऋचा में कहा गया है कि नित्य, शाश्वत सत्ता वाले तेजस् रूप मित्र - वरुण सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं, मूल तत्त्व हैं, इनकी शक्ति अप्रतिहत है, अपराजेय है। ऋग्वेद 5/68/2 में मित्र-वरुण के विषय में कहा गया है - (क्र. 109)

सम्राजा या घृतयोनि मित्रश्चोभा वरुणश्च।
देवा देवेषु प्रशस्ता।।

'**या उभा मित्रः वरुणः** जो दोनों मित्र-वरुण घृतयोनी अग्निमय, तेजोमय मूल सत्ता **सम्राजा** भौतिक जगत् सत्ता के सम्राट् हैं, मूलाधार हैं, वे दोनों देव देवों में प्रशंसित हुए हैं।

इसी के आगामी ऋचा में कहा गया है - (क्र.110)

महि वां क्षत्रं देवेषु।

आप दोनों का देवेषु देवों में महि क्षत्रं अधिराज्य, सामर्थ्य महान् है, सबसे अधिक है अर्थात् भौतिक शक्तियों में मित्र-वरुण सबसे अधिक सामर्थ्यवान् हैं। ऋचा 5/67/1 में मित्र, वरुण, अर्यमन् को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है - (क्र. 111)

बलित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत्।
वरुण मित्रार्यमन् वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे।।

(**बड् इत्था**, बट् = सत्य, निघ. 3/10) यह सत्य है **आदित्या** मूल मातृ शक्ति अदिति के अभिन्न अंग **देव** हे देव मित्र, वरुण तुम **बृहत्** विशाल (**निष्कृतम्** = निस्-कृतम्, निस् = निश्चित, पूर्णता, उपभोग, पार करना, पृ. 545 कोश) पूर्ण रूप से निष्पन्न, कार्यान्वित हुए जगत् की **यजतं** संगतिकरण करते हो।

मित्र, वरुण, अर्यमन् आप शक्ति रूप (**वर्षिष्ठं** = अत्यन्त विस्तृत, अत्यंत बलवान्, कोश) **विशालतम क्षत्रम्** अधिराज्य महान् शक्ति **आशाथे** प्राप्त करते हैं।

मित्र, वरुण, अर्यमन् की शक्ति महान् है, इनका अधिराज्य विशालतम हैं। ऋग्वेद 1/136/3 रे मंत्र में समग्र मूल शक्ति की प्रतीक मातृशक्ति अदिति से इन तीन मूल शक्तियों के संबंध का निरूपण अत्यंत सुंदर शब्दों में हुआ है। ऋचा है - (क्र. 112)

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेतें दिवे दिवे जागृवांसा दिवे दिवे।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः।।

ज्योतिष्मतीम् अदितिं स्वर्वतीम् क्षितिम् तेज स्वरूपा अखंड आद्या मूल शक्ति के स्वतेजयुक्त आवास, धाम को **दिवे दिवे** नित्य **जागृवांसा** नियमों में सचेत, ध्रुव हुए **दिवे दिवे आ सचेते** नित्य परस्पर संयुक्त करते हैं। **आदित्या** अखंड मूल शक्ति के अभिन्न अंग **दानुनस्पती** दान देने में सर्वोच्च, जिनके दान से जगत् सत्ता में है ऐसे मित्र वरुण आप **ज्योतिष्मत्** तेजस्वी (क्षत्रम् क्षत्र = अधिराज्य, प्रभुता, सामर्थ्य, कोश) **अधिराज्य**, प्रभुता को (**आशाते**, अंश आत्म. लिट् ल. द्वि. व.) प्राप्त हैं।

मित्रः वरुणः तयोः यातयत् जनः मित्र वरुण दोनों उस तेज से मानवों को प्रेरणा दें। अर्यमन् उस तेज से मानवों को प्रेरणा दें।

ऋग्वेद 7/66/6 में मित्र, वरुण, अर्यमन् अपने क्षेत्र के महाराजा अर्थात् सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित ऐसा कहा गया है यथा - (क्र. 113)

उत् स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये।
महो राजान ईशते।।

भाषार्थ - **ये** मित्र, वरुण, अर्यमन्, **उत्** वहाँ **अदितिः** = अदितेः **स्वराजः** मूल-प्रकृति के स्वयं के स्थान के, राज्य के **अदब्धस्य व्रतस्य** अपरिवर्तनशील नित्य व्रतों के **महः** महान् राजा, सर्वोच्च सत्ता होकर **ईशते** शासन करते हैं।

मंत्र में यह बताया गया है कि मित्र, वरुण, अर्यमन् सर्वोच्च सत्तात्मक तत्त्व हैं। जिनके परे कुछ भी नहीं है। ये महाराजा हैं, आदि मूल तत्त्व हैं। ये अदिति के अखंड, अन्ततम आदि मूल संघात के अपरिवर्तनशील, स्वयंभू गुणों के धारक हैं। इनका संघात, संयुक्त रूप, समष्टि रूप अदिति नाम से जाना जाता है। ये आधारभूत भौतिक गुणों के, नियमों के अधिपति हैं।

मित्र, वरुण, अर्यमन् आदित्य हैं (क्र. 193)। ऋग्वेद मडल 7, सूक्त 82 के 2 रे मंत्र में इन्हें महावसू एवं स्वशक्ति से विभूषित होने के कारण स्वराट् कहा गया है अर्थात् ये अपने स्व क्षेत्र के राजा हैं, सर्वोच्च सत्ता हैं मूल शक्ति हैं। इस विषय पर ऐतरेय ब्राह्मण का मत उल्लेखनीय है।

ऐतरेय ब्राह्मण (1/5/4) में सूत्र है - (क्र. 114)

उत्तमा प्रतिष्ठा तद्देवं क्षत्त्रं सा श्रीस्तदाधिपत्यं तदब्रध्नस्य।
विष्टपं तत्प्रजापतेरायतनं तत्स्वाराज्यम्।। इति

जो सबसे ऊँचा स्थान है वह देवों का क्षत्र है, वह श्री है, वह आदित्य मंडल

के स्वामित्व को प्राप्त कराने वाला है, वह आदित्य का स्थानभूत स्वर्ग (मूल स्थान) है, वह मंडल प्रजापति निवास स्थान है, पारतन्त्र्य के अभाव में वही मण्डल स्वाराज्य है (सायण भाष्य अनुवाद)। आदित्य कौन है इस विषय पर सायण भाष्य में ऐ. ब्रा. 7/4/2 के सूत्र को उद्धृत करते हुए कहा गया है - (क्र. 115)

"आदित्य एषां भूतानामधिपतिः" इति श्रवणात्।

आदित्य भूतों, पदार्थ की अवस्थाओं के अधिपति हैं, मूल शक्ति हैं। ब्रध्न शब्द के विषय में भाष्य में उल्लिखित है -

ब्रध्न आदित्याः तस्य स्थानं त्रिविष्टपं विष्टप इति स्वर्गादित्ययोः साधारणनामत्वादिह स्वर्गार्थं परिगृहीतम् - इति गोविन्द स्वामी।

आदित्यों का स्थान स्वर्ग है, मूल प्रकृति का स्वस्थान है। आदित्य शब्द से सूर्य का मास अर्थ ग्रहण करना सर्वथा अनुचित है। यहाँ बात सर्वोच्च सत्ता की है, प्रजापति के स्थानभूत निवास की है, मूल शक्ति के स्वराज्य की है, जहाँ मूल श्री (आद्या शक्ति) का निवास है, एकच्छत्र आधिपत्य है! यह आदित्य मंडल, मित्र, वरुण, अर्यमन् के संघात का स्व-निवास स्थल है जिसके स्वामित्व को प्रजापति ईश्वर प्राप्त हैं, वह ईश्वर का स्वधाम है।

6. मित्र-वरुण-अर्यमन् प्राकृतिक नियमों के जनक हैं

ऋग्वेद 5/63/2 में मित्र-वरुण को सम्राट् पद पर आसीन किया है-(क्र. 116)

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा।

मित्रावरुणे अस्य भुवनस्य सम्राजौ हे मित्र-वरुण आप इस ब्रह्मांड के सम्राट् हैं, सर्वोच्च सत्तात्मक तत्त्व हैं, (**विदथे, विदथन्** = ज्ञान. निरु. 6/2) ज्ञानमय सृष्टियज्ञ में (**स्वर्दृशा**, स्वर्दृश् = अग्नि का विशेषण, कोश) आप अग्निवर्ण तेज स्वरूप हो **राजथः** सुशोभित होते हैं। (क्र. 117)

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणै विचर्षणी।

उग्र बलवान् **वृषभा** शक्ति वर्षक **सम्राजा** सर्वोच्च सत्ता **दिवः पृथिव्याः पती** आकाश पृथ्वी के पालक **विचर्षणी** विविध प्रकार के जगत् को देखने वाले होकर मित्र वरुण स्थित हैं।

ऋग्वेद 7/66/10 वें मंत्र में मित्र, वरुण, अर्यमन् को अनेकों सूर्यों की तरह तेजस्वी तथा समस्त प्राकृत नियमों की आधारशिला कहा गया है। ऋचा है-(क्र. 118)

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः।।

भाषार्थ - **बहवः सूरचक्षसः** अनेकों सूर्यों की तरह तेजस्वी **अग्निजिह्वा** तेज को, विद्युत् को धारण करने वाले **ऋतावृधः** सत्य प्राकृतिक नियमों को बढ़ाने वाले **ये त्रीणि** ये तीन मित्र, वरुण, अर्यमन् (**विद्थानि** = ज्ञान समूह निरु. अ. 6) ज्ञानमय (सृष्टि) कर्मों में **विश्वानि धीतिभिः** समस्त बुद्धिगम्य नियमों सहित **परिभू-ऊतिभिः** सर्वव्यापक रक्षणों के द्वारा **येमुः** नियमन् करते हैं।

मंत्र में 3 मूल तत्त्वों का वैयक्तीकरण कर उनमें सृजन की अवस्थाओं को धारण करने का आशय (मोटिव) प्रतिरोपित कर दिया गया है। पदार्थ की अवस्थाओं का विवरण पूर्व अध्याय में देखें।

मंत्र में मित्र, वरुण, अर्यमन् के लक्षणों का वर्णन है। सूर्य स्वकीय प्रकाशित नहीं है अर्थात् सूर्य मूल सत्ता नहीं है यौगिक ऊर्जाओं के (हाइड्रोजन हीलियम न्यूक्लियस) अवखंडन से प्रकाशित है, किन्तु मूल तत्त्व स्वकीय तेज से प्रकाशित हैं, स्वभूति ओजा हैं। ये अग्नि जिह्वा हैं अर्थात् ये तेज, विद्युत् धारण करते हैं। ये सत्य प्राकृतिक नियमों को बढ़ाने वाले, समस्त प्राकृतिक नियमों को बढ़ाने वाले, समस्त प्राकृतिक नियमों की आधार शिला हैं। इन्हीं तीन स्वयंभू तत्त्वों के मौलिक शाश्वत गुणों के आधार पर प्राकृतिक नियमों का विकास हुआ है।

ऋग्वेद मंडल 1, सूक्त 164 के 2 रे मंत्र में इन्हें नाभि चक्र में अवस्थित बताया गया है तथा इन्हें समस्त जगत् का मूलाधार निरूपित किया गया है यथा - (क्र. 119)

त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वम् यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।

भाषार्थ - **त्रिनाभि** तीन बंधन वाले **अनर्वम्** अनर्वा - बाह्य अश्व शक्ति से अति परे, स्वतंत्र स्वयंभू सत्तात्मक **अजरं**, नित्य चक्र है, **यत्र** जिस पर **इमा विश्वा भुवना** ये समस्त लोक **अधि तस्थुः** पूर्ण रूप से स्थित है।

मित्र, वरुण, अर्यमन् समग्र प्राकृतिक नियमों के आधार स्तंभ हैं, यह बात अनेक वेद मंत्रों में व्यक्त की गयी है। ऋग्वेद 7/66/12 में प्राकृतिक नियमों के समग्र रूप की एक रथ के रूप में कल्पना की गयी है। इस रथ की आधारभूत धारक शक्तियाँ मित्र, वरुण, अर्यमन् है। मंत्र है - (क्र. 120)

यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः।

भाषार्थ - यत् जिस **ऋतस्य** स्वाभाविक प्रवाह रूप रथ अथवा नियमों के समग्र रूप **रथ्यः** रथ को **यूयं** आप मित्र, वरुण, अर्यमन् (**ओहते**, ऊह= वितर्कें का वर्तमान काल, बहुवचन) युक्ति संगत, तर्कयुक्त आधार प्रदान करते हैं।

वेद की ऐसी ही अद्भुत रूपक शैली है। मन्त्र का अर्थ है कि मित्र, वरुण, अर्यमन् प्राकृतिक नियमों की आधारशिला हैं। प्रकृति के समस्त नियम मित्र, वरुण, अर्यमन् के गुणों का विकासमात्र हैं। जैसे-जैसे मौलिक तत्त्वों से यौगिकों का विकास होता जाता है वैसे - वैसे मूल तत्त्वों से आयातित गुणों व लक्षणों का भी विकास व विस्तार होता जाता है।

ऋचा 1/23/5 में मित्र-वरुण को ज्योति का स्वामी व ऋत = प्राकृतिक प्रवाह का विकास करने वाला कहा गया है। ऋचा है - (क्र. 121)

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती।
ता मित्रावरुणा हुवे।

ऋतेन प्राकृत मूल गुण स्वभाव के प्रवाह द्वारा **यौ** जो दोनों **ऋतावृधौ** ऋत को, प्राकृतिक गुण स्वभाव के प्रवाह को बढ़ाने वाले **ऋतस्य** इस प्राकृत प्रवाह की **ज्योतिषः पती** ज्योति, मूल शक्ति, विद्युत् के स्वामी **ता** उन मित्र वरुण दोनों को मैं (हुवे, हू = बुलाना) स्मरण करता हूँ।

ऋचा में ऋत शब्द तीन बार आया है जो इस बात का द्योतक है कि सृष्टि का समस्त विकास प्रकृति के नित्य गुण स्वभाव के अनुरूप ही होता है। मित्र-वरुण को इस प्राकृतिक प्रवाह की मूल ज्योति के स्वामी, मूल ज्योति या विद्युतधारक कहा गया है।

ऋग्वेद 5/63/1 की ऋचा में मित्र-वरुणा को काल गति रूपी मार्ग एवं सृष्टि रचना लय के गति क्रम रूपी मार्ग पर नित्यता के रथ पर आरूढ़ हुआ कहा गया है। - (क्र. 122)

ऋतस्य गोपावधितिष्ठथो रथं सत्य धर्माणा परमे व्योमनि।

ऋतस्य गोपौ हे सत्य प्राकृतिक प्रवाह के रक्षक (**सत्य धर्माणा**, धर्मन् = विधि वै. व्या. पृ. 341) सत्य नियमों के धारणकर्ता मित्र-वरुण आप दोनों **परमे व्योमनि** ईश्वर के परम शाश्वत लोक में **रथं** गतिशील, अवस्थान्तरित होने वाले सृष्टि रथ को **अधितिष्ठथः** स्वाामित्व करते हुए, को अधिकृत करते हुए स्थित हैं।

परमव्योम ईश्वर का लोक है जो नित्य, शाश्वत तत्त्वों, सत्ताओं के आवास का

द्योतक है। मित्र-वरुण उस शाश्वत नित्य लोक के वासी हैं, मूल आद्या शक्ति के अंश हैं। इसी सूक्त की 7वीं ऋचा में उक्त विषय की पुनरुक्ति है – (क्र. 123)

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम्।।

विपश्चिता हे बुद्धिमान् मित्र-वरुण आप दोनों धर्मणा नियमों की धारक शक्ति द्वारा **असुरस्य मायया** व बल की गोपनीय, छद्म शक्ति द्वारा व्रता रक्षेथे प्राकृत (ईश्वरीय) संकल्प निश्चय की रक्षा करते हैं। आप दोनों **ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः** सत्य स्वाभाविक गुणधर्म द्वारा समस्त लोकों को विशिष्टता से (राज् = दीप्तौ) प्रकाशित कर रहे हैं। आप दोनों **सूर्यं चित्र्यं रथम्** सूर्य रूप विचित्र गतिशील लोक को दिवि आकाश में **आधत्थः** धारण करते हैं।

ईश्वरीय ज्ञान के आरोपण से मित्र – वरुण का वैयक्तीकरण हुआ है। समस्त लोकों को ऋत के अनुसार प्रकट करने वाले मूल शक्ति के अभिन्न अंश मित्र – वरुण समस्त गुप्त नियमों के धारक हैं।

ऋग्वेद 5/68/4 या मन्त्र है – (क्र. 124)

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते।
अद्रुहा देवौ वर्धेते।।

ऋतम् सत्य प्राकृतिक प्रवाह को ऋतेन सत्य प्राकृतिक गुण धर्म स्वभाव द्वारा **सपन्ता** एक ही मार्ग के अनुगामी हुए वे दोनों देव **इषिरं** इच्छानुकूल, योजनानुसार **दक्षम्** आद्या सामर्थ्य को **आशाते** प्राप्त करते हैं। **अद्रुहा** परस्पर द्रोहरहित देवौ वर्धेते दोनों देव बढ़ते हैं।

परस्पर सहयोग से दोनों देव आद्या सामर्थ्य प्रादुर्भूत करते हैं। मित्र-वरुण दो आद्या मूल परस्पर पूरक शक्तियाँ हैं। ये सत्य स्वाभाविक गुण धर्म द्वारा ही सृष्टि रचना विकास को बढ़ाते हैं। ये विज्ञानप्रोक्त द्रव्य के दो वर्ग हैं।

ऋग्वेद 5.65.2 में कहा गया है – (क्र. 125)

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जने जने।।

ता हि श्रेष्ठ वर्चसा वे दोनों ही उत्तम तेज से सम्पन्न राजाना राजा की तरह सर्वश्रेष्ठ ऋतावृधा ऋत को, प्राकृतिक गुण स्वभाव को विकसित करने वाला ऋतावाना मूल प्राकृतिक गुण धर्म स्वभाव के धारक सत्पती सत्य स्वरूप, नित्य, शाश्वत, पालक, मूल सत्ता वाले जने-जने दीर्घश्रुत्तमा जन-जन में बहुत काल से सबसे अधिक सुने गये हैं।

समस्त प्रयुक्त विशेषण दोनों को मूल सत्ता निरूपित करते हैं। ऋग्वेद 5.69.4 में कहा गया है कि मित्र-वरुण लोकों के धारक हैं। इनके ध्रुव शाश्वत नियमों को कोई प्राकृत शक्ति तोड़ नहीं सकती। मन्त्र है - (क्र. 126)

या धर्तारा रजसो रोचनास्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि।।

या आप दोनों **मित्रावरुणा** हे मित्र-वरुण **आदित्या** अखण्ड मूल आद्या शक्ति अदिति के अभिन्न अंश **दिव्या** दिव्य शक्ति **रोचनस्य रजसः** प्रकाशित लोक **उत** तथा **पार्थिवस्य** पृथ्वीवत् लोकों के धर्तारा धारणकर्ता हो। **वा अमृताः ध्रुवाणि व्रतानि** आप दोनों के अविनाशी, स्थिर, अपरिवर्तनशील नियमों को **देवाः** प्राकृतिक शक्तियाँ **न आ मिनन्ति** कभी खण्डित नहीं करतीं।

ऋचा में कहा गया है कि मित्र-वरुण दिव्य शक्ति हैं। मूल भौतिक सत्ता के समग्र रूप, समष्टि सत्ता अदिति के अंश हैं। ये जगत् के धारक आधारभूत मूल सत्ता हैं। इनके ध्रुव अविनाशी नियमों के अनुसार ही प्राकृतिक शक्तियाँ वर्तती हैं। इनके अटल नियम उल्लंघनीय नहीं है।

7. मित्र-वरुण कणरूप हैं

ऋग्वेद मंडल 2, सूक्त 41 का ऋषि गृत्समद है तथा सूक्त का देवता अर्थात् विषय मित्रा-वरुणौ - मित्र और वरुण हैं। सूक्त के 5 वें मंत्र में यह बताया गया है कि मित्र-वरुण असंख्य अंश वाले हैं अर्थात् ये दोनों स्वरूप से कण रूप (particles in composition) हैं। मन्त्र है - (क्र. 127)

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते।

भाषार्थ - **अनभिद्रुहा** परस्पर द्रोहरहित अर्थात् समान स्वभाव वाले **राजानौ** सर्वश्रेष्ठ, अन्ततम, स्वप्रकाशवान् मौलिक तत्त्व मित्र-वरुण **सहस्रस्थूणे** सहस्रों खंभों वाले **उत्तमे** श्रेष्ठ **ध्रुवे** निश्चल, शाश्वत सदसि सभा भवन में, आश्रय स्थान में **आसाते** बैठते हैं।

यह एक रूपक है जिसका अभिप्राय यह है कि मित्र-वरुण मूल तत्त्व के दो भेद, दो वर्ग हैं। प्रत्येक सहस्रस्थूणों असंख्य स्थायी नित्य अंश वाले हैं। मूल आश्रय स्थान में, मूल अवस्था में प्रत्येक असंख्य कणों (पार्टिकिल्स) वाले है जो परस्पर द्रोहरहित, परस्पर समान स्वभाव वाले, समान गुणवाले हैं। इस मन्त्र से मित्र - वरुण का स्वरूप निर्धारित होता है कि ये कण रूप (पार्टिकिल्स) है; क्योंकि संख्या की गणना कणों में ही हो सकती है।

उसी सूक्त के 6वें मंत्र में मित्र-वरुण के विषय में कुछ और तथ्य आते हैं। मन्त्र है - (क्र. 128)

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती सचेते अनह्वरं।

भाषार्थ-ता वे दोनों **आदित्या** अदिति के पुत्र , अभिन्न अंश (घृतासुती, आग्नेयं वै. घृतं. शत.) **अग्निवर्ण** उत्पत्तिधर्म रहित सम्राजा सम्राट्, चक्रवर्ती राजा के समान, भौतिक सत्तात्मक जगत् के अधिपति अर्थात् अन्ततम आदि मूल तत्त्व दानुनः पति दान देने में सर्वोच्च, जिनके दान से विश्व सत्ता में है ऐसे (**अनह्वरं** -अन्-अव्-अह्वरं) जो (ऊर्ध्व अवस्थित) मूल रूप से (अन् = प्राणनं, जीवनं) अपने जीवनकाल में अवस्थाओं (मानव की तरह) की (अव् = रक्षणे, अवाप्तिः) प्राप्ति व स्वभाव, प्राकृतिक गुणों के रक्षण में (ह्वरं = कुटिल, अह्वरं = सरल) सरल व्यवहार से, ऋत से सचेते संबंध रखते हैं अर्थात् सूक्ष्म से स्थूल की ओर, अव्यक्त से व्यक्त अवस्थाओं के धारण काल में यौगिकों के निर्माण में सरल व्यवहार रखते हैं।

8. विज्ञानप्रोक्त द्रव्य का स्वरूप

विज्ञान के अनुसार प्रकृति जगत् में दो रूपों में उपलब्ध है- द्रव्य भाग (मेटर) एवं विकिरण (रेडियेशन)। द्रव्य भाग के भी दो वर्ग किये गये हैं। एक वर्ग मात्रा (मास) की अधिकता एवं क्रियाशीलता के कारण (हेड्रन्स) कहलाता है। इस वर्ग में प्रोटॉन, न्यूट्रॉन पियान आदि हैं। दूसरा वर्ग हलकेपन मात्रा की कमी के कारण लेप्टन कहलाता है। इस वर्ग में इलेक्ट्रॉन, इलेक्ट्रॉन न्यूट्रीनो, म्यूओन व म्यूओन न्यूट्रीनो आदि हैं।

प्रकृति का विकिरण भाग भी दो प्रकार का है। एक प्रकार विकिरण प्रज्ज्वलित लोकों (सूर्यवत्) से प्रकाश के रूप में प्रसारित होता है। दूसरे प्रकार का कास्मिक विकिरण जिसकी खोज अत्यधिक आधुनिक (सन् 1965) में वैज्ञानिक आरनो पेन्जियाज एवं राबर्ट विलसन ने की है। विश्व में सर्वत्र व्यापक एक से मान (value) वाला है यह विकिरण आदिकाल का अवशेष है। यह सिद्ध हुआ है कि यह विकिरण समग्र गुरुत्वाकर्षण बल (universal force of gravitation) को उद्भूत करने वाली आधारभूत शक्ति है। इस प्रकार यह शक्ति लोकों के संतुलन में आधारभूत है।

9. अर्यमन् का स्वरूप निर्धारण

अर्यमन् मूल आद्या शक्ति का एक वर्ग है। यह देखना है कि अर्यमन् का

स्वरूप विज्ञानप्रोक्त कैसा हैं। धातु ऋ (= जाना) गति बोधक है। धातु यम् का अर्थ नियंत्रण करना, नियमन् करना, फैलना (पृ. 182, पृ. 542 वै. व्या.) तथा थामना भी (कोश) है। तदनुसार अर्यमा गतिशील, नियंत्रित व नियंत्रक, विस्तृत व विस्तारक है। अर्यमा = सूर्य, अमरकोश (1/3/28)। अर्यमादित्यः निरु. 11/23। अर्यमा = सूर्य, हला. कोश।

प्रकृति के विकिरण अंश से तुलना करने पर निम्नलिखित साम्य प्रस्थापित होता है-

1. प्रकृति के प्रकाश रूप विकिरण (द्वितीय प्रकार) की गति ही भौतिक जगत् की एकमात्र स्थिर राशि (कान्सटेन्ट) है, अर्यमा गतिवान् मर्यादित शक्ति है।
2. कास्मिक विकिरण लोकों के परिभ्रमण की दीर्घाओं का नियंत्रण, नियमन करता व लोकों को संतुलन में रखता है। अर्यमा (धातु यम् = नियंत्रण करना से) नियंत्रण, नियमन करने वाली मूल शक्ति है तथा (धातु यम् = थामना से) इसलिये लोकों को थामने का कार्य करती है।
4. प्रकाश विकिरण प्रसारित होता है तथा यह ऊर्जा (radiant energy), ताप आदान प्रदान करने वाली विकिरण तरंग (wave) है। अर्यमा = सूर्यकिरण गतिशील प्रकाशतापविस्तारक शक्ति है। अतः यह (रेडियेशन) विकिरण ऊर्जा है। निरुक्त तथा अमरकोश आदि ने अर्यमा को सूर्य अर्थात् विकिरण = प्रकाश ही माना है।
5. विकिरण उदासीन है अर्थात् यह विद्युत् चार्ज से रहित है। मित्र-वरुण विद्युत् चार्ज वहन करते हैं (पैरा 11) किन्तु अर्यमा के लिए ऐसा कोई निर्देश उपलब्ध नहीं है। अतः इसे उदासीन ही मानना उपुयक्त है।

इस अध्ययन से अर्यमा विकिरण सिद्ध होता है।

ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 64 का 5वाँ मन्त्र मित्र, वरुण, अर्यमा विशेषकर अर्यमा के स्वरूप पर प्रकाश डालता है, मन्त्र है - (क्र. 129)

दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्त होता विषुरूपेषु जन्मसु।।

भाष्य - अदिते हे अखंड मूल मातृशक्ति तुझसे **दक्षस्य** आदि प्रारंभिक सामर्थ्य (initial capacity) के जन्मनि जन्म होने पर राजाना सर्वश्रेष्ठ शक्ति, मूल तत्त्व मित्र-वरुण तुम (**विवाससि**, तना. उभ. धातु वन् = जीतकर प्राप्त करना, का सन्नन्त रूप विवास = जीतने, प्राप्त करने की इच्छा की लट् ल. म.पु. वै व्या. पृ. 264) एक दूसरे को प्राप्त करने की इच्छा करते हो, वा अपितु व्रते, व्रतं कर्मनाम, निघ. 2/1 इस कर्म में (अतूर्तपन्थाः, दिवादि तुर् = मारना) न मारा गया अर्थात् अविचलित मार्ग से जाने वाला सप्त होता[1] सात रंगों की किरणों वाला अर्यमा। अर्यमा-(विषु = विविध प्रकार कोश) विविध रूपेषु जन्मसु रूपों में प्रकट होने पर पुरूरथः अनेकों रमण साधन से युक्त होता। जगत् के पदार्थों में जितना रंगों का खेल है वह सब श्वेत किरण के सप्त रंगीन किरणों के सकाश से ही है।

इस मन्त्र में अत्यन्त उच्च विज्ञान है। मित्र-वरुण प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं। मित्र-वरुण प्रकृति के जोड़े रूप कण प्रतिकण हैं अथवा तरुण धनात्मक चार्जड् कणों का संघात (aggregate) है तो मित्र ऋणात्मक चार्जड् कणों का संघात है। अर्यमा उदासीन विकिरण है, अर्यमा अविचलित मार्ग का गामी है। विदित है कि प्रकाश सरल रेखा में चलता है। अर्यमा सप्तवर्गी कहा गया है। प्रकाश भी सप्तरंगी किरण वाला है तथा विषु रूपेषु जमन्सु अर्थात् अल्ट्रा वायलेट, इन्फा रेड आदि अनेक रूपों में प्रकट होता है। ऋचा 1/136/6 में भी अर्यमा को द्युक्षं अर्यमणं भगं प्रकाशरूप ऐश्वर्य वाला कहा गया है। निरुक्त में अर्यमा को सूर्य कहा गया है।

अर्यमाऽऽदित्यः (11/23)

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि अर्यमा विकिरण है :-

ऋचा में दूसरी बात यह कही गयी है कि जब मित्र-वरुण एक दूसरे से मिलने की इच्छा करते हैं अर्थात् मिलते हैं तब 'अतूर्त पन्था अर्यमा' विविध रूपें में जन्मता है। विज्ञान से हमें यह ज्ञात है कि विरुद्ध धर्म वाले अर्थात् विपरीत चार्ज वहन करने वाले कण-प्रतिकण के जोड़े के उचित ताप दबाव में संयोग के परिणामस्वरूप विकिरण की उत्पत्ति होती है। यही तथ्य मन्त्रोक्त है कि वरुण (कण) एवं मित्र (प्रतिकण) के संयोग से अर्यमन् (विकिरण) की उत्पत्ति होती है।

---

1. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण।। ऋ. 1/50/8
हे देव सूर्य (शोचि = ज्वलतः कर्मणि, निघ. 1/17) तेजयुक्त (केशः = प्रकाश की किरण, कोश) प्रकाश की किरण रूप (विचक्षण) नेत्र वाले (त्वा रथे) तेरे गतिशील लोक की (सप्त हरितः वहन्ति) सात प्रकाश किरणें ले जाती हैं।

मंत्र क्रमांक 99 में मूल आद्या शक्ति के तीन वर्गों को तीन सेनाओं से उपमा दी गयी है। सेना अनेक सैनिकों का समूह होता है। अत: इस उपमा से मूल सत्ता का प्रत्येक वर्ग व्यक्तिगत कणों का समूह है। विकिरण वाहक कण या इकाई फोटांस उदासीन अर्थात् चार्जरहित कण है। अत: यह निश्चय हुआ कि विकिरण वाहक कण अर्यमा के अंशभूत कण है।

10. मित्र, वरुण, अर्यमन् आदि कम्पन आरंभ करते हैं

आदिकाल में सर्वप्रथम मूल तत्त्वों में कम्पन आरंभ होता है। मूल तत्त्व की इस क्रियाशील अवस्था का प्रतीक आप: है। ऋग्वेद 7/70/4 में कहा गया है - (क्र. 130)

अयं हि नेता वरुणो ऋतस्य मित्रो राजाना अर्यमापो धु:।

भाष्य - **राजाना** सर्वश्रेष्ठ, स्वप्रकाशित मल तत्त्व **मित्र, वरुण, अर्यमा** ने **अप:** मूल तत्त्व की प्रारंभिक अवस्था को **धु:** कम्पित किया। **अयं वरुण:** यह वरुण हि ही **ऋतस्य** प्राकृतिक बहाव आरंभ करने का, क्रिया करने का **नेता** नेता है प्रारम्भ कर्ता है।

वरुण, मित्र, अर्यमा मूल अवस्था में कम्पन उत्पन्न करके सृजन के आरंभकर्ता हैं। इस कार्य में वरुण प्रमुख भूमिका का निर्वाह करता है। इससे स्पष्ट है कि वरुण के अंशभूत कण मित्र के अंशभूत कणों से अधिक क्रियाशील हैं। विज्ञान से ज्ञात होता है कि धनात्मक कण (Hadrons) अधिक क्रियाशील हैं तथा क्रिया के आरंभकर्ता हैं। अत: वरुण धनात्मक कणों का संघात है, ऐसा प्रतीत होता है इस न्याय से मित्र कण विज्ञानप्रोक्त (Leptons) लेप्टन्स है।

11. मित्र-वरुण के अंशभूत कणों से वसिष्ठ की उत्पत्ति

ऋग्वेद मण्डल 7, सूक्त 33 का 10 वाँ मन्त्र हैं- (क्र. 131)

विद्युतो ज्योतिः परि सज्जिहानं मित्रावरुणौ यदपश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार।।

भाष्य - **विद्युत् ज्योतिः** विद्युत् = इलेक्ट्रिक चार्ज **परि** पूर्ण रूप से **सम्** बराबर (**जिहानं**, हा = त्याग करना, जहाति) त्याग किये हुए **मित्रावरुणौ** मित्र-वरुण ने **यत्** जब **त्वा** तुझे **अपश्यतां** देखा **तत् ते जन्म** वह तेरा जन्म है, **उत** तथा **वसिष्ठ**

हे वसिष्ठ! **एकं** एक वह **यत्** जब **त्वा** तुझे **अगस्त्यः** अगस्त्य ने **विशः** प्रजा में **आ जभार** स्वाभाविक क्रम में धारण कराया।

मित्र-वरुण के अंशभूत कण जब संयुक्त होते हैं तो वे समान मात्रा में विद्युत् का परित्याग करते हैं अर्थात् मित्र-वरुण के अंशभूत कण जो इस प्रक्रिया में भाग लेते हैं समान मात्रा में किन्तु विरुद्ध धर्म वाले चार्ज वहन करते हैं। इनके संयोग से एक उदासीन कण वसिष्ठ की उत्पत्ति होती है। ध्यान रहे, मित्र-वरुण के देखने मात्र से वसिष्ठ की उत्पत्ति होती है अर्थात् मित्र-वरुण जब पास आते हैं तो विरुद्धधर्मी चार्ज परस्पर आकर्षण के कारण संयुक्त हो एक उदासीन कण उत्पन्न करते हैं। यह प्रथम (जन्म) संयोग है। दूसरा जन्म तब होता है जब अगस्त्य नाम का कण भी उस संयुक्त परिणाम में मिल जाता है।

वैज्ञानिक पक्ष : ऋणात्मक इलेक्ट्रॉन तथा धनात्मक प्रोटॉन के संयुक्त होने पर एक उदासीन परिणाम बनता है। जब इस संयुक्त परिणाम में एक अन्य उदासीन एन्टी इलेक्ट्रॉन न्यूट्रीनो सम्मिलित होता है तब न्यूट्रॉन नाम का एक उदासीन कण बनता है जो परमाणु की नाभि (nucleus) का एक अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण अंश है। इस प्रकार परमाणु की नाभि रचना का मार्ग विस्तृत होता है।

वरुण-मित्र के अंशभूत कण इलेक्ट्रॉन एवं प्रोटॉन हैं, जो ऋणात्मक एवं धनात्मक चार्ज वहन करते हैं तथा अगस्त्य विज्ञान का एन्टी इलेक्ट्रॉन न्यूट्रीनो है। यह अगस्त्य मित्र-वरुण का अंश नहीं कहा गया। अतः इसे अर्यमा का अंश होना चाहिए। अगस्त्य उदासीन कण (न्यूट्रल एन्टी इले. न्यूट्रीनो) है। अर्यमा उदासीन कणों का संघात (aggregate, union) है जिनमें विकिरण वाहक कण फोटान भी शामिल है।

पूर्व अनुच्छेद में यह बताया गया है कि वरुण के अंशभूत कण क्रिया करने में आगामी है। वरुण के इस लक्षण के आधार पर यह विदित होता है कि वरुण के अंशभूत कण धनात्मक चार्ज वहन करने वाले हेड्रन्स कहे जाने वाले अधिक क्रियाशील कण होते हैं। इस सदृश्यता के आधार पर हेड्रन्स कहे जाने वाले धनात्मक कण वरुणवर्गीकरण के अन्तर्गत हैं।

12. मित्र-वरुण के अंशभूत कणों का विवरण

यह चर्चा हो चुकी है कि मित्र-वरुण में से प्रत्येक वर्ग कई प्रकार के कणों का

संघात (यूनियन) है। इस विषय पर ऋग्वेद मंडल 5, सूक्त 69 की ऋचा से प्रकाश डाला जाता है। ऋचा है - (क्र. 132)

त्री रोचना वरुण त्रीरुँत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि।
वावृधानावमतिं क्षत्रिस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम।।

भाष्य - अमतिं ज्ञान रहित, संज्ञा हीन, जड़ **क्षत्रियस्य** बल को **वावृधानौ** बढ़ाते हुए **अजुर्यम्** कभी नाश न होने वाले **व्रतं** व्रतों की, नियमों की **अनु रक्षमाणौ** निरन्तर रक्षा करते हुए वरुण मित्र हे **वरुण-मित्र** आप दोनों **त्री रोचना** तीन तेजोमय **त्रीन् द्यून्** तीन ज्योतिर्मय उस तथा **त्रीणि रजांसि** तीन कणों को **धारयथः** धारण करते हैं।

ऋचा में बताया गया है कि वरुण-मित्र के अंशभूत कण 9 प्रकार के हैं। धनात्मक चार्ज कणों के विषय में आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान (quark model) यह है कि ये छै प्रकार के क्वार्क (quarks; up, down, strange, charm, bottom, top) से बने हैं। कहीं धनात्मक वरुण के छः अंशभूत कण छः क्वार्क तो नहीं है ? इसी प्रकार विज्ञान के अुनसार ऋणात्मक चार्ज्ड कण तीन प्रकार के हैं। ये है इलेक्ट्रॉन, म्यूओन तथा टाऊ। यह केवल संभावना व्यक्त की गयी है, निश्चयात्मक कुछ भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वेद का विवरण अत्यंत (General) सामान्य है।

ऋग्वेद मंडल 7, सूक्त 33 के 7वें मंत्र में आदि सृष्टिकाल में मूल तत्त्वों में हुए रूपातंर के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचना सन्निहित है, मंत्र है - (क्र. 133)

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस् तिस्त्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वान् इत्ताँ अनुविदुर्वसिष्ठाः।।

भुवनेषु ब्रह्माण्ड में **त्रयः रेतः** तीन बीज रूप मूल तत्त्व **कृण्वन्ति** होते हैं। **तिस्त्रः आर्याः** तीन श्रेष्ठ प्रमुख, **ज्योतिः अग्राः** ज्योति अर्थात् प्रकाश अथवा विद्युत् धारण करने में सर्वश्रेष्ठ, अग्रगामी **त्रयः** तथा तीन (घर्मासः तदेतद् देव मिथुनं **यद्घर्माः** यह जो घर्म है वह देवों का मिथुन = जोड़ा है-ऐ. ब्रा. 1/4/5) देवों के जोड़े **प्रजाः** पूर्वोक्त मूलतत्त्वों से जन्मे हुए **उषसं** सर्गारंभ को, आदि सृष्टिकाल को **सचन्ते** (द्रव्य रचना को) संयुक्त करते हैं।

वसिष्ठाः (बहुवचन) सर्वान् तान् इत् अनु विदुः उन सबों को वसिष्ठ निश्चय ही जानते है।

विज्ञान के अनुसार महाविस्फोट (big bang) के समय प्रामाणिक समय

(standard era) पर तीन जोड़े उद्भूत होते हैं। ये तीन जोड़े हैं – इलेक्ट्रॉनपाजीट्रान, म्यूओन एन्टीम्यूओन, न्यूट्रीनो -एन्टीन्यूट्रीनो। वसिष्ठ न्यूट्रॉन है जो प्रामाणिक समय पर उत्पन्न होने से उपर्युक्त तीन जोड़ों के समकालीन होने से सभी को जानते हैं– यह एक रूपक प्रयोग है।

13. मित्र-वरुण शब्दों का निर्वचन

वरुण शब्द "वृ" धातु से "उनन्" प्रत्यय लगाकर बना है। "वृ" क्र्यादि धातु का अर्थ है वृञ् वरणे चुनना, वरण करना तथा स्वादि. वृ का आवरण करना (वै. व्या.) ज्ञातव्य है कि प्रोटॉन परमाणु की नाभि में अवस्थित है तथा इलेक्ट्रॉन नाभि के चारों ओर परिक्रमा करता है। अतः उपर्युक्त क्रिया व्युत्पन्न अर्थ में वरुण का अंशभूत कण (प्रोटॉन) परमाणु के अन्तस् में इलेक्ट्रॉन को वरण करता है उसे परमाणु के अन्दर अपने आवरण में बाँधकर रखता है।

मित्रः शब्द के निर्वचन के संबंध में (निरु. 10/12) में कहा गया है मित्रः प्र-मी-ति विनाश से त्रायते रक्षा करता है या मि मापते हुए द्रवति दौड़ता है या यह मिद् मेद्यति के णिजन्त से व्युत्पन्न है।

वास्तव में जब तक मित्रः के अंशभूत कण (इलेक्ट्रॉन) नाभि से संयुक्त रहते हैं तब ही विनाश से, अवखंडन (disintegration) से परमाणु की रक्षा होती है। इलेक्ट्रॉन नाभि (nucleus) के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं तथा अपने अक्ष पर भी घूमते हैं अर्थात् (धातु मि) मापते हुए दौड़ता है; क्योंकि केन्द्र (nucleus) से दूरी, गति तथा (rotatory motion like a top) भौंरे की तरह की चक्रगति के मध्य संबंध है।

परमाणु की रचना मित्रः के नाभिक से संयुक्त होने पर ही होती है। इस प्रकार यह सूक्ष्म पदार्थ को मेद्यति मोटा करता है। इसका विवरण ऋचा में है (ऋ. 5/5/3)।

वरुण ने नीचे की ओर द्वार युक्त मेघ को भेजा तथा द्यु-लोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष की सृष्टि की। उस मेघ से सम्पूर्ण ब्रह्मांड का राजा भूमि को नम करता है जिस प्रकार वृष्टि यव को (निरु. 10/4)।

वरुण ने जो मेघ भेजा यह निश्चय ही नाभिकीय मेघ था; क्योंकि इसी तत्त्व से द्यु-लोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष का सृजन हो सकता है। उस मेघ का द्वार था अर्थात् उस बादल में जो नाभिक (nucleus) थे उनमें मित्र कण (electron particle) के प्रवेश के लिए स्थान था। द्वार प्रवेश का मार्ग देता है। द्वार का मुख

नीचे की ओर था इसका तात्पर्य यह है कि मित्र कण के प्रवेश से मेघ सूक्ष्म नाभिक अवस्था (nuclear state) से अपेक्षाकृत स्थूल परमाणु अवस्था (atomic state) को प्राप्त होता है। परमाणु (atom) के बन जाने पर द्रव्य रचना की इकाई बन जाती है। इस प्रकार पृथ्वी की रचना होती है। शेष नाभिक द्रव्य जो परमाणु में परिवर्तित नहीं होता अन्तरिक्ष में फैल जाता है। इसी द्रव्य से सूर्य की तरह प्रकाशित द्यु-लोक की रचना होती है (देखिये अध्याय 11)। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में वरुण अपना विस्तार करता है। वृष्टि जैसे यव को गीला करती है। इस तुलना से जल वर्षा का निषेध है। यह तुलना वरुण के व्यापक प्रभाव की सूचक है।

अध्याय 10

वैदिक सोम विकिरण ऊर्जा

सोम शब्द वेदों का प्रिय शब्द है। यह वेद में कई अर्थों में आया है। किन्तु सोमरस की लोकप्रियता के कारण जहाँ भी सोम शब्द आता है वहाँ सोमरस अर्थ ग्रहण करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। वेद में सोम (Radiant energy) शब्द आत्मज्ञान रस, ईश्वरीय इच्छा शक्ति या निर्माणकर्त्री शक्ति आदि अर्थों के अतिरिक्त भौतिक विकिरण ऊर्जा के लिए प्रयुक्त हुआ है। अत एव संदर्भानुसार ही अर्थ ग्रहण करना उपादेय है। इस अध्याय में सोम के भौतिक स्वरूप पर प्रकाश डाला जाएगा।

1. (अ) विज्ञान की परिकल्पना

भौतिक सत्ता प्रकृति जगत् में दो रूपों में उपलब्ध है- एक द्रव्य (matter) तथा दूसरा विकिरण (radiation)। इन दो वर्गों में परस्पर आवर्तन-प्रत्यावर्तन (conversion of one into the other) संभव है। द्रव्य का मौलिक स्वरूप कण (particle) वाला है। कण दो प्रकार हैं- कण तथा प्रतिकण (particle and antiparticle), ये विपरीत किन्तु समान मात्रा में विद्युत् (charge) धारण करते हैं। एक धनात्मक है तो दूसरा ऋणात्मक है। कण एवं प्रतिकण के संयोग से घर्षण में दोनों अपने अस्तित्व को विलीन करते हुए विकिरण ऊर्जा में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार द्रव्य से विकिरण की उत्पत्ति होती है, इसी के विपरीत ताप की यथोचित परिस्थिति होने पर विकिरण ऊर्जा की इकाई जिसे फोटान (photon) कहते हैं कण एवं प्रतिकण में विभक्त हो जाती है। इस प्रकार विकिरण से मौलिक द्रव्य कण प्रादुर्भूत होते हैं।

विकिरण ऊर्जा भी दो प्रकार की है। आधुनिक वैज्ञानिक कास्मालाजी के अनुसार आदि सृष्टिकाल एक महाविस्फोट से आरंभ होता है जिसे वैज्ञानिक भाषा में बिग-बैंग कहते हैं। एक प्रकार के विकिरण की खोज अत्यधिक आधुनिक (सन् 1965) है, जिसको खोजने का श्रेय श्री आरनो पेन्जियाज एवं राबर्ट विलसन को है।

यह विकिरण समस्त जगत् में व्यापक तथा एक-से मान (value) वाला है। विश्वव्यापक गुरुत्वाकर्षण बल (universal force of gravitation) के कारण आकाश गंगाएँ (Galaxies) एवं समस्त लोक सन्तुलित हो अपनी-अपनी दीर्घाओं पर भ्रमण करते हैं। अभी तक इस समग्र गुरुत्वाकर्षण बल का कारण अज्ञात है। पूर्वोक्त खोज के अनन्तर अब यह विचार हो रहा है कि समग्र गुरुत्वाकर्षण बल का आधारभूत यह कास्मिक विकिरण है। दूसरे प्रकार का विकिरण वह है जो सूर्य की तरह प्रज्ज्वलित लोकों से प्रकाश के रूप में प्रसारित होता रहता है।

आधुनिक वैज्ञानिक परिकल्पनानुसार जगत् उत्पत्ति एक बृहत् अग्निकाण्ड से आरंभ होती है जिसे बिग-बैंग कहा जाता है। (आदिकाल में) बिंग-बैंग के समय द्रव्य भाग पर विकिरण का वर्चस्व था। उस समय विकिरण एवं द्रव्य के मध्य घर्षण एवं आदान-प्रदान की प्रक्रिया चल रही थी। द्रव्य भाग अष्टवर्गी था।

ऋग्वैदिक परिकल्पना

ऋग्वेद में मूल आद्या शक्ति को अदिति नाम से प्रतिष्ठित किया गया है। यह शक्ति ईश्वर की तरह ही शाश्वत, ईश्वर की कार्यशक्ति है। पुरुष सूक्त (मंडल 10) का पुरुष, देहभूत उपादान कारण प्रकृति सहित अधिष्ठातृ भूत ईश्वर (व्यापक चेतन) को सन्निहित करता है। **"पुरि शेते इति पुरुष:"**, निर्वचन से पुरुष का देह होना आवश्यक है। यह देहभूत आद्या शक्ति (प्रकृति) अदिति है। ऋग्वेद में मूल प्रकृति के लिए अदिति, देवी, माता आदि पद आये हैं। इसका संपूर्ण विवेचन अध्याय 3 में है। अदिति त्रिवर्गी मूल तत्त्वों का संघात है। सृष्टि रचना हेतु नियोजित होते ही त्रिवर्गी तत्त्व क्रियाशील हो जाते हैं। प्रकृति की इस अवस्था को आप: या माया प्रतीक से कहा गया है।

प्रकृति की तीन मूल शक्तियाँ वरुण, मित्र एवं अर्यमा हैं। वरुण, मित्र कण रूप हैं व प्रकृति का द्रव्य (मेटर) भाग बनाते हैं तथा अर्यमा स्वरूप से विकिरण तरंगें हैं। सृष्टि में नियोजित होते ही विकिरण की ऋग्वैदिक संज्ञा सोम हो जाती है। सोम कोई पेय नहीं है। सोम, विकिरण का विश्व-व्यापक प्रवाह है, जो लोकों के स्थूल पिण्डों के पृष्ठ को स्पर्श करता हुआ प्रवाहित होता है।

ऋग्वेद के अनुसार आदि सृष्टिकाल में, जिसे प्रतीकात्मक भाषा में उषाकाल कहा गया है, बृहत् अग्नि-ताण्डव हुआ था जिसे ऋग्वैदिक प्रतीकात्मक भाषा में हिरण्यगर्भ कहते हैं, यह आधुनिक विज्ञान का महाविस्फोट (बिंग-बैंग) है। यह

प्रकरण पृथक् लेख का विषय है। महा-अग्निकाण्ड के अवसर पर सोम (विकिरण) का महत्त्वपूर्ण योगदान था। उस समय सोम का वर्चस्व था। इस तथ्य की विज्ञान की अवधारणा से तुलना करने पर महत्त्वपूर्ण साम्य प्रस्थापित होता है।

1. (ब) ऋग्वैदिक सोम का स्वरूप

ऋग्वेद का सोम आधुनिक विज्ञान की विकिरण ऊर्जा है। ऋग्वेद का सोम भी दो प्रकार का है। एक प्रकार का वह है जो आदिकाल में मूल तत्त्वों (कणों, प्रतिकणों) के घर्षण से उत्पन्न हुआ था। यह सोम ज्योतिर्पिण्डों के संतुलन में आधारभूत पृष्ठभूमि का कार्य करता है। यह विश्व-व्यापक है इसी विश्व व्यापकता से ही समग्र गुरुत्वाकर्षण बल उद्भूत हुआ है। इस विकिरण के विश्व-व्यापक महासागर में ज्योतिर्पिण्ड तैरते हुए से अपनी-अपनी कक्षा में गतिमान् होते हुए संतुलन में आबद्ध हुए हैं। दूसरे प्रकार का सोम वह है जो सूर्य की तरह प्रकाशित लोकों से उत्पन्न होकर प्रसारित होता है। सोम तरंगें आकर्षण, ताप, प्रकाश के रूप में फैली। इस प्रकार सोम के लक्षण का आधुनिक विज्ञान के विकिरण से महत्त्वपूर्ण साम्य है। **'लक्षणप्रमाणाभ्याम् वस्तुसिद्धिः'**, लक्षणों के आधार पर ही किसी वस्तु का स्वरूप निर्धारित होता है। अतः सोम के लक्षणों व गुणों की सदृश्यता से यह सिद्ध होता है कि सोम आधुनिक विज्ञान का विकिरण है। सोम के लक्षण मंत्रों में सुरक्षित हैं।

2. वेदों में वर्णित सोम पेय नहीं है

यह तथ्य सुस्पष्ट शब्दों में ऋ. 10/85/3 में कहा गया है। मन्त्र है-(क्र. 134)

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्मणो विदुर्नतस्याश्नाति कश्चन।।

पपिवान् सोम मन्यते पान करने वाले सोम उसे मानते हैं **यत्** जिसे **ओषधिम्** औषधि रूप में **सम् पिषन्ति** सम्यक् पीसते हैं यं सोमं जिस सोम को **ब्रह्मणः विदुः** वेदज्ञाता जानते हैं **तस्य** उसको **कश्चन न अश्नाति** कोई खा नहीं सकता। मन्त्र में यह बताया गया है कि सोम एक औषधि, वनस्पति भी है जिससे सोमरस बनता है, किन्तु वेद मन्त्रों में जिस सोम की बात है वह पीने योग्य पेय नहीं है वरन् उससे भिन्न वस्तु है। अतः वेद की भावना के अनुरूप सोम का अर्थ कुछ और ही है। यहाँ हमारा सीमित उद्देश्य सोम के भौतिक पक्ष को प्रकाश में लाना है।

3. सोम नक्षत्रों के सन्तुलन में आधारभूत शक्ति है

ऋग्वेद मण्डल 3, सूक्त 46 के 5वें मन्त्र में (कास्मिक) विकिरण का विवरण है। मन्त्र है - (क्र. 135)

उरुं गंभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम्।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतास समुद्रं न स्त्रवत आ विशन्ति।।

उरुं विशाल गंभीरं रहस्यमयी जनुषा स्वभाव से, जन्म से उग्रं तेजस्वी (विश्वव्यचसं, व्यच् = व्यापक होना पृ. 561 वै. व्या.) विश्वव्यापक, मतीनाम् बुद्धियों के, अवतं आश्रयभूत, रक्षक प्रदिवि अत्यन्त तेजस्वी, इन्द्रं इन्द्र को सुतासः सोमासः उत्पन्न सोम शक्तियाँ अभि आ विशन्ति सब ओर से प्रवेश पाती हैं समुद्रं न स्त्रवतः जैसे समुद्र में नदियाँ प्रवेश पाती हैं।

आगामी मन्त्र इसी सोम ऊर्जा के विषय में है, मन्त्र है - (क्र. 136)

यं सोममिन्द्र पृथिवी द्यावा गर्भम् न माता बिभृतस्त्वाया।
तं ते हिन्वन्ति तं ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवै उ।।

इन्द्र हे इन्द्र! यं सोमम् जिस सोम को द्यावा पृथिवी प्रकाशित-अप्रकाशित लोक त्वाया तेरे सकाश से बिभृतः धारण करते गर्भं न माता जैसे गर्भ को माता। अध्वर्यवः सृष्टि यज्ञ करने वाले लोक तं ते हिन्वन्ति उसी से प्रेरित होते हैं तम् उ ते मृजन्ति उसी से परिमार्जित होते हैं, वृषभः ते पातवै उ हे बलवान् वह सोम तेरे पान के लिए हो।

ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 85, मंत्र 2 में सोम को नक्षत्रादि के संतुलन की आधारभूत सत्ता निरूपित किया गया है। मंत्र है - (क्र. 137)

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।।

सोम के द्वारा आदित्याः नक्षत्रगण बलवान् हैं, सोम के द्वारा पृथ्वी महान् या धारणावती हुई है अथ उ तथा निश्चय ही एषाम् इन नक्षत्राणाम् नक्षत्रगणों की उपस्थे गोद में (सोमः आहितः) सोम स्थित है।

सोमऊर्जा के कारण नक्षत्रगण बलवान् हैं। गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी ने वायुमण्डल को आकृष्ट किया है। वायुमण्डल के कारण पृथ्वी पर वनस्पति एवं जीवन संभव हुआ है। अतः पृथ्वी की महत्ता का कारण गुरुत्वाकर्षण है किन्तु गुरुत्वाकर्षण का कारण सोम (विकिरण) है। अस्तु, पृथ्वी की महत्ता का कारण सोम है। नक्षत्र सोम विकिरण प्रसारित करते हैं।

सूक्त का दूसरा मन्त्र है - (क्र. 138)

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौ।
ऋतेनादित्यास् तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः।

सूर्येणा द्यौः उत् तभिता सूर्य के द्वारा प्रकाश थमा है। (**सत्येन** = ऋतेन) सत्य प्राकृतिक नियमों के द्वारा **भूमिः ब्रह्माण्ड उत् तभिता** निश्चय ही थमा है। **ऋतेन** सत्य प्राकृतिक नियमों के द्वारा **आदित्याः** सूर्य की तरह प्रकाशित लोक **दिवि** आकाश में **तिष्ठन्ति** ठहरे हैं तथा **दिवि** सूर्य में सोम ऊर्जा **अधिश्रितः** स्थित है।

मन्त्र में आदित्याः शब्द जो बहुवचन में है नक्षत्रों के लिए प्रयुक्त हुआ है जैसा कि पूर्व मन्त्र में नक्षत्र शब्द स्पष्ट रूप से आया है। सोम (विकिरण) पर आश्रित हो नक्षत्रगण आकाश में अपनी-अपनी दीर्घाओं में भ्रमण करते हैं।

आदिकाल में उद्भूत हुआ सोम आकाश में लोकों के संतुलन की आधारभूत ऊर्जा (विकिरण) है यह तथ्य ऋ. 9/2/5 वें मन्त्र से प्रस्तुत किया जाता है। मन्त्र है - (क्र. 139)

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः।
सोमः पवित्रे अस्मयुः।।

अप्सु क्रियात्मक मूल तत्त्वों में (**मामृजे**, मृज् की लिट् लकार) परिष्कृत हुआ, घर्षण से उत्पन्न हुआ **दिवः समुद्रः** लोकों के विस्तार को **विष्टम्भः** विशिष्ट रूप में थामता **धरुणः** धारण करता हुआ **सोमः** सोम **अस्मयुः पवित्रे मामृजे** हम लोगों को पवित्र करने के लिए माँज दें।

4. सोम विकिरण विश्व-व्यापक प्रवाह है

ऋग्वेद 9/1/6 वें मन्त्र में बताया गया है कि सोम का स्थायी विस्तार है, मन्त्र है - (क्र. 140)

पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता। वारेणः शश्वता तना।

(परि-स्रुतं, स्रु = बहना) चारों ओर प्रवाहशील **शश्वता** स्थायी, शाश्वत (तना= विस्तार, कोश) विस्तार (**वारेणः**, वारणं = संरक्षा, प्रतिरक्षा, पृ. 919 कोश) की संरक्षा को **ते** तुझे **सोमं** सोम को **सूर्यस्य दुहिता** सूर्य का दोहन करने वाली (नाभिक शक्ति) शक्ति **पुनाति** परिष्कृत करती है।

सोम विकिरण का विस्तार स्थायी है। सूर्यादि प्रज्वलित लोक निरन्तर सोम

(विकिरण) की पूर्ति करते रहते हैं जिससे ऊर्जा का स्थायी विस्तृत कोश संरक्षित रहता है।

ऋग्वेद 9/3/8 वाँ मन्त्र है- (क्र. 141)

एष दिवं व्यासरत् तिरो रजांस्यस्पृतः। पवमानः स्वध्वरः।

एषः यह **पवमानः** प्रवाहशील (**स्वध्वरः** = सु-अध्वरः, ध्वर = नष्ट होना) अविनाशी, स्थायी (अस्पृतः, स्पृ का वतान्त) पराभूत न होने वाला (रजांसि, लोका रजांसि उच्यन्ते निरु., रजः = लोक, वै. व्या., पृ. 309, रजः = अन्तरिक्ष पृ. 299) लोकों को (तिरः, तृ = पार करना) पार करता हुआ दिवं आकाश को **वि आ असरत्** विशिष्टता से फैला।

सोम विकिरण के प्रवाह लोकों को स्पर्श करते हुए समस्त आकाश में फैले। इसी विषय पर मंडल 9, सूक्त 3 का 7वाँ मन्त्र है- (क्र. 142)

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया। पवमानः कनिक्रदत्।।

तिरः रजांसि लोकों को पार करता हुआ यह (**पवमानः**, पवमानः = वायु, कोश पृ. 597) प्रवाहशील **दिवं** आकाश में **धारया** अपने प्रवाह से **कनिक्रदत्** आवाज करता हुआ सा विधावति गति करता है।

यहाँ '**कनिक्रदत्**' पद केवल काव्य विलास है।

ऋग्वेद 9/28/2 रा मन्त्र है - (क्र. 143)

एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः। विश्वाधामान्याविशन्।।

एषः सोमः यह सोम **देवेभ्यः सुतः** दिव्य शक्तियों से प्रादुर्भूत **विश्वाधामानि आविशन्** समस्त लोकों में प्रवेश करके **पवित्रे अक्षरत्** पवित्र करने के लिए प्रवाहित हुआ।

सोम ज्योतिपिण्डों को स्पर्श कर प्रवाहित होते रहते हैं। ऋ. 9/22/4 था। मन्त्र है- (क्र. 144)

एते सृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः। इयक्षन्तः पथो रजः।।

एते ये **सृष्टाः** शुद्ध **अमर्त्याः** अविनाशी **पथः** रजः लोकों के मार्गो की (**इयक्षन्तः**, यज् = संगतिकरण का शत्रन्त) संगतिकरण करते हुए (**ससृवांसः**, सृ का क्वसु प्रत्ययान्त का रूप) बहते हुए **न शश्रमुः** नहीं थकते।

सोम शुद्ध अर्थात् विद्युत् चार्ज से रहित हैं। ये सदैव ज्योतिर्पिण्डों की कक्षाओं

की संगतिकरण करते रहते हैं अर्थात् लोकों की कक्षाओं के निर्धारण एवं सन्तुलन में आधारभूत द्रव्य हैं। आगामी मन्त्र है - (क्र. 145)

एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः। उतेदमुत्तमं रजः।।

एते ये **रोदसोः** पृथ्वी आकाश के **पृष्ठानि** पृष्ठ भागों पर वि-प्र-यन्तः विशिष्ट गति करते हुए उत् तथा **इदं उत्तमं रजः** इन उत्तम प्रकाशित लोकों को **वि आनशुः** विशेषता से प्राप्त हैं।

सोम का जो प्रवाह सूक्ष्म रूप से पृथ्वी आकाश के अन्तस् में है वह कास्मिक विकिरण है तथा जो प्रज्ज्वलित लोकों से विशिष्टता से उद्भूत होता है वह दूसरे प्रकार का विकिरण है।

4 (अ). वैदिक वाङ्मय में 'सोम' का स्वरूप

आदि सृष्टिकाल में सोम को अग्निमय मण्डलाकार वायु रूपी पिण्ड कहा गया है - (मत्स्य पु. तथा कुछ पाठ भेद से महाभारत हला.कोश) उस समय नित्य प्रकृति आठ वसुओं सहित वर्तमान थी। यथा - **"आपां ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टो कीर्तिताः।"** आदि सृष्टिकाल में **ध्रुवः** आपः नित्य प्रकृति, अग्नि, वायु, प्रदीप्त आठ वसु और सोम विद्यमान थे। प्राचीन साहित्य की इस उक्ति से वसुः सोम, आपः आदि सृष्टि काल में नित्य प्रकृति की अवस्था विशेष के द्योतक हैं। आपः क्रियात्मक प्रकृति है, सोमः विकिरण है तथा आठ **वसुः** द्रव्य (matter) के आठ कण-प्रतिकण हैं। (देखिये अध्याय 8)

वसुः = अग्निः, **रश्मिः**, किरणः, **अनलः** तथा **सोमः** = **सूते अमृतमिति**। षू = प्रसवे (हला. कोश) इस निर्वचन से सोम अविनाशिनी शक्ति उत्पादक द्रव्य होना अभिप्रेत है तथा उसका विकिरण होना उपयुक्त है।

महाभारत तथा मत्स्य पुराण का विवरण वैज्ञानिक कास्मालॉजी के अक्षरशः अनुरूप है।

ऐतरेय ब्राह्मण (1/4/9) में कहा गया है - **'द्यावापृथिव्योर्वा एष गर्भो यत् सोमो राजा, यः सोमो राजा एष द्यावापृथिव्योरेव गर्भः'**, जो सोम राजा है वह द्यु और पृथ्वी का गर्भ है (सायण भाष्य)। सोम द्यु-पृथ्वी में व्यापक है।

शतपथ ब्राह्मण (3/2/4) **दिवि वै सोमो आसीत्** - सोम आकाश में अवस्थित है।

ऐतरेय ब्राह्मण (1/3/2 पृ. 80) में तै. सं. (6-1-6-1) का उल्लेख करते हुए सायण भाष्य में कहा गया है - '**अत्र नीयमानो द्रव्यविशेषः सोमो मन्त्र देवताऽप्यसावेव तस्मात् स्वात्मरूपत्वं गायत्री द्युलोकात् सोममानीतवतीति तैत्तिरीयाः**'। यहाँ लाया गया द्रव्य विशेष व उसका मंत्र देवता सोम उससे अपने निज स्वरूप वाले सोम को गायत्री द्युलोक से लाने वाली कही गयी है अर्थात् यज्ञ की यह प्रक्रिया द्युलोक से गायत्री (ईश्वरीय कौशल) द्वारा सोम के लाये जाने के तथ्य का प्रतीक है। यज्ञ का सोम पार्थिव द्रव्य है, पेय है जिसका यज्ञ स्थल पर लाया जाना आदि सृष्टिकाल में सोम देवता का आकाश में लाये जाने का रूपक है। गायत्री द्वारा द्युलोक से लाया गया सोम पार्थिव सोम से भिन्न द्रव्य है।

इसका तात्पर्य यह है कि सोम द्यु-लोकवर्ती द्रव्य है जो ईश्वरीय ज्ञान क्रिया बल रूप गायत्री शक्ति के द्वारा लाया गया है। यह द्यु-लोकवर्ती ईश्वरीय द्रव्य सृष्टि रचना हेतु लाये गये मूल शक्त्यंश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

5. सोम मूल शक्ति के अंश हैं

ऋग्वेद 9/9/3 रे मन्त्र में सोम को दो मूल शक्तियों का परिणाम कहा गया है। मन्त्र है - (क्र. 146)

स सुनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्। महान्मही ऋतावृधा।।

मही ऋतावृधा महान् प्राकृतिक बहाव को बढ़ाने वाला **सुनुः** मातरा दो मूल शक्तियों का परिणाम **सः महान् शुचिः जातः** वह महान् पवित्र शक्ति उत्पन्न हुई **अरोचयत्** और जाते उत्पत्ति धर्मी नक्षत्र व ग्रह दो प्रकार के लोकों को प्रकाशित किया है।

ज्ञातव्य है कि विकिरण दो शक्तियों कण-प्रतिकण के संयोग से प्रादुर्भूत होता है। ऋग्वेद 9/26/1 ले मन्त्र में कहा गया है - (क्र. 147)

तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि। विप्रासो अण्व्या धिया।।

विप्रासः विद्वानों ने **अण्व्या धिया** सूक्ष्म बुद्धि से (अमृक्षन्त, मृज् = शुद्ध करना की लुङ् स्) शोधन किया, अनुसंधान किया, तब **तम् वाजिनम्** उस शक्तिशाली को **अदितेः अधि उपस्थे** मूल आद्या शक्ति की आधारभूत सत्ता में वर्तमान पाया।

यह निश्चित हो चुका है (अ. 4) कि आपः मूल तत्त्व की क्रियाशील अवस्था है। ऐतरेय ब्राह्मण में यह सूत्र (1/2/1) आता है '**सोम्या ह्यापः**' आपः सोम से

संबंधित है। इससे यह प्रकट होता है कि सोम मूल शक्ति से संबंधित प्रकृति की अवस्था विशेष है। इसी सूत्र के भाष्य में सायण ने सोम का लक्षण दर्शाया है – (**सोमस्यामृतकिरणत्वात्**) सोम का अमृत किरण रूप है। अस्तु, सोम मूल शक्ति का विकिरण (रेडियेशन) अंश है।

ऋग्वेद मण्डल 9, सूक्त 107 का 11वाँ मन्त्र है – (क्र. 148)

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीलहे सप्तिर्न वाजयुः।

सः वह **अण्वानि** मौलिक कणों को (**मेष्यो**, **मेषः** = मिष् + अच्, मिषति **अन्योऽन्यं स्पर्धते**) प्रतिस्पर्धा करते हुए **तिरः** पारकर **मीढे सप्ति नः** वेगवान् अश्व की तरह **वाजयुः** शक्ति की इच्छा करता हुआ **मामृजे** शुद्ध हो जाता है।

सोम विकिरण एवं द्रव्याँश (कण-प्रतिकण) के बीच प्रतिस्पर्धा थी जिसमें सफल हो सोम ने वर्चस्व स्थापित किया। कण-प्रतिकण के घर्षण से विद्युत् रहित उदासीन अर्थात् शुद्ध तत्त्व सोम उद्भूत हुआ।

6. सोम आदिकाल में जन्मा था

ऋग्वेद 9/3/9 में कहा गया है – (क्र. 149)

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति।।

एषः देवः यह दिव्य शक्ति **देवेभ्यः सुतः** देवों के लिए उत्पन्न **प्रत्नेन जन्मना** पुरातनकाल में जन्मा हुआ (**हरिः**, **हरयः** सुपर्णा आदित्य स्मयः निरु. 7/24) **हरितो रसहरणशीलाः रश्मयः**, सायण; (**हरिः** = किरण कोश) किरण रूप **पवित्रे अर्षति** पवित्र करने के लिए गति करता है।

ऋग्वेद 9/42 के 2 रे मन्त्र में कहा गया है – (क्र. 150)

एष प्रत्नेन मन्मना देवेभस्परि। धारया पवते सुतः।

यह पुरातनकाल में मनन द्वारा उत्पन्न हुआ देवों के लिए धारा से प्रवाहशील है। आदि सृष्टि में सोम ईश्वरीय संकल्प से उद्भूत हुआ।

सोम विकिरण ने सूर्य को उत्पन्न किया, यह तथ्य ऋ. 9/23/2 में कहा गया है – (क्र. 151)

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः। रुचे जनन्त सूर्यम्।।

प्रत्नासः अति प्राचीन (**नवीयः पदं अनु अक्रमुः**, क्रम) नवीन पदों के लिए

क्रमबद्ध हुए आयवः रुचे जनन्त सूर्यम् मानव को प्रकाश देने के लिए सूर्य को उत्पन्न करते हैं।

प्राचीनकाल में सोम आदि सृष्टि में जन्मा था जिसे (कास्मिक) आदि विकिरण कहते हैं। नवीन क्रम से सोम विकिरण सूर्य से प्रकाश के रूप में उद्भूत होता है।

(अ) सोम (गैलेक्सियों) द्यु-लोक के परे जन्मा था

ऋ. 9/39/4 था मन्त्र हैं – (क्र. 152)

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ। सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत्।।

अयं सः यह वह है **यः** जो **दिवः** परि द्यु-लोक के परे (रघु, रघ् = शीघ्र जाना) शीघ्रगामी (**यामा**, यामः = नियंत्रण, निरोध, कोश) नियंत्रक **सिन्धोः ऊर्मा** समुद्र की तरंगवत् **पवित्रे** परिमार्जित करने के लिए **वि अक्षरत्** विशेष रूप से प्रवाहशील हुआ था।

मन्त्र में यह कहा गया है कि सोम लोकों के परे, गैलेक्सियों के केन्द्र से तरंगवत् उद्भूत हुआ जैसी कि आदि कास्मिक विकिरण के लिए 1965 की वैज्ञानिक परिकल्पना है।

(ब) सोम विकिरण आकाशस्थ लोकों से उद्भूत होता है

ऋग्वेद 9/69/8 में कहा गया है कि सोम शक्ति का निवास आकाश में है- (क्र.153)

यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः।

यूयं हि सोम तुम लोग निःसंदेह सोम, **दिवः मूर्धानः प्रस्थिताः** द्यु-लोक के उच्च स्थानों में अवस्थित **वयः कृतः** आयु प्रदान करने वाले **मम पितरः स्थन** हमारे पालक होओ।

मन्त्र का भाव है कि सोम शक्ति आकाश के सर्वोच्च स्थान ज्योतिर्पिण्डों में अवस्थित है। सूर्यादि लोक प्रकाश-ताप के द्वारा जीवनी शक्ति को संचालित करते हैं। पितर का अर्थ दिवंगत पूर्वज नहीं है वरन् पालक शक्ति है।

ऋ. 9/88/8 रे मन्त्र में कहा गया है कि सोम शक्ति वरुण के नियमों का पालन करती है। इसका निवास रहस्यमयी एवं व्यापक है। मन्त्र है – (क्र. 154)

राज्ञो नु ते वरुणास्य व्रतानि बृहद् गंभीरं तव सोम धाम।

सोम हे सोम! **तव धाम बृहत् गभीरं** तुम्हारा निवास स्थान विस्तृत एवं रहस्यमयी है। **तू राज्ञः वरुणास्य व्रतानि** राजा वरुण के उन नियमों का **नु** निश्चय ही विस्तार करता है।

सोम का निवास स्थान रहस्यमयी एवं विस्तृत है। सोम विकिरण गुप्त रहस्यमयी रूप से सर्वत्र व्याप्त है, यह तथ्य विज्ञान के द्वारा सन् 1965 में प्रकाश में आया है।

सोम आकाशीय पिण्डों की पृष्ठभूमि में फैला व्यापक विकिरण है। ऋ. 9/66/5वाँ मन्त्र है – (क्र. 155)

तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते। पवित्रं सोम धामभिः।।

सोम हे सोम! **तव** तेरे **शुक्रासः** कान्तिमान् **अर्चयः** तेज **दिवः** पृष्ठे द्यु-लोक की पृष्ठभूमि में **धामभिः** लोकों के द्वारा **वि तन्वते** विशिष्ट रूप से फैलाये जाते हैं पवित्र करने के लिए। प्रदीप्त लोकों के द्वारा उद्भूत आकाश की पृष्ठभूमि में विस्तारित हुआ विकिरण सर्वपवित्रकारी है। यह विज्ञानप्रोक्त द्वितीय प्रकार का विकिरण है।

7. आदिकाल में सोम (विकिरण) मूल कणों से अधिक प्रभावशील था

सोम मूल तत्त्वों का अग्रगामी परिणाम है। इस विषय पर ऋग्वेद मण्डल 9, सूक्त 37 के 4 थे मन्त्र से प्रकाश डाला जाता है, मन्त्र है – (क्र. 156)

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्। जामभिः सूर्यम् सह।।

स उसने (**पवमानः** = वायु, कोश पृ. 597) प्रवाहशील **जामभिः** सह संबंधियों = समान वर्ग वाले द्रव्यों सहित **त्रितस्य सानवि अधि** तीन मूल तत्त्वों के शिखर पर आश्रित हो **सूर्यम् अरोचयत्** सूर्य को प्रकाशित किया।

प्रकृति के दो रूप द्रव्य (मेटर) एवं विकिरण (रेडियेशन) है। आदिकाल में विकिरण का घनत्व द्रव्य के घनत्व से अधिक होता है यह स्थिति महा अग्निकाण्ड (बिग-बैंग) के समय होती है यह बात मन्त्र में कही गयी है जो आधुनिक वैज्ञानिक परिकल्पना के अनुरूप है। प्रकृति की तीन मूल शक्तियाँ है मित्र, वरुण (मेटर, एल्टीमेटर) एवं अर्यमा (रेडियेशन)।

इसी विषय पर ऋग्वेद 9/38/2 रे मन्त्र द्वारा प्रकाश डाला जाता है–(क्र. 157)

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः। इंदुमिन्द्राय पीतये।

त्रितस्य योषणः तीन मूल शक्तियाँ **एतं हरिं** इस किरण **इन्दुम्** ऐश्वर्य को

इन्द्राय पीतये इन्द्रपान अर्थात् इन्द्र को शक्ति प्रदान करने के लिए **अद्रिभिः** पर्वतों, मूल तत्त्वों की महान् मात्रा (सुपरनोभा) के सहित **हिन्वन्ति** प्रेरित करती हैं। तीन नारी के रूपक से तीन मूल तत्त्व कहे गये हैं (मन्त्र ऋ. 2/35/5 देखें)।

अब इसी विषय पर ऋ. 9/40/2 रे मन्त्र से प्रकाश डाला जाता है, मन्त्र है - (क्र. 158)

आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रं वृषा सुतः। ध्रुवे सदसि सीदति।।

अरुणः तेजोमय **वृषा** शक्तिवर्षक **सुतः** उत्पन्न सोम **गमत्** जाते अर्थात् गतिशील **इन्द्रं योनिम्** ईश्वर की योनिरूप उपादान कारण मूल तत्त्व को **आ रुहत** सवार हो जाती है अर्थात् आदिकाल में सोम ऊर्जा की मात्रा द्रव्य भाग पर हावी हो जाती है यह विज्ञान है।

त्रिवर्गी तत्त्व के अंशभूत वर्ग अर्यमा की सृष्टि में नियोजित होने पर संज्ञा सोम हो जाती है तदर्थ की ऋचा 9/88/8 विचारार्थ है -

शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम।

हे सोम **त्वम् शुचिः असि** तू शुद्ध है **प्रियः न मित्रः** मित्र की तरह प्रिय तथा **अर्यमा इव दक्षाय्यः असि** अर्यमा के समान सामर्थ्यवान् है।

यह आधुनिक विज्ञान है कि आदिकाल में (बिग-बैंग के समय) विकिरण की मात्रा द्रव्य भाग (मेटर) से अधिक थी।

8. आदि सृष्टिकाल में सोम का योगदान

प्रकृति अपने आपको दो रूपों में व्यक्त करती है। प्रकृति का द्रव्य भाग (मेटर) मित्र-वरुण में निहित है। अर्यमा प्रकृति का विकिरण भाग है, सृष्टि में नियोजित होने के उपरान्त विकिरण की संज्ञा सोम हो जाती है। आदिकाल में प्रारंभिक नियोजित क्रियाओं में सोम का क्या योगदान है। अब इस विषय पर मन्त्रों से प्रकाश डाला जाता है, मन्त्र है - (क्र. 159)

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायाँ पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्रो आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय।।

भाष्य - राजा सर्वोच्च सत्ता, मूल तत्त्व **सोमः** सोम **प्रथमः** आदिकाल में पुनः प्रलय के अनन्तर फिर से (**अहृणीयमानः**, हृ (ह्रि) णीयते (ना.धा.आ.) कोश) तत्पर हुआ **ब्रह्मजायाम्** प्रकृति को **प्रायच्छत्** अच्छी तरह उत्तेजना देता है।

(अनु = पीछे (अर्तिता = अर्द् (गतौ) + क्तिन् + तल् गतिशीलता में पिछड़े **मित्रः वरुणः** मित्र-वरुण **आसीत्** थे। **अग्निः** शक्ति के रूप सोम **होता** प्रमुख सृष्टि यज्ञ कर्ता अर्थात् संगतिकरण संपादन कर्ता ने (हस्तगृह्य, वै. व्या 250) प्रकृति को मानो हाथ से पकड़कर (आ निनाय, नी = आगे ले जाना, की लिट् ल.) शक्तिपूर्वक आगे किया। (ऋ. 10/109/2)

ऋचा में कहा गया है कि प्रकृति का द्रव्य भाग वरुण मित्र (पार्टिकिल, एन्टीपार्टिकिल) क्रियाहीन थे। विकिरण सोम ने इन्हें क्रियाशील किया। आदिकाल में द्रव्य भाग पर सोम (विकिरण) का वर्चस्व था।

आदि सृष्टिकाल में सोम के योगदान के संबंध में अन्य ऋचाओं से प्रकाश डाला जाता है। जिसमें लगभग उपर्युक्त तथ्यों का पुनःस्थापन हुआ है। मण्डल 9, सूक्त 97 की 40वाँ ऋचा है - (क्र. 159 अ)

अक्रान्त समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत् सोमो वावृधे सुवान इन्दुः।।

भाष्य - प्रथमे आदि सृष्टिकाल में **भुवनस्य राजा** सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाला **समुद्रः** आकाश की तरह व्यापक **विधर्मन्** विविध स्वाभाविक गुणों से युक्त **प्रजाः** विकारों को **जनयन्** उत्पन्न करता हुआ **अक्रान्त** अतिक्रान्त करके स्थित हुआ। **वृषा** शक्तिशाली या सिंचन करने वाला **पवित्रे** पवित्र करने के लिए तथा (**अव्ये**, अव का कृत्य अव्य) रक्षण करने के लिए **इन्दुः** प्रदीप्त किरणों वाले **बृहत् सोमः** बृहत् व्यापक सोम **सुवानः** प्रेरित करते हुए (उत्पन्न प्रजा को) **सानो अधि** उच्च शिखर की तरह (**वावृधे**, वृध् लिट् लकार) बढ़ा था।

आदि सृष्टिकाल में सोम का प्रभाव सर्वोच्च था तथा सभी प्राकृतिक तत्त्वों पर उसका वर्चस्व था। यही विकिरण के लिए वैज्ञानिक कास्मालाजी में कहा गया है।

इसी की आगामी ऋचा में कहा गया है - (क्र. 159 ब)

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अद्धादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः।।

भाष्य - पूजनीय या महान् सोम ने **तत् महिषः चकार** वह महान् कार्य किया **यद्** जो **अपां गर्भः** उद्वेलित प्रकृति के गर्भ रूप सोम ने **देवान् अवृणीत** देवों को वरण किया।

पावनकारी इन्द्र में ओज को रखता है **इन्दुः** तेजस्वी ने **सूर्ये** सूर्य में **ज्योति अज़नयत्** प्रकाश को प्रादुर्भूत किया।

सोम के द्वारा प्रकृति को क्रियाशील किया गया, उस क्रियाशील प्रकृति के गर्भ में देव धारण किये गये जिनका कालान्तर में जन्म हुआ। आदिकाल में इन्द्र ने अपने देहभूत आकाश में (सोम) विकिरण ऊर्जा एकत्र की उसी से वह ओज को धारण करने वाला कहा गया। उसी आदिकाल की विकिरण ऊर्जा के अंश के रूप में कालान्तर में सूर्य उत्पन्न हुआ।

उपयुक्त समय पर मूल तत्त्व पकाया गया - (क्र. 160)

प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत।। ऋ. 9/65/26

शुक्रासः तेजस् वर्ण सोम कण **वयो जुवः** तीव्रगामी आयु आने पर **सप्तयः न हिन्वानासः** घोड़ों की तरह प्रेरक हुए (युद्ध में जैसे घोड़े) **श्रीणाना,** (श्रा शृ = पकाना का शानज. कृ. श्रीणाना) खौलाये गये **अप्सु** क्रियात्मक मूल तत्त्वों में (**प्र मृञ्जत,** मृज् की लङ् ल., प्र.पु., बहु वचन) प्रकर्षता से शोधे गये।

आदिकाल में सोम कण (फोटान पार्टिकल्स) मूल तत्त्वों के साथ पकाये गये। उस उच्च तापमान पर विकिरण प्रखर तेज से कार्यरत हुआ। आदिकाल में द्रव्य व विकिरण का मंथन हुआ। - (क्र. 161)

आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम्
सूरा अण्वं वि तन्वते । (ऋ. 9/10/5)

सूराः सूर्य के समान प्रज्ज्वलित सोम **अण्वं** अणु रूप मूल कणों का **वितन्वते** विशिष्टता में विस्तार करते हैं तथा (**आ-पानासः,** पा = रक्षणे का शानज. पान से) सर्वरक्षक, सर्वधारक **उषसः** सृष्टिकालों के (**विवस्वतः** = सूर्य, त्वष्टा, कोश) आदिकाल के महासूर्य (सुपर नेबुला) रूपी **भगम्** ऐश्वर्य को **जनन्त** उत्पन्न करते हैं।

आदिकाल में सोम विभक्त होकर कण-प्रतिकण के रूप में विस्तार पाता है तब सूर्य के समान प्रज्ज्वलित सहस्रों कणों का समग्र पिण्ड उत्पन्न होता है जिसे विज्ञान में बिग-बैंग कहते हैं।

ऋ. 9/20/6 वें मन्त्र में कणों एवं विकिरण का संबंध स्पष्ट रूप से आया है, मन्त्र है - (क्र. 162)

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्तयोः।
सोमश्चमूषु सीदति।।

सः सोमः वह सोम (**वह्निः** = अग्निः कोश पृ. 911) **अग्नि दुष्टरः** अति असह्य रूप वाला, विकराल रूप वाला अप्सु क्रियात्मक मूल तत्त्वों में **चमूषु** कणों की सेना पर (**गभस्तयोः**, गभस्ति = प्रकाश की किरण, कोश पृ. 334) दो प्रकार के विकिरण रूप हाथों से (**मृज्यमानः**, मृज् के शानज से) घर्षण करता हुआ, परिष्कृत करता हुआ **सीदति** बैठता है।

मन्त्र में सोम के आदिकाल का स्वरूप निर्धारित होता है कि सोम आदिकाल में अति दुस्तर रूप धारणकर कणों-प्रतिकणों को सेना पर कार्यरत हुआ। उस समय कणों (मेटर, एल्टीमेटर) एवं विकिरण में मंथन हुआ तथा अत्यन्त उच्च ताप निर्मित हुआ।

इस प्रकार सोम के विषय में निम्नलिखित तथ्य प्रस्थापित हुए -

सोम दो प्रकार का है। आदिकाल में द्यु-लोक से परे उत्पन्न हुआ सोम आधुनिक विज्ञान की कास्मिक विकिरण है, यह लोकों को स्पर्श करता हुआ पार करके प्रवाहित हो रहा है, इसका निवास रहस्यमयी है। यह लोकों, नक्षत्रों, ग्रहों के संतुलन में आधारभूत तत्त्व है जो उन लोकों को दीर्घाओं में नियंत्रित करता है। आदिकाल में इस विकिरण का द्रव्य भाग पर वर्चस्व था। आदिकाल में जो इन्द्र द्वारा (रूपक भाषा में) सोमपान किया गया है वह वास्तव में ईश्वर द्वारा विकिरण का एकत्रीकरण है, जिसके वर्चस्व से महा-अग्निकाण्ड होता है।

दूसरे प्रकार का सोम सूर्यादि प्रज्ज्वलित लोकों से उद्भूत होता रहता है।

इस प्रकार ऋग्वैदिक सोम एवं आधुनिक विज्ञान के विकिरण में अद्भुत साम्य दर्शनीय है।

अध्याय 11

परमाणु एवं सूर्य-रचना-विज्ञान

गत अध्याय में यह प्रस्थापित किया गया है कि मित्र वरुण प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं। मित्र वरुण विरुद्धधर्मी विद्युत् चार्ज वहन करने वाले कणों के संघात (यूनियन) हैं। मित्रः वरुणः के अंशों से वसिष्ठ (न्यूट्रॉन) की उत्पत्ति की चर्चा भी हो चुकी है। इस अध्याय में परमाणुरचना के विषय में प्रकाश डाला जाएगा अनन्तर सूर्य मण्डल में वर्तमान ऊर्जा के स्रोत के विषय में चर्चा होगी।

परमाणुरचना में दो भाग प्रमुख होते हैं, एक नाभि (nucleus) जो परमाणु के केन्द्र में एक स्थिर अंश होता है। इस नाभि के दो घटक प्रोटॉन और न्यूट्रॉन हैं। इन दोनों के संयुक्त कण केन्द्र में अवस्थित हैं जिसे नाभि कहते हैं। परमाणु का दूसरा भाग एक अत्यल्प भार का कण है जो केन्द्र (नाभि) के चारों ओर चक्राकार (विभिन्न धरातलों में) गति करता है। यह ऋणात्मक विद्युत् वाहक होता है जिसे इलेक्ट्रॉन कहते हैं। चक्राकार गति करने वाले इलेक्ट्रॉनों की संख्या नाभि की रचना पर निर्भर रहती है। यदि नाभि में जितने प्रोटॉन होंगे चक्राकार गति करने वाले इलेक्ट्रॉन की संख्या उतनी ही होगी। इसी नियमानुसार अन्य परमाणु की रचना समझनी चाहिए। ऋग्वेद के अनुसार सूर्य ऊर्जा की उत्पत्ति में वरुण का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

1. परमाणुरचना-विज्ञान

ऋग्वेद मंडल 5, सूक्त 62 की ऋचाओं से इस विषय पर प्रकाश डाला जाता है। सूक्त की 5वीं ऋचा है - (क्र. 163)

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वी बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेलास्वन्तः।।

भाष्य - यजुषा बर्हिः इव रक्षमाणा यजुर्वेद के यज्ञ के आसन की तरह रक्षित हुए **अनुश्रुताम्** सुनी गई पद्धति के अनुरूप (**नमस्वन्ता, नमः = अन्न**) मूल

पोषक तत्त्वों से युक्त धृतदक्षा सामर्थ्य को धारण किये (**उर्वीम्** = द्यावा पृथिवी, निघ. 3/30) द्यावा पृथ्वी के (**अमतिं**, अमतिः = रूप नाम, निघ. 3/7) रूप को **वर्धत्** बढ़ाते हुए **मित्र वरुण** हे मित्र वरुण आप (**इलासु**, इला = अन्न, निघ. 2/7) जगत् की पोषक आधारभूत शक्तियों में (**गर्ते**, गर्तः = छिद्र, गुफा, कोश, = गृह, निघ. 3/4)[1] गुह्य स्थान के अन्तस् में **आसाथे** रहते हैं।

सामर्थ्य को धारण किये अपने रूप को बढ़ाते हुए पूर्ण रूप से रक्षित हुए 'इडासु अन्तः वर्तमान' मूल पोषक परमाणु के अन्तर्वर्ती क्षेत्र रूप केन्द्रस्थ नाभि में वर्तमान होने वाले मित्र-वरुण मौलिक तत्त्व हैं। ऋचा में "गर्ते अन्तः" पद परमाणु के आन्तरिक भाग नाभि के लिए प्रयुक्त हुआ। "इडा" शब्द का अर्थ है पृथ्वी, वाणी, अन्न। आगामी ऋचा से विदित होता है इडा का अर्थ पृथ्वी उपयुक्त नहीं है। ध्यान रहे, मित्र-वरुण मूल तत्त्व हैं। अतः मन्त्रार्थ मूल तत्त्वों की स्थिति पर प्रकाश डालने वाला होना चाहिए।

आगामी ऋचा है - (क्र. 164)

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेलास्वन्तः।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ।।

भाष्य - वरुणा हे मित्र-वरुण **इडासु अन्तः** अन्न रूप पोषक परमाणुओं के अन्तस् में **अक्रविहस्ता** अकर्मण्यता रहित **यं** जिस **सुकृते** उत्तम किये गये अर्थात् निर्मित परमाणु की (**परस्पा, परस्** = आगे, और भी, कोश) आगे या मिलकर आप दोनों **त्रासाथे** रक्षा करते हैं। **राजाना** हे तत्त्वों के प्रकाशक, अधिपति **अहृणीयमाना** तत्पर हुए **सह द्वौ** आप दोनों सहयोग से **सहस्र स्थूणं क्षत्रं** अनेक स्तम्भों के अधिराज्य को **बिभृथः** धारण करते हैं।

ऋचा में कहा गया है कि सर्वोच्च सत्तात्मक तत्त्व वरुणः मित्रः परस्पर सहयोग के द्वारा हजारों स्तम्भों के अधिराज्य को धारण करते हैं। स्तम्भ परमाणु की नाभि के द्योतक हैं; क्योंकि इन्हीं अनेक प्रकार की नाभि (न्यूक्लियस) रूप स्तम्भों पर जगत् धारक इला परमाणु रूप पोषक अन्न अवस्थित है। ये स्तम्भ आकाश में हैं (आगामी क्रमांक)। अतः इडा का अर्थ पृथ्वी नहीं हो सकता। ये स्थूण ज्योतिर्मय अधिराज्य को धारण करते हैं।

ज्योतिष्मत् क्षत्रं आसाते (क्रमांक 112)। ज्योतिर्मय अधिराज्य विद्युन्मय कणों के साम्राज्य का द्योतक है। पूर्व ऋचोक्त गर्तः इस ऋचा में स्थूण कहे गये है। गर्तः का अर्थ गुहाशय है जो परमाणु की नाभि का वाचक है उसे ही ऋचा में स्थूणं

कहा गया है। गर्तः का अर्थ स्तम्भ भी है[1] (**गर्तः सभास्थाणुः** निरु. 3/5) स्तम्भ का अर्थ है थामने वाली आधारभूत सत्ता। यह सत्ता परमाणु है जिस पर समस्त द्रव्य सत्ता अवस्थित है। गर्तः का अर्थ रथ भी है क्योंकि यह प्रशंसनीय वाहन है (निरु.)। परमाणु भी अत्यधिक गतिशील है इस अर्थ में रथ है। आगामी ऋचा है - (क्र. 165)

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य श्वाजनीव।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य।।

भाष्य - अस्य इस अधिराज्य का **अयः स्थूणा धातु,** आधारभूत स्तम्भ **हिरण्य निर्णिक्**[2] अखंड ज्योति मौलिक-विद्युन्मय-कणों की वर्तमानता से (**अश्व अजनि इव,** अजनि = पथ, कोश) अश्व के मार्ग की तरह **दिवि वि भ्राजते** आकाश में विशिष्टता से भासमान है।

अधिगर्त्यस्य आधारभूत गुहा के **तिल्विले भद्रे क्षेत्रे** स्नेह युक्त चिकने, आकर्षणयुक्त कल्याणकारी क्षेत्र में (**निमिता** = नि-मिता मा का क्तान्त मित = मापा गया) माप के अनुसार निगृहीत, नियंत्रित **मध्वः सनेम** मूल तत्त्व के कणों को हम प्राप्त करें, अधिगत करें, जानें।

ऋचा में कहा गया है कि आकाशस्थ स्थिर आधारभूत गुहास्थान रूप नाभि के आकर्षणमय क्षेत्र में विशुद्ध ज्योतिधारक कण अर्थात् मौलिक चार्ज्ड् कण माप के अनुसार नियंत्रित हैं इस ज्ञान को अधिगत करो। 'अश्व इव' पद की वर्तमानता से गर्त का अर्थ रथ लिया जाना अनुपयुक्त है। साथ ही रथ में आकर्षणयुक्त क्षेत्र का कथन व माप के अनुसार मध्व कणों के नियंत्रण का होना नहीं हो सकता।

मधुः शब्द ऋग्वेद में मौलिक कणों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसकी ऋचा है-

यस्य त्रि पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।

जिसके तीन स्वयं में पूर्ण (self sufficient, self existent) अक्षय हुए, **शाश्वत मधुना पदानि** अमृत तत्त्व स्वधारण शक्ति में आनन्दित रहते हैं (या उ

---

1. ससत्त्वेषु गर्तेषु मनु 4/47। स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्ते प्रस्रवणेषु च, मनु 4/203।
   सर्वेभ्यो रोम गर्तेभ्यः पृथक् स्वेदधाराः प्रास्यन्दन्त। गो. ब्रा. पू. 1/2।
   गर्तः = भूरन्ध्रं, दरः निपपात महागर्ते तिमिरौघसमावृते इति मार्कण्डेये हला. कोश।
2. ज्योतिर्वै हिरण्यम् ज्योतिरेषोऽमृतं हिरण्यम्। शत.ब्रा. (6/7)
   हिरण्य शाश्वत ज्योति है, अखंड अविनाशी मूल तत्त्व है। अतः हिरण्यं = मूल ज्योति, मूल तत्त्व।

त्रिधातु .... क्रमांक 102) जो इन तीन मूल संघटक के द्वारा जगत् को धारण करता है।

पुनः ऋचा

विष्णो पदे परमे मध्व उत्सः।

विष्णु के (पदे परमे, चतु-विभ.भू. अस् के साथ प्रयोग होने पर वै. व्या. पृ. 406) परम धाम में अमृत तत्त्वों का झरना है।

विष्णु का परधाम शाश्वत तत्त्वों का आवास है जो त्रिवर्गी प्रकृति के तीन शाश्वत तत्त्वों का स्रोत है।

आगामी ऋचा है - (क्र. 166)

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आ रोहथो वरुणा मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च।।

भाष्य - (**उषसः व्युष्टौ**, वै. व्या. पृ. 426) उषाकाल (= सृष्टिकाल) के उदय होने पर **सूर्यस्य उदिता** सूर्य की उत्पत्ति होने पर **हिरण्यरूपम्** ज्योतिर्मय **अयः स्थूणम्** धातु (=स्थिर,कठोर) स्तम्भ को **गर्तम्** गृह स्वकेन्द्र को **मित्र वरुण** हे मित्र-वरुण आप **आ रोहथः** चढ़ते हैं। अतः यहाँ से **अदितिम्** अखण्ड मूल तत्त्व को **च** तथा **दितिं खण्डनीय** को अर्थात् मूल से उत्पन्न यौगिकों को **चक्षाथे** देखते हैं।

उषाकाल का उदय सृष्टि कल्प के आरंभ का प्रतीक है। ऋचा में यह कहा गया है कि सूर्य की उत्पत्ति व परमाणु रचना साथ-साथ होती है जो कि विज्ञान द्वारा मान्य तथ्य है। परमाणु की बनावट के अन्तस् में अखंड मूल तत्त्व तथा उनके यौगिक (जैसे वसिष्ठः = न्यूट्रॉन) दोनों विद्यमान हैं। परमाणु के दो ही मुख्य घटक इलेक्ट्रॉन व प्रोटॉन हैं जो मित्रः व वरुणः के अंशभूत हैं।

किसी-किसी भाष्यकार ने "हिरण्यरूपम् स्थूणम्" पद से सूर्य वर्णित हुआ माना है व सहस्रस्थूणम् पद से किरण अर्थ ग्रहण किया है जो सूक्त की भावना के विपरीत होने से माननीय नहीं है। सूक्त की 2री ऋचा में (भाष्य आगामी अनुच्छेद में देखें) सूर्य ऊर्जा की उत्पत्ति का विवरण है। वहाँ मित्र-वरुण दोनों शक्तियों के एक साथ भाग लेने का निषेध किया गया है। अतः चर्चित ऋचा में '**हिरण्य स्थूणं**' पद सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ माननीय नहीं है वरन् यह परमाणु के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसमें दोनों शक्तियों का योगदान है।

2. आकाश में व्याप्त कास्मिक व अन्य किरणों का विवरण

आकाश में विभिन्न प्रकार के विकिरणों का निन्तर प्रसार होता रहता है, इस विषय पर ऋग्वेद मण्डल 5, सूक्त 63 की ऋचाओं से प्रकाश डाला जाता है। सूक्त की 4थी ऋचा है- (क्र. 167)

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्।
तमभ्रेण वृष्ट्यागूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते।।

भाष्य - **वां माया मित्रावरुणा** हे मित्र वरुण आप दोनों का प्राकृतिक विस्तार (**दिवि श्रिता** श्रि का भू. का. कृ. श्रित = आश्रय लेना) आकाश में स्थित है या प्रकाश पर आश्रित है। **सूर्यः ज्योतिः चित्रं आयुधम् चरति** सूर्य के प्रकाश की शक्ति अद्भुत अस्त्र को तरह धनुष से छूटे बाण की तरह चलती है। **तम्** उस माया आपकी गुप्त शक्ति को (**अभ्रेण वृष्ट्या**, अभ्रम् = आकाश, कोश) आकाशीय वृष्टि द्वारा (**गूहथः**, गुह = छिपाना) गुप्त रूप से (आप दोनों) छिपाये हुए हैं। **पर्जन्य** हे आकाशीय विकिरण रूप मेघ तुमसे **मधुमन्तः द्रप्साः** अमृतमय अक्षयशक्ति युक्त मूल क्रियात्मक तत्त्व **दिवि** आकाश में **ईरते** प्रेरित होते हैं।

ऋचा में यह कहा गया है कि प्रकृति के द्रव्य भाग (matter part) का विस्तार समस्त आकाश में है। सूर्य उन्हीं शक्तियों की विभूति मात्र है। आकाश में जो विकिरण की वृष्टि होती है उस वृष्टि के द्वारा मित्र-वरुण की शक्तियाँ सर्वत्र गुप्त रूप से कार्यरत रहती हैं।

प्रसिद्ध है कि आकाश में श्वेत किरणें (white light) के अतिरिक्त विकिरण के रूप में अल्ट्रा वायलेट (ultra violet), इन्फ्रा रेड (infra red), कास्मिक किरणें (cosmic rays), गामा किरणें (gamma rays) आदि अनेक प्रकार किरणें प्रवाहित होती रहती हैं जिनसे वायुमण्डल के अनेक स्तरों पर विभिन्न ताकत का आयोनाईजेशन होता है अर्थात् आकाशीय परमाणु धनात्मक व ऋणात्मक चार्ज से संयुक्त होता है।

द्रप्साः ईश्वर द्वारा प्रेरित मूल क्रियात्मक शक्ति है। मधु शब्द मौलिक अक्षय तत्त्वों के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार ऋचा में आदिकाल में प्रारंभ क्रियात्मक मूल शक्ति की आकाशीय वृष्टि अर्थात् प्रसार की बात है, पार्थिव बादल की वर्षा की बात नहीं है। इस मूल शक्ति को गुप्त वर्षा की चर्चा में कास्मिक किरणों के प्रसार की बात निहित है। इसी सूक्त के प्रथम मन्त्र में यह बात स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हुई है। ऋचा है- (क्र. 168)

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः।।

भाष्य - **ऋतस्य गोपौ** सत्य प्राकृतिक प्रवाह के रक्षक **सत्यधर्माणा** सत्य नियमों के धारणकर्ता मित्र-वरुण आप दोनों **परमे व्योमनि** परम विस्तृत आकाश में **रथं** सृष्टि रथ को **अधि तिष्ठथः** स्वामित्व करते हुए स्थित हैं अथवा **परमे व्योमनि** शाश्वत शक्तियों के आवास में **रथं** दिव्य गमनशील वाहक शक्ति को अधिकृत किये स्थित हैं **यम्** जिस सृष्टि रथ की **अत्र** यहाँ **युवं मित्रावरुणौ** आप दोनों हे मित्र-वरुण **अवथः** रक्षा करते हैं **तस्मै** उस सृष्टि के लिए **मधुमत्** नित्यता से युक्त **दिवः** प्रदीप्त किरण, विकिरण **वृष्टिं** वृष्टि को **पिन्वते** पुष्ट करती है।

मधु शब्द का प्रयोग नित्य शक्ति के लिए होता है यथा-**यस्य त्रि मधुना पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।**

परमेव्योमन् ईश्वर की संज्ञा है (ऋ. 1/164/39, 10/129/7) परम व्योम शाश्वत तत्त्वों का परम विस्तृत आकाश है, धाम है, स्तर है। मित्र-वरुण प्रकृति की शाश्वत शक्तियाँ हैं। यहाँ जो वृष्टि की चर्चा है वह दिव्य किरणों, मूल स्रोत की किरणों से संबंधित है पार्थिव वृष्टि का इसमें दूर का भी नाता नहीं है। ऋचा में किरणों की वर्षा का क्षेत्र परम व्योम विस्तृत दिक् कहा गया है जो जल वृष्टि का पार्थिव क्षेत्र नहीं है। ऋषि का दृष्टिकोण समग्रता, व्यापकता को समाविष्ट कर रहा है। रथ शब्द एक रूपक की तरह गमनशील सृष्टि अथवा गमनशील वाहक शक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। वृष्टि दिवः किरणों की है पानी की नहीं है। ऋचोक्त किरणें विस्तृत दिक् में फैली कास्मिक किरणें हैं। इसी सूक्त की 5 वीं ऋचा से इसी विषय पर और प्रकाश डाला गया है - (क्र. 169)

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु।
रजांसि चित्रा विचरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम्।।

भाष्य - **मित्रावरुणा** हे मित्र-वरुण (**गविष्टिषु** = गव-इष्टिषु गव = गो का स्थानापन्न, कोश = किरणें, धातु यज् का क्तान्त इष्ट का स्त्रीलि. इष्टि) किरणों की संगतिकरण पर, साहचर्य पर **शुभे** कल्याण के लिए **शूरः न** वीर की तरह **मरुतः** मरुद्गण **सुखं रथं युञ्जते** सुखप्रद उत्तम गमनशील शक्ति को संयुक्त करते हैं। **तन्यवः गविष्टिषु** विस्तारित किरणों की संयुक्त सत्ता पर **चित्रा** अद्भुत **रजांसि** लोक **विचरन्ति** विचरण करते हैं। **सम्राजा नः दिवः पयसा उक्षतम्** हे सम्राट्द्वय हमें प्रकाश किरण रस से सीचें।

ऋचा में कहा गया है कि मरुत् (मित्र-वरुण) कण-प्रतिकण की संगतिकरण करके किरणों को उद्भूत करते हैं। इन किरणों के प्रसार से प्रेरक बल (driving force) उद्भूत होता है जो ज्योतिर्पिण्डों को अपनी-अपनी कक्षा में गति करने के लिए प्रेरित करता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार कास्मिक विकिरण गुरुत्वाकर्षण बल को उद्भूत करती है (अध्याय 10)। ऋचा में कहा गया है कि प्रकाशित अप्रकाशित लोक गमनशील हैं इनकी गति का कारण आकाश में संचालित किरणें हैं। इन किरणों को मरुतशक्ति संयुक्त करती है। अतः मरुतशक्ति विज्ञानप्रोक्त चार बलों में से एक बल की द्योतक है।

ऋचा में उत्तर भाग में लोकों की गमनशीलता की चर्चा है तथा पूर्व भाग में रथ से संयुक्त किये जाने की बात है एतदर्थ रथ शब्द गमनशील द्रव्य का द्योतक है। अश्व और रथ के वैदिक प्रयोग के विषय में अध्याय 7 में प्रकाश डाला जा चुका है। सूर्यवत् प्रज्ज्वलित लोकों को घोड़ों और रथ से चलाने की कल्पना करना सामान्य ज्ञान के अभाव का सूचक है।

ऋग्वेद 5/62/3 में कहा गया है कि मित्र-वरुण को किरणों के प्रवाह ले जाते हैं। ऋचा है - (क्र. 170)

आवामाश्वासः सुयुजो वहन्तु यत रश्मय उप यन्त्वर्वाक्।
घृतस्य निर्णीगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति।।

भाष्य - वाम् सुयुजः अश्वासः आप दोनों को उत्तम प्रकार संयुक्त शक्तियाँ **आ वहन्तु** सर्वत्र ले जावें (**यत**, धातु यम् का क्तान्त यत) नियंत्रित **रश्मयः** किरणें **अर्वाक् उप यन्तु** पीछे-पीछे आवें। वाम् आप दोनों का **निर्णीक्** विशुद्ध रूप (**घृतस्य, आग्नेयं वै घृतं** -शत. 7/4/1/41) अग्नि के, विद्युत् के **अनुवर्तते** पीछे-पीछे घूमता है। **वाम्** आप दोनों को **प्रदिवि** विस्तृत आकाश में **सिन्धवः** प्रवाह **उपक्षरन्ति** व्यापकता से प्रवाहित करते हैं।

मित्र-वरुण शक्तियों को नियंत्रित किरणें वहन करती हैं। मित्र-वरुण विशुद्ध तेज हैं अर्थात् मूल शक्तियाँ हैं। तेजयुक्त किरण प्रवाह मित्र-वरुण के साथ चलता है। यह निर्धारित हो चुका है कि मित्र-वरुण चार्ज्ड् कणों के संघात हैं। विज्ञान से यह ज्ञात है कि चार्ज्ड् धनात्मक किरणें जिन्हें अल्फा रे कहते हैं हीलियम न्यूक्लियस को लेकर चलती हैं। इसी प्रकार ऋणात्मक चार्ज्ड् इलेक्ट्रॉन के प्रवाह को बीटा किरण (β - ray) कहते हैं। धनात्मक किरण वरुण के तथा ऋणात्मक किरण मित्र के अंशभूत कण हैं।

3. क्वान्टम थियोरी व सूर्य ऊर्जा की उत्पत्ति का रहस्य

ऋग्वेद मण्डल 5, सूक्त 62 की प्रथम दो ऋचाओं में सूर्य ऊर्जा के स्रोत पर प्रकाश डाला गया है। वहाँ यह कहा गया है कि सूर्य से निरन्तर प्रकाश प्रादुर्भूत करने की प्रक्रिया में प्रकृति के द्रव्य भाग का प्रतिनिधित्व करने वाली मित्र-वरुण दो मूल शक्तियों में से केवल एक शक्ति ही भाग लेती है।

विज्ञान की क्वान्टम थियौरी : प्रकाश के किसी भी स्रोत से ऊर्जा का प्रसार (dissipation of energy) कैसे होता है? पहले दो प्रकार के विचार थे। प्रथम यह कि कण प्रसारित होते हैं और दूसरा कि (wave) ऊर्जा की लहर प्रवाहित होती है। वैज्ञानिक मैक्स प्लांक ने दर्शाया कि प्रतिक्षण शक्तिओं का एक पुंज (Quanta of energy) प्रसारित होता है अर्थात् (bunch of photons) प्रकाश इकाई का एक गुच्छा एक गुणांक प्रसारित होता है इसे क्वान्टम् थियोरी कहा गया।

सूक्त की प्रथम ऋचा है - (क्र. 176)

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानाम् श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्।।

भाष्य - वां ध्रुवं ऋतं आप दोनों का नित्य सत्य स्वरूप **ऋतेन अपिहितं** प्राकृतिक प्रवाह के द्वारा छिपा है। **यत्र सूर्यस्य** जहाँ सूर्य की **दश शता अश्वान्** हजार किरणें **सह तस्थुः** एक साथ स्थित हुई **विमुचन्ति** छूटती हैं। **(देवानाम् वपुषां)** देवों के स्वरूपों के **(तत् एकं श्रेष्ठं)** उस एक श्रेष्ठ देव को **अपश्यम्** मैंने देखा।

दृश्य जगत् में मूल तत्त्वों का वास्तविक स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं है, परोक्ष रूप से ही हमारे सामने विद्यमान है। सृष्टि रचना क्रम में विकसित हुई अनेक अवस्थाओं, भूत समुदायों (यौगिकों) की संरचना (बनावट) में मूल स्वरूप छिपा हुआ है।

मंत्र में कहा गया है कि सूर्य रूप प्रकाश स्रोत से एक हजार अश्व शक्ति (unit) इकाई माप की ऊर्जा की मात्रा प्रतिक्षण (release) मुक्त होती है। यहाँ एक हजार की संख्या एक प्रतीक है वास्तविक माप नहीं है। पर मन्त्र में यह निश्चित रूप से कहा गया है कि ऊर्जा प्रसार की विधि प्रतिक्षण एक निंश्चित मात्रा (quanta) की मुक्ति से शासित है यही क्वान्टम थियौरी है।

ऋचा में दूसरी बात यह कही गयी है कि जहाँ सूर्य की हजारों किरणें एक साथ छूटती हैं वहाँ इन मित्र-वरुण शक्तियों में से एक शक्ति वर्तमान रहती है अर्थात् मूल तत्त्व के दो वर्गों में से केवल एक वर्ग ही सूर्य के प्रकाश की उत्पत्ति में हेतुभूत है।

आगामी ऋचा है - (क्र. 172)

तन्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे।
विश्वा: पिन्वथ: स्वसरस्य धेना अनु वामेक: पविरा ववर्त।।

भाष्य - मित्रावरुणा हे मित्र-वरुण तत् वह वां सु महित्वं आप दोनों का उत्तम सामर्थ्य है कि ईर्मा[1] प्रेरक तस्थुषी: स्थाई शक्तियाँ अहभि: प्रतिदिन, निरन्तर प्रकाश से (दुदुह्रे, तुदा. दुह् की लिट् लकार बहु वचन, वै. व्या.) दुहती है।

आप दोनों (स्व-सरस्य, सृ = बहना) स्वयं गतिशील विश्वा: धेना: सूर्य की समस्त किरणों को (पिन्वथ:, पिन्व = मोटा करना) शक्ति से पूर्ण करते हैं। वाम् एक: आप दोनों में से एक (पवि:, पवि रथनेमिर्भवति, निरु. 5/5) सूर्य नेमि को, सूर्य रूप चक्र को परिधि अनु बार-बार (आ ववर्त, वृत् की लिट् लकार) घुमाते हो।

ऋचोक्त तथ्य यह है कि (1) सूर्य मण्डल में प्रेरक द्रव्यों के द्वारा निरन्तर शक्ति का दोहन हो रहा है। (2) मित्र-वरुण में से एक सूर्य मण्डल की मूलभूत क्रिया चक्र की परिधि को घुमाता है। (3) इस प्रक्रिया से सूर्यकिरणें मोटी होती हैं अर्थात् विकिरण का घनत्व बढ़ता है जिससे प्रकाश मण्डल के बाहर गति से चलता है। (4) प्रकाश किरणें स्वयं गतिशील है।

वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं अनुसंधान

सूर्य मंडल की ऊर्जा शक्ति के उत्पादन में कार्बन नाइट्रोजन उत्प्रेरक (catalyst) द्रव्यों का विशिष्ट योगदान है। इन द्रव्यों की मौजूदगी में एक चक्रीय नाभिक क्रिया होती है जिसमें हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित होती है। इस क्रिया में प्रोटॉन का विशेष हाथ रहता है। प्रोटॉन जब कार्बन (C^{12}) से टकराता है तो नाईट्रोजन (N^{13}) बनता है तथा प्रकाश की इकाई फोटान मुक्त होती है, तदन्तर नाभिक नाईट्रोजन (N^{13}) ♋ कार्बन (C^{13}) + पाजीट्रान में परिवर्तित होता है। प्रोटॉन पुन: कार्बन (C^{13}) से संसर्ग करता है; परिणामस्वरूप नाइट्रोजन (N^{14}) + फोटान मुक्त होते हैं। इस नाईट्रोजन (N^{14}) से प्रोटॉन टकराता है जिससे ऑक्सीजन (O^{15}) बनता है जो

---

1. ईर्म इति बाहूनाम्। समीरिततरो भवति। ईर्म शब्द भुजा का पर्यायवाची है।
   क्योंकि यह अत्यंत गतियुक्त (सम्, ईर्) है (निरु. 5/25)
   सम् ईर् अर्थात् सम्यक् प्रेरक है, उत्प्रेरक (catalyst) है।

तुरन्त नाईट्रोजन (N^{15}) + पाजीट्रान में परिवर्तित हो जाता है। अन्ततः प्रोटॉन पुनः नाईट्रोजन (N^{15}) से संसर्ग करता है जिससे वही कार्बन (C^{12}) जिससे क्रिया आरंभ हुई थी, प्राप्त होता है। साथ ही हीलियम नाभिक बनता है।

क्रिया चित्र

C^{12} + प्रोटॉन	♋	N^{13} + फोटान
N^{13}	♋	C^{13} + पाजीट्रान
C^{13} + प्रोटॉन	♋	N^{14} + फोटान
N^{14} + प्रोटॉन	♋	O^{15} + फोटान
O^{15}	♋	N^{15} + पाजीट्रान
N^{15}	♋	C^{12} + He^{4} हीलियम

इस प्रकार इस क्रिया में दो प्रेरक हैं। क्रिया का संचालनकर्ता धुरे को घुमाने वाला प्रोटॉन है। पाजीट्रान, प्रोटॉन दोनों धनात्मक चार्ज वहन करते हैं।

ऋग्वैदिक परिकल्पना एवं वैज्ञानिक अनुसंधान का तुलनात्मक विवेचन

अध्याय 8 में यह निश्चय हो चुका है कि वरुण के अंशभूत कण अधिक क्रियाशील है। यह लक्षण विज्ञान के हेड्रन्स (प्रोटॉन, न्यूट्रॉन धनात्मक पियोन आदि) से मिलता है जो न्यूट्रॉन को छोड़ धनात्मक चार्ज वहन करते हैं। अध्याय 12 में यह बताया गया है कि विज्ञान का न्यूट्रॉन ऋग्वेद का वसिष्ठ है जो वरुण का अंश नहीं है वरन् मित्र-वरुण के अंशभूत कणों का प्रथम उदासीन यौगिक है। अतः विज्ञान प्रोक्त हेड्रन्स से न्यूट्रॉन पृथक् कर देने पर जो धनात्मक चार्ज्ड् कण शेष रहते हैं, उस समुच्चय की ऋग्वैदिक संज्ञा वरुण है।

क्वान्टम थियौरी का विचार ऋचा 171 में है।

विज्ञान से यह विदित है कि सूर्य ऊर्जा की उत्पत्ति में धनात्मक कण (प्रोटॉन्स व पाजीट्रान) की ही प्रमुख भूमिका है। ऋग्वेद के अनुसार मित्र-वरुण में से केवल एक ही सूर्य ऊर्जा की उत्पत्ति में भाग लेता है। अतः यह निश्चय होता है कि वरुण धनात्मक चार्जड् कणों का संघात है।

ऋचा में सूर्य ऊर्जा की उत्पत्ति संबंधी वे सभी तथ्य वर्तमान हैं जो विज्ञान के परीक्षित अनुसंधान को स्वीकार हो चुके हैं :-

1. सूर्यमण्डल में ईर्मा अर्थात् उत्प्रेरक की विद्यमानता।
2. नेमि का विवर्तन अर्थात् चक्रीय क्रिया का होना।
3. क्रिया में वरुण अर्थात् धनात्मक चार्जड् कणों की भूमिका।
4. विश्वा: धेना: का पुष्ट होना अर्थात् विकिरण के घनत्व की वृद्धि के परिणामस्वरूप किरणों का प्रसारण।
5. किरणों का स्वसरस्य अर्थात् स्वयं गतिशील होना, विकिरण का (energy carrier) शक्ति वाहक होना।

ध्यान रहे, यहाँ चर्चा सूर्य उत्पत्ति की नहीं है वरन् सूर्य ऊर्जा (विकिरण = प्रकाश) की उत्पत्ति विचार का विषय है। विज्ञान के अनुसार सूर्य पिण्ड की उत्पत्ति के पर्याप्त समय बाद कार्बन-नाईट्रोजन साईकिल अस्तित्व में आती है तब विकिरण का प्रसार आरंभ होता है। सूर्य पिण्ड (नक्षत्र) रचना विषय पर ऋग्वैदिक परिकल्पना को ग्रन्थ के द्वितीय भाग में प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय 12

ऋग्वेद में अप्सरा एवं उर्वशी का स्वरूप

गत अध्यायों में यह प्रस्थापित किया गया है कि प्रकृति (अदितिः) अपने आद्या स्वरूप में तीन मूल तत्त्वों की संतुलित अवस्था है; इसे ब्राह्मी स्थिति कहते हैं जो पुरुष का देहभूत उपादान कारण है। सृष्टि रचना हेतु नियोजित होते ही प्रकृति की क्रियाशील अवस्था आरंभ होती है जिसे ऋग्वेद में आपः या माया कहा गया है। मित्र-वरुण मूल तत्त्वों के दो भेद हैं जो परस्पर विपरीत विद्युत् वाहक कणों के संघात हैं। मित्र एवं वरुण के अंशभूत कणों के संयोग से एक उदासीन (न्यूट्रल) कण की उत्पत्ति होती है जो नाभि (न्यूक्लियस) रचना का प्रमुख भाग है। इस नाभिकीय द्रव्य का नाम वसिष्ठः है।

वसिष्ठ की उत्पत्ति के विषय से कुछ प्रतीकों का घनिष्ठ संबंध है, ये शब्द हैं द्रप्सः, अप्सरः, उर्वशी। पौराणिक कथाओं में अप्सरा तथा उर्वशी इन्द्र के दरबार की नर्तकी मानी गयी हैं। द्रप्सः का अर्थ बूंद है (वै. व्या. पृ. 342); किन्तु पौराणिक कथा के अनुरूप वीर्य माना गया है तथा मित्र-वरुण के वीर्य के संयुक्त रूप से उर्वशी में स्थापना से वसिष्ठ की उत्पत्ति की कथा बनाई गयी है। वास्तविकता कुछ और है, मित्र-वरुण मूल कणों के संघात, समग्र रूप (aggregate) हैं। मित्र-वरुण के अंशभूत कणों से वसिष्ठः (न्यूट्रॉन) की उत्पत्ति होती है। द्रप्सः, अप्सरा तथा उर्वशी भौतिक तत्त्वों के वैदिक प्रतीक हैं। इस अध्याय में ऋग्वेद की अन्तः साक्षी के आधार पर उनके वास्तविक स्वरूप का निर्धारण किया जाना है।

1. द्रप्सः ब्राह्मी स्थिति से च्युत हुआ प्रकृति का सारभूत तेज अंश है

द्रप्सः शब्द भ्वा. पर. तथा चुरा. उभ. धातु दृप् (दर्पति, दर्पयति) प्रकाशित करना, दर्पयन्ति अनेन स द्रप्सः जिससे प्रज्ज्वलित होता है, विद्युन्मय होता है वह द्रप्सः है अथवा दिवा. धातु दृप् = उन्मत्त करना (दृप् + स) दृपयन्ति अनेन उत्तेजित हो, (energize) हो।

जब मूल प्रकृति ब्राह्मी स्थिति से च्युत हो सृष्टि में नियोजित होने हेतु प्रकट होती है तो इस ब्रह्म से स्कन्न हुए, टपके हुये ब्रह्म के सारभूत तेज अंश द्रप्सः कहते हैं। यह अंश क्रियात्मक हो क्रमशः आपः, बृहती आपः, अपां नपात् आदि अवस्थाओं को धारण करता हुआ सृष्टि उत्पन्न करता है। इस प्रकार द्रप्सः ईश्वरीय तेज अंश है। अब ऋग्वेद की आन्तरिक साक्षीभूत ऋचाओं के माध्यम से विषय पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वप्रथम मण्डल 10, सूक्त 17 के मन्त्र 10, 11, 12 पर विचार किया जाता है। मन्त्र है – (क्र. 173)

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि।।

भाष्य – आपः क्रियात्मक मूल शक्तियाँ **अस्मान् मातरः** हमारी जन्मदायिनी है। **घृतेन** ज्ञान से, इन्द्रिय तेज से **शुन्धयन्तु** पवित्र करें। **घृत-प्वः** घृत पान करने वाले अर्थात् ज्ञानरस का पान करने वाले या इन्द्रिय तेज धारण करने वाली शक्तियाँ **नः** हमें **पुनन्तु** पवित्र करें। **देवीः** दिव्य शक्तियाँ **विश्वं रिप्रं** समस्त बुराइयों को हि **प्रवहन्ति** निश्चय ही बहा देती हैं **आभ्यः** उनसे **इत्** ही **पूत** पवित्र हुआ (मैं) **उत् शुचिः आ एमि** पावन अभ्युदय प्राप्त करता हूँ।

मन्त्र में क्रियात्मक मूल शक्ति आपः को मातृशक्ति कहा गया है। प्रार्थना पवित्रता के लिए की गयी है लक्ष्य अभ्युदय है। आगामी ऋचा – (क्र. 174)

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमान् अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः।।

भाष्य – प्रथमान् द्यून् सृष्ट्यारम्भ काल में **द्रप्सः** ब्रह्म का सारभूत तेज अंश (**चस्कन्द,** स्कन्द् लिट् ल.) च्युत हुआ (सृष्टि में नियोजन हेतु) **इमं** इस वर्तमान अवस्था वाले **योनिम्** आधारभूत कारण द्रव्य बृहतीः आपः का **अनु** अनुवर्ती हो **च** तथा **यः** जो **पूर्वः** पूर्व क्रियात्मक तत्त्व (आपः) था उसका **अनु** अनुवर्ती अर्थात् उन अवस्थाओं में अवस्थान्तरित होता हुआ **समानं योनिम्** समान वर्ग वाले उपादान कारणभूत **सम्** सम्यक् **अनु चरन्तम्** अनुगमन करते हुए को **द्रप्सं** उस मूलभूत तेज अंश को **सप्त होत्राः** आहुति करने वाले मन बुद्धि पंच ज्ञानेन्द्रिय सहित सात को **अनु जुहोमि** अनुकूल कर आहुति करता हूँ, श्रद्धा व्यक्त करता हूँ।

भावार्थ – मन्त्र में **प्रथमान् द्यून्** आदिकाल का बोधक है। योनि शब्द मूल कारण के लिए प्रयुक्त हुआ है। दो प्रकार के कारण तत्त्वों की बात है। ये दो

अवस्थाएँ हैं। क्रमशः आपः (पूर्ववर्ती) एवं बृहतीः आपः जिनके विषय में विस्तृत चर्चा हो चुकी है। द्रप्सः है ब्राह्मी स्थिति से च्युत हुआ ब्रह्म का सारभूत भौतिक उपादान कारण रूप मूलभूत अंश है जो क्रमशः आपः एवं बृहतीः आपः अवस्थाओं से गुजरता हुआ सप्त मन बुद्धि ज्ञानेन्द्रियों के रूप में प्रस्फुटित होता है, उस मूल शक्ति को नमन किया गया है। आगामी मन्त्र है – (क्र. 175)

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यन्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात्।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम्।।

भाष्य – ते यः द्रप्सः स्कन्दति तेरा जो सारभूत तेज प्रवाहित हो रहा है **यः** जो **ते धिषणायाः** तेरी बुद्धि द्वारा **बाहुच्युतः** मूल कारण रूप बाहु से गिराया हुआ (अंशुः= किरण, सूक्ष्म कण) किरण रूप तेज (उप = निकट, शक्ति, व्याप्ति) व्याप्त हो **स्थात्** स्थित हुआ **अध्वर्योः** वा कभी नष्ट न होने वाले तत्त्व से **वा यः पवित्रात् परि उपस्थात्** तथा जिस पवित्र से यह (जगत्) पूर्ण व्याप्त हुआ **तम् ते** उस तेरे तेज को **मनसा वषट् कृतं जुहोमि** मन के द्वारा 6 तेजस् भागों में विभक्त कर आहुति करता हूँ अथवा (**वषट्कृतं**) आपकी शिल्प विद्या, कला को नमस्कार करता हूँ।

मन्त्र में पुरुष अर्थात् देह सहित ईश्वर की चर्चा है क्योंकि देह के अंश बाहु का उल्लेख है। द्रप्सः पुरुष की शक्ति रूप बाहु से गिरा मूल तरल रूपी सारभूत तेज अंश है जिससे जगत् व्याप्त हुआ। उसी तेज से मन रूपी करण का उद्भव हुआ। पंच ज्ञानेन्द्रिय व बुद्धि सहित 6 भागों में विभक्त है। आगामी मन्त्र है – (क्र. 176)

यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुरवश्च यः परः स्रुचा।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे।।

भाष्य – यः ते द्रप्सः स्कन्नः हे ब्रह्म! जो तेरा सारभूत तेज टपका **यः ते अंशुः** जो तेरा तेज, किरण **अंशु स्रुचा** स्रुचा द्वारा, बाहुरूप शक्ति द्वारा **अवः च परः च** इस लोक में तथा दूरस्थ लोकों में फैला **तं** उसे **अयं देवः बृहस्पतिः** यह बृहत् लोकों का पालक देव ईश्वर **राधसे** ऐश्वर्य के लिए **सं सिञ्चतु** सम्यक् प्रकार से सींचे।

पुरुष (ब्रह्म) और ईश्वर में भेद है (अध्याय 1)। पुरुष देह (शक्तियों) सहित ईश्वर है, ईश्वर शक्तियों से रहित व्यापक चेतन सत्ता है। ब्रह्म की अंशभूत मूल शक्ति प्रकृति से जो तेज अंश च्युत हुआ उसे ही जगत् पालक ईश्वर ने सम्यक्

रूप से जगत् में नियोजित किया। अब इसी विषय पर ऋ. 10/123/8 वें मन्त्र में प्रकाश डाला जाता है। मन्त्र है – (क्र. 177)

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।
भानु शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि।।

भाष्य – **द्रप्सः यत् द्रप्सः** जो **गृध्रस्य चक्षसा पश्यन्** गिद्ध की दृष्टि की तरह देखता हुआ (**समुद्रम् अभि जिगाति**, गा = जाना की लट् ल.) आपः के समुद्र को उन्मुख हो जाता है **विधर्मन्** विविध गुण स्वभाव धारण किये। (**तृतीये रजसि प्रियाणि चक्रे** तीसरे लोक में प्रिय को रचा। **शुक्रेण** तेज से **शोचिषा** ज्वाला से **भानुः** सूर्य **चकानः** चमकते हुए हुआ।

द्रप्सः ब्रह्म की अंशभूत तेजस् शक्ति है जो क्रमशः आपः, बृहतीः आपः व तीसरे चरण में नाभिकीय शक्ति अपां नपात् में रूपान्तरित होती हुई सूर्य रूप में उद्भूत होती है। **आपः अस्मान् मातरः** – आपः माता है, सृष्टि में नियोजित मूल शक्ति है। बृहतीः आपः पुत्र है और तीसरे चरण वाली नाभिकीय शक्ति अपां नापत् नाती है। क्रमांक 84 में जिस शक्ति के लिए '**श्येनस्य पक्षा**' प्रयोग हुआ है उसी के लिए '**गृध्रस्य चक्षसा**' प्रयोग इस ऋचा में है। इस प्रकार ऋचाओं में विषय वस्तु की एकरूपता दर्शनीय है।

2. अप्सरा शब्द की व्याख्या

अप्सरा = अप् + सृ + असुन्। **अप् सारिणी** वह जो अप् में संचरण करें, इति।

अप् क्रियात्मक मूल तत्त्व है अप्सस् रूप का पर्याय है जो अ + प्सा = भक्षण करना से बना है इसका भक्षण नहीं किया जा सकता; प्रत्युय यह निर्वचन अदिति = अद् + इति से मेल खाता है। अदिति सबका भक्षण करती है अदिति में सब लीन हो जाते हैं पर अदिति स्वयं अभक्ष्य है अक्षय होने से। अदिति पर भक्षण की इति, अन्त हो जाता है। इस निर्वचन से अप्सरा अदिति है।

अप् मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था है। अप्सरा शब्द अभिन्न रूप से अप् से, मूल क्रियात्मक तत्त्व से संबद्ध है। यह अप् का भंडार है अथवा यह अप् सारिणी समष्टि प्रकृति ही है। किसी भी दशा में यह देवों के दरबार की नर्तकी नहीं है।

3. ऋचा प्रतिपादित अप्सरा का स्वरूप

ऋग्वेद की इस विषय में क्या परिकल्पना है। यह प्रकाश में लाने हेतु मण्डल

10, सूक्त 123 की ऋचाओं का विवेचन किया जाता है। सूक्त की प्रथम ऋचा है- (क्र. 178)

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति।।

भाष्य - यह वेन **पृश्निगर्भाः** आकाश में गर्भरूप **इमं अपां** इस क्रियात्मक मूल तत्त्व को **सूर्यस्य** महासूर्य, हिरण्यगर्भः की **जरायुः** भ्रूण, मूल अवस्था से (**रजसः विमाने** = वि = माने, मा = मापना का शान. कृ. मान वै. व्या.) लोकों को विशेष रूप से अवस्था में **सङ्गमे** ले जाने **चोदयत्** प्रेरित करता है **विप्राः** विद्वान् **शिशुं** न बालक की तरह **ज्योतिः** इस ज्योति (ईश्वर) का **मतिभिः** मतियों के द्वारा अस्वाद् लेते हैं।

वेन का अर्थ है (**वेनति ते**, वै. व्या. पृ. 560) प्रिय। वह प्रिय है, ईश्वर तथा आपः है मूल क्रियात्मक शक्ति जिसको वह आकाश के अन्तराल में लोकों के रूप में (वि-माने) विशिष्ट मान से स्थापित करता है ताकि वे सन्तुलित ढंग से अपनी-अपनी कक्षाओं में परिभ्रमण कर सकें। आदिकाल में सृष्टि का कारण-भूत जो आदि प्रज्ज्वलित पिण्ड उद्भूत होता है उसकी ही ऋचा में सूर्य संज्ञा दी गयी है। आगामी ऋचा में उस स्थिति का और भी विवरण है।

ऋचा है - (क्र. 179)

समुद्रादूर्मिमुदयति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि।
ऋतस्य सानावधि विस्टिपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः।।

भाष्य - **समुद्रात् ऊर्मिम्** उदयति महासागर से तरंग का उदय होता है[1]। **ऋतस्य सानौ** प्राकृतिक रूप से उद्भूत मंथन के शिखर को **अधि** आधारभूत बना **समानं योनिम्** एक ही अवस्था के योनिरूप प्रारंभिक द्रव्य का **नभोजाः** आकाश में उत्पन्न हुए (व्राः = सङ्घ वै. व्या.) समग्र अंश अभि चारों ओर अनु तुल्यता से, एक-से (ऊषत, उष् = प्रज्वलित होना) प्रज्ज्वलित होते हुए **भ्राट्** दैदीप्यवान् हो **वि-स्टिपि** विशिष्टता से स्थापित हुए तब (**हर्यतस्य**, हर्यति = कान्ति, निघ. 2/6) कान्तिमान् **पृष्ठं** पृष्ठभूमि रूप (**वेनः दर्शि**, दृश् की लुङ् धातु) वेन दिखाई दिया। प्रिय के, ईश्वर के दर्शन (ईश्वर की कृति के रूप में) हुए।

---

1. तङ् घोरात् क्रूरात् सलिलात् सरसः उदानिन्युः। गो. ब्रा. पू. भा. 2/18 उस महाभंयकर दाहक अप् के सागर से महाशक्ति रूप अश्व को ऊँचा किया।

आदिकाल में (पूर्व ऋचा की अनुवृत्ति) मूल तत्त्व की आप: अवस्था में तरंग उठती है अर्थात् मूल शक्ति क्रियात्मक हो उठती है तब इस प्राकृतिक मंथन में द्रव्य अनेक प्रारंभिक अवस्थाओं से (वैज्ञानिक कॉस्मालाजी से तुलना - प्रारंभिक अवस्थाओं से गट्स अवस्था, क्वार्क सूप अवस्था, हेड्रन अवस्था, लेप्टन अवस्था आदि क्रमागत अवस्थाएँ अत्यन्त संक्षिप्त काल में होती हैं।) निष्क्रमण करता है उन्हीं द्रव्यों के समूह को ऋचा में समान योनि के संघ की संज्ञा दी गई है। ये द्रव्य सम्यक् रूप से प्रज्वलित हो देदीप्यमान् हो जाते हैं। वैज्ञानिक कास्मालाजी में समग्र द्रव्य का तापमान अरबों डिग्री हो जाता है तथा उस स्थिति को महाविस्फोट कहा गया है उसी स्थिति का रोचक वर्णन कलात्मक ढंग से कवित्त में है। सूक्त का 5 वाँ मन्त्र है - (क्र. 180)

अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन्।
चरत् प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत् पक्षे हिरण्यये स वेन।।

भाष्य - अप्सरा: योषा अप्सरा स्त्री **सिष्मियाणा** मुस्कराते हुए जारं पति को **परमे व्योमन्** परम आकाश व्यापक में **उप बिभर्ति** समीपता से धारण करती है **(स: वेन प्रिय सन्)** वह वेन प्रिय होता हुआ **(प्रियस्य योनिषु चरत्)** प्रिय प्रकृति की अवस्थाओं में विचरण करे, करता है।

योषा (स्त्री)[1] शब्द देखकर अप्सरा शब्द से दिव्य नर्तकी की कल्पना स्वाभाविक ही है किन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि यह स्त्री परमे व्योमन् अर्थात् सर्वव्यापी ईश से संबद्ध है। प्रकृति (अदिति) के लिए ईश्वर की जाया[2] (पत्नी) एवं देवों (भौतिक अवस्थाओं) की जननी का रूपक ऋग्वेद में सर्वत्र पाया जाता है जैसे 'ब्रह्मजायाँ प्रायच्छत्' ईश्वर की पत्नी को आगे ले जाता है (क्र. 32)। वेन (प्रिय), परमे व्योमन् ईश्वर है तथा अप्सरा है उसके पार्श्व में बैठने वाली शाश्वत

---

1. योषा शब्द प्रकृति की तीन शक्तियों के लिए प्रयुक्त होता है :-
   एतं त्रितस्य योषणो हरि हिन्वन्त्यद्रिभिः।
   तथा अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्।
   भाष्य क्र. 157 तथा क्र. 98 में देखिये।

2. आदि सृष्टिकाल में उद्भूत हुए प्रकृति के तरलों को जाया संज्ञा से विभूषित किया जाना गोपथ ब्राह्मण की आख्यायिका में हेतु सहित कहा गया है। **हिरण्यये पक्षे सीदत्** उसके ज्योतिर्मय पार्श्व में बैठे, बैठता है।

शक्ति (प्रकृति) आपः, जिसका स्पष्ट उल्लेख पूर्व मन्त्र (क्र. 178) में आया है तथा जिसके समुद्र में क्रिया की प्रथम तरंग उठकर मंथन की अवस्था तक जाती है। आगामी ऋचा में वेन के स्वरूप का स्पष्ट विवेचन है, ऋचा है – (क्र. 181)

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्।।

भाष्य – **यत्** जिस **सुपर्णम्** उत्तम पंख वाला **शकुनं पक्षी**, सब जगह गतिशील **नाके पतन्तं** आकाश में उड़े हुए, व्यापक हुए को **हिरण्यपक्षं** ज्योतिर्पाश्व वाले को **वरुणस्य दूतं** श्रेष्ठ ज्ञान के संदेश वाहक **भुरण्युम्** सबके पोषणकर्ता **त्वा** तुझे **यमस्य योनौ** समस्त नियमों के उत्पत्ति स्थान में (**वेनन्तः**, **वेन्** = चाहना का शत्रन्त वेनन्त) चाहने वाले(ज्ञानी जनों) ने **हृदा** हृदय में **अभि अचक्षत** पूर्ण रूप से देखा है।

ज्ञानी जिसे हृदय में साक्षात् करते हैं वह है ईश्वर। इस प्रकार यह निश्चय हुआ कि वेन ईश्वर है तथा उसकी प्रिया प्रकृति (आपः) है।

4. उर्वशी शब्द की व्युत्पत्ति

निरुक्ताचार्य (5/13) ने उर्वशी शब्द के दो निर्वचन इस प्रकार किये हैं – उर्वभ्यश्नुते। वह विस्तृत प्रदेशों को व्याप्त करती है (उरु + अश् = व्याप्त करना), या इसकी इच्छा महान् है (उरु + वश् = इच्छा करना)।

उर्वशी शब्द उरु + अश् + इन = उर्वशिः ङीष् = उर्वशी। उरु अभ्यश्नुते, विशाल क्षेत्र को व्याप्त करती है अथवा उरू वशिनी = उर्‌वशी = उर्वशी, उरू वशः, वशः = इच्छा, नियंत्रण, प्रभाव। बहुत प्रभाव वाली है निरु. 5/3। निरुक्त के प्राचीन टीकाकार स्कन्द व दुर्गाचार्य उर्वशी को विद्युत् मानते हैं।

ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 95 में पुरूरवा उर्वशी संवाद है। इस सूक्त में 18 मन्त्र है। पुरूरवः जगत् के प्रपञ्च रूप कलरव से जुड़ा हुआ[2] मानव देहधारी जीवात्मा है तथा उर्वशी विशाल क्षेत्र में नियंत्रण करने वाली, विशाल क्षेत्र को प्रभावित करने वाली है। ऋचा में कहा गया है –

1. ऋचो अक्षरे परमे व्योमनि। ऋ. 1/164/39
   यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमनि। ऋ. 10/129/7
   परमे व्योमन् व्योम से विशिष्ट सर्वव्यापी ईश्वर है।
2. पुरूरवा बहुधा रोरुयते। पुरूरवस् इसलिये कहलाता है यह अत्यधिक रव करता है (निरु. 10/46)

यूथस्य माता उर्वशी सर्वस्य माता उर्वशी नदीभिः प्राकृत प्रवाहों द्वारा वा तथा इला पृथ्वी **नदीभिः** नदियों के प्रवाहों द्वारा **नः गृणातु** हमारी स्तुति करे। **वा** तथा **बृहत् दिवा** विस्तृत आकाश को (**अभि ऊर्ण्वाना, वृ** = आच्छादित करना **का शानज. ऊर्ण्वान**) पूर्ण रूप से आच्छादित किये उर्वशी **उर्वशी आयोः गृणाना** मानवों से प्रशंसित होती हुई **प्रभृथस्य ऊर्जव्यस्य नः पुष्टेः** उत्तम प्रकार धारण किये गये बल व अन्न का हमारी पुष्टि के लिए **सिषक्तु** सिंचन करे। (ऋ. 5/41/19, 20)

इस ऋचा में स्पष्ट रूप से उर्वशी के लक्षण का व्याख्यान हुआ कि विस्तृत आकाश को आच्छादित किये बल व अन्न से समृद्ध उर्वशी सर्वव्यापी प्रकृति है।

5. उर्वशी पुरूरवा संवाद

पूर्व अनुच्छेद में यह देखा जा चुका है कि अप्सरा अप् सारिणी प्रकृति की अवस्थाविशेष है। उर्वशी अरू वशिनी भी प्रकृति का ही नाम है। अब पुरूरवा उर्वशी सूक्त की कुछ ऋचाओं की व्याख्या की जाती है। सूक्त के 4 थे मन्त्र की ऋषिका उर्वशी प्रकृति पक्ष से कहती है – (क्र. 182)

सा वसु दधति श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्ति गृहात्।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन् दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन।।

भाष्य – **सा** वह **श्वशुराय स्वशूराय** अपने कर्मवीर जीवों के लिए **वसु दधति** ऐश्वर्य धारण करती है **यदि** जब **उषः** सृष्टिकाल **वयः** आयु की (वष्टि, वश् की लट् लकार) इच्छा करती है। **अस्तं** सृष्टिकाल को **अन्ति गृहात्** आन्तरिक निवास से (**ननक्षे, नक्ष्** की लिट् लकार) प्राप्त करती है **यस्मिन्** जिसमें **दिवा नक्तं** सृष्टि वा प्रलयकाल (**श्नथिता, श्नथ्** का क्तान्त श्नथित) बंधे हुए (**वैतसेन, वैतसः** = उत्तर दिशा, निघ. 3/29) आगामी चरण की प्रतीक्षा में (**चाकन, कन्** प्रसन्न होना का लिट् प्रतिरूपक) प्रसन्न हुए हैं।

उर्वशी (प्रकृति) सृष्टिकाल में जीवों के लिए वसु धारण करती है सृष्टि के अवसान पर मूल स्वरूप को प्राप्त करती है। सूक्त के मन्त्र 8 में ऋषि पुरूरवा प्रकृति पक्ष से कह रहे हैं – (क्र. 183)

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वाः।।

भाष्य – **यत् सचा** जब संयुक्त हो (**मानुषः निषेवे, निषेवा** = उपभोग करना कोश) मानव के उपभोग के लिए **अमानुषीषु** दैवी (**अत्कं, अत्क** = परिधान,

वै. व्या. पृ. 338) परिधान को **जहतीषु** छोड़ती हुई जगत् रूप में **अश्वाः न** अश्वों की तरह **रथस्पृशः** रथ में युक्त हुई तो **मत्** मुझसे **भुज्युः** भोक्ता **ताः तरसन्ती न** उन तरसती हुई (मृगियों) की तरह **अप अत्रसन्** बुरी तरह त्रस्त हुए।

उर्वशी दैवी शक्ति है जब ब्राह्मी स्थिति को त्यागकर सृष्टि में नियोजित होती है तो उसके अनेकों रूपों को देखकर भोग लालायित जीव भोग करते - करते त्रस्त हो जाता है पर उसके मन की कामना अतृप्त रह जाती है। ऋषि पुरूरवा ऐल जीवात्मा पक्ष से उत्तर देते हैं। (क्र. 184)

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद् भरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्टो अपो नर्य सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः।।

भाष्य - मे मेरी जीव की **काम्यानि** कामनाओं में या जो **अप्या भरन्ती** मेघ में जल की तरह धारण की गयी (**दविद्योत्**, द्युत् = चमकना लङ् लकार) चमकी थी उसने **अपः सुजातः जनिष्टः** उत्तम उत्पत्ति वाली **आपः को** अर्थात् श्रेष्ठतम व्यापक मूल क्रियात्मक तत्त्व को प्रकट किया। **उर्वशी** हे उर्वशी **नर्यः** मनुष्यों को **दीर्घम् आयुः** दीर्घ आयु (प्र तिरत, तृ = पार करना, लोट् लकार) प्रदान कर।

जीवात्मा के पक्ष से ऋषि कह रहे हैं कि जीवात्मा की कामनाओं की पूर्ति के हेतु जगत्-पिता ने सृष्टि रचने का निश्चय कर प्रमुख तत्त्व अप् का सृजन किया अर्थात् हे उर्वशी जीव के भोग के हेतु से ही तेरी (आपः की) उत्पत्ति हुई है। अतः मानव देहधारी जीवों को दीर्घ आयु प्रदान कर उनके ऋण से मुक्त हो क्योंकि उनकी कामना ही तेरे जन्म का कारण है। स्पष्ट है कि उर्वशी कोई नर्तकी नहीं है। ऋषिका उर्वशी प्रकृति की ओर से कहती है - (क्र. 185)

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत् पुरूरवो म ओजः।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म अशृणोः किमभुग्वदासि।।

भाष्य - **इत्था** इस प्रकार (**गोपीथ्याय** = गो - पीथ्याय, पीथः = सूर्य, अग्नि, कोश) लोकों के निमित्त अग्नि (जज्ञिषे, जन् की लिट् ल.) उत्पन्न हुई थी, **तत् मे ओजः** उस मेरे ओज को **पुरूरवः** हे पुरूरवा तूने **हि** निश्चय ही (**दधाथ**, धा लिट् ल.) धारण किया।

सस्मिन् अहन् त्वा विदुषी सब दिन तेरे द्वारा ज्ञानवान् होकर मैंने अशासम् शासन किया है। **न मे अशृणोः** तुमने मेरे को नहीं सुना फिर **किम् वदासि** तूने कैसे कहा है कि (**अभुक्**, भुज् = उपभोग करना) भोगा नहीं है।

प्रकृति कहती है कि लोकों के निमित्त उत्पन्न अग्नि (शक्ति) को जीव ने देह रूप में वा मन इन्द्रियों के रूप में धारण किया। उस जीवात्मा के द्वारा ही मन इन्द्रियों ने चेतनवत् हो प्रकृति के प्रतिनिधि के रूप में जीव पर शासन किया। जीव मन इन्द्रियों के द्वारा प्रस्तुत आकर्षण के वशीभूत हो भोग में भागीदार हुआ। अतः जीव उस दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। यही बात गीता (3/40) में कही गयी है :-

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
ऐतैर्विमोहयत् येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।

इन्द्रिय मन बुद्धि आसक्ति के वासस्थान हैं। इनके द्वारा जीवात्मा मोहित होता है। ऋषि पुरूरवा जीव की तरफ से उतर देते हैं - (क्र. 186)

कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद् विजानन्।
को दम्पति समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत्।।

भाष्य - सूनुः पुत्र जीवात्मा **जातः** देह धारण कर, उत्पन्न हो **कदा** कब **अश्रु न चक्रन्** आंसू न बहाता हुआ **विजानन्** विशेषता से जानता हुआ **पितरं इच्छात्** पिता ईश्वर की इच्छा करेगा **कः** किसने **समनसा दम्पति** समान चित्त वाले प्रकृति पुरुष रूप दम्पति को (**वि यूयोत्**, यु = पृथक् करना, लुङ् लोट्) विशिष्टता से पृथक् किया है **यत्** जो **अग्निः** चेतन (**श्वशुरेषु** = स्व - शूरेषु) स्वयं की बुद्धि वृत्तियों, बलवान् इन्द्रियों में **दीदयत्** चमका होगा।

भावार्थ - जीव मानव देह धारण कर कब ईश्वर की तरफ उन्मुख होगा तथा ईश्वरीय शाश्वत ज्ञान से अभिभूत हो जन्म-मरण रूपी अज्ञान से मुक्त हो दुःख से छूटेगा। पिता परमेश्वर को धारण कर प्रकृति का परित्याग करेगा, इस प्रकार इस दम्पति (ईश-प्रकृति) को पृथक् करेगा। ऐसा वही करेगा जो ज्ञान के प्रकाश से विशेष आलोकित होगा।

ऋषिका उर्वशी प्रकृति पक्ष से उत्तर देती हैं :- (क्र. 187)

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै।
प्र तत्ते हिनवा यस्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः।।

भाष्य - अहं ते प्रति ब्रवाणि मैं तेरे प्रति कहती हूँ **अक्षु चक्रन्** आंसू बहाते हुए, रोते हुए (**न वर्तयते**, वृत् = मुड़ना का ण्यन्त) न लौटने, जीवन धारण करने, जन्म लेने न जा। **शिवायै आध्ये** कल्याण के चिन्तन के लिए **तत्** उस देह को (**ते प्रति हिनव**, हि = प्रेरित करना, लोट्) तेरे प्रति प्रेरित करूँ **यत् ते अस्मे** जो तेरी मेरे

में (आसक्ति) है **परा इहि** उसे दूर कर। **मूरः** अज्ञानी ने **मा अस्तं नहि आपः** मेरे आवास को नहीं पाया है।

प्रकृति कहती है कि हे जीव, तुझे मानव देह कल्याणकारी श्रेय मार्ग की प्राप्ति हेतु दी गयी है रोते, आंसू बहाते जन्म लेने न लौट। शरीर परातत्त्व की प्राप्ति के लिए दिया गया है उस शरीर में आसक्त मत हो। अज्ञान को धारण कर तू मेरे वास्तविक स्वरूप को समझना चाहता है जो असम्भव है। ऋषि पुरूरवा जीव पक्ष से उत्तर देते हैं - (क्र. 188)

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावतं परमां गन्तवा उ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृकासो रभसासो अद्युः।।

भाष्य - सुदेवः उत्तम ज्ञानी **अनावृत्** आसक्ति रहित होकर **परमां** सर्वश्रेष्ठ **परा-अवतं परा** - तत्त्व की रक्षा को **गन्तवै** जाने के लिए उ निश्चिय ही **अद्य** शीघ्र (**प्र पतेत्,** धातु पत् = उड़ना का विधि लि.) प्रकर्षता से उड़ चले **अध अस्तु निर् ऋतेः असत्य प्रपञ्च में उपस्थे** संलग्न, अच्छे प्रकार स्थित में (**शयीत,** विधि लि.) सोते रहोगे **अध एनं** ऐसे को (**रभसासः,** धातु रभ् = पकड़ना) पकड़ने की प्रतीक्षा वाले **वृकासः** काम, क्रोधादिक भेड़िये **अद्युः** खा जाते हैं।

जीव कहता है कि जो असत्य नाम-रूपी संसार में स्थित होता है उसका क्षय अवश्यंभावी है। किन्तु जो आसक्ति रहित हो परा-तत्त्व की खोज में जाता है वह परम पद पाता है।

ऋषिका उर्वशी ने प्रकृति पक्ष से कहा (क्र. 189)

पुरूरवो मा मृधा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता।।

भाष्य - पुरूरवः हे जीव तू **मा मृधाः** उपेक्षा (मेरी) न करे। (**मा प्र पप्तः,** धातु पत् का लुङ् लोट्) तेरा विशेष पतन न हो। **अशिवासः वृकासः** अकल्याणकारी भेड़िये **त्वा मा उ क्षन्** तूझे कदापि नष्ट न करें।

स्त्रैणानि सख्यानि स्त्रियों संबंधी (भोग हेतु) मैत्री भाव **न वै सन्ति** वास्तविक नहीं होती **सालावृकाणां** जंगली भेड़ियों के तुल्य **एता** ये **हृदयानि** हृदयों वाले हैं।

प्रकृति कहती है कि हे जीव, प्रकृति के आकर्षण को कम मत आँक। उससे छुटकारा सरल नहीं है। स्त्री रूप में मेरा स्वरूप दुरुलङ्घनीय है।

ऋषिका उर्वशी ने प्रकृति पक्ष से आगे कहा - (क्र. 190)

यद् विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्त्रः।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृषाणा चरामि।।

भाष्य - यत् जब **विरूपा** विविध रूप वाली मैंने **अचरं** अचर, जड़ एवं **मर्त्येषु** चर जीवों में **रात्रीः शरदः** प्रलयकाल एवं सृष्टिकाल में **अवसम्** वास किया था तब **अह्नः** सृष्टिकाल का **सकृत्** एक साथ किया गया **घृतस्य स्तोकं** आकर्षक बूंद का **आश्नाम्** पान किया था **तात्** एव उसी से **इदं** यहाँ (**तातृषाणा**, धातु तृष् = तृषित होना का कानज. से) तृषित सी हुई **चरामि** विचरण करती हूँ।

पूर्व कल्प में विविध रूप प्रकृति ने सृष्टिकाल में चर-अचर में वास किया था उस पूर्व आस्वाद के कारण इस विविध रूप जगत् के आकर्षण से बंधी पुनः पुनः उसकी उत्पत्ति की इच्छुक हुई गति करती है। प्रकृति कहती है कि उसने मन इन्द्रियादिक देह रूप से जीव में वास कर भोग किया वही आकर्षण उसे पुनः उस भोग के लिए प्रेरित कर रहा है इस कारण वह सृष्टि रचना हेतु उत्सुक है।

ऋषि पुरूरवा जीव पक्ष से कहता है- (क्र. 191)

अन्तरिक्ष प्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे।।

भाष्य - (**विमानीम्** = वि-मानीम् धातु मा का शानज. मान) विशिष्ट मापों से स्थिर किये गये। **रजसः** लोकों से **अन्तरिक्ष प्राम्** अन्तरिक्ष छाया है उर्वशी प्रकृति को **उपशिक्षामि** मैं (जीव) सहायक होता हूँ **सुकृतस्य** उत्तम प्रकार निर्मित सृष्टि का **रातिः** देने वाले स्वामी (ईश्वर) **वसिष्ठः** जीवों में श्रेष्ठ मानव को **त्वा उप तिष्ठान्** तेरे निकट बैठाएगा। तू (**नि** = निग्रह, निश्चय, कोश) निग्रह से **वर्तस्व** लौट आ। **मे हृदयं तप्यते** मेरे हृदय को संताप होता है कि हे प्रकृति तू निग्रह के साथ मेरे पास रहेगी या नहीं।

जीवों में मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। वह प्रकृति के सबसे निकट है। मानव के पास प्रकृति के विशिष्ट साधन वाणी व बुद्धि हैं। इस जगत् में जो अनेकानेक लोक हैं उनसे मानव के अतिरिक्त किसी अन्य जीव का कोई तात्पर्य नहीं है उनका केवल मानव से संबंध है। मानव देहधारी जीव कहता है कि समस्त सृष्टि मानव के बिना निष्प्रयोजन है। अतः हे प्रकृति तू मानव के पास निग्रह से रह, उसे वासनाओं के भुलावे में मत डाल। ऋषिका उर्वशी प्रकृति पक्ष से उत्तर देती है - (क्र. 192)

इति त्वा देवा इम आहुरैल यथेमेतद् भवसि मृत्युबन्धुः।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे।।

भाष्य - इति इस प्रकार ऐड हे जीव त्वा तेरे को **इमे देवाः आहुः** ये देव (शब्द, स्पर्शादि) कहते हैं **यथा ईम** जैसे ही **त्वं** तू **एतत्** इस **मृत्यु बन्धुः** मृत्यु के बन्धन वाला **भवसि** होता है अर्थात् मृत्यु से बँधा जीवन धारण करने वाला होता है, प्रजा मन इन्द्रियादिक तुझ (राजा) के अधीन प्रजा रूप ते तेरे लिये **देवान्** देवों को **हविषा यजाति** हवि की आहुति दंवें अर्थात् इन्द्रिएँ ते जीव के कल्याण हेतु (देवों) विषय रूप ईंधन को प्राण रूप अग्नि में प्रज्वलित करें ऐड हे जीव **स्वर्गः** उ निश्चय ही मोक्ष का भी **त्वं अपि** तू ही **मादयासे** आनंद लेगा।

भावार्थ - हे जीव प्रकृति को बन्धन मत समझ। यह मृत्यु से बँधा दिखाई देने वाला जीवन ही '**मोक्षस्य साधनोऽस्ति**' मोक्ष का साधन है। तेरे कल्याण के हेतु से ही (मेरे) प्रकृति द्वारा प्रदत्त इन्द्रियाँ तेरा विषयों (शब्द, स्पर्शादि) से संपर्क कराती हैं, तू उन विषयों से अनावृत्त होकर आसक्तिरहित हो ऊपर उठ। यदि देह रूप बन्धन प्राप्त न होगा तो अनासक्ति द्वारा मोक्ष का मार्ग भी प्रशस्त न होगा। अस्तु, इस देह को अमृत प्राप्ति हेतु रथ जान।

इस प्रकार सूक्त के मन्त्रों की व्याख्या में पुरूरवः जीवात्मा है तथा उर्वशी प्रकृति का क्रियात्मक रूप आपः या माया है।

अध्याय 13

वेद में न्यूट्रॉन रचना-विज्ञान

प्रकृति अपने मूल स्वरूप में त्रिवर्गी है। प्रकृति के ये तीन वर्ग मित्र:, वरुण: अर्यमन् नाम से कहे गये हैं। इनके स्वरूप के विषय में अध्याय 9 में चर्चा हो चुकी है। वहाँ यह बताया गया है कि वरुण:, मित्र:, अर्यमन् कण रूप हैं। आदिकाल में वरुण के कण क्रिया करने में अग्रगामी कहे गये हैं। वरुण का यह लक्षण उसे धनात्मक चार्ज्ड कणों का समूह होने की पहल करता है। अध्याय 9 में यह भी देखा जा चुका है कि वरुण और मित्र एक उदासीन कण बनाते हैं तथा मित्र कण वरुण के कणों से विपरीत चार्ज वहन करते हैं। अत: मित्र ऋणात्मक कणों का समुच्चय प्रतीत होता है। उपर्युक्त मीमांसा से यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक विज्ञान का प्रोटॉन कहा जाने वाला धनात्मक चार्ज्ड कण वरुण का अंशभूत कण है तथा वरुण में प्रोटॉन के अतिरिक्त अन्य धनात्मक चार्ज्ड कण वर्तमान हैं। इसी प्रकार इलेक्ट्रॉन कहा जाने वाला ऋणात्मक कण मित्र के अन्तर्गत आने वाले कण समूह का एक सदस्य है। मित्र-वरुण के अंशभूत कणों के संयोग से जो प्रथम उदासीन कण बनाता है उसका ऋग्वेद में बहुत महत्त्व आँका गया है तथा उसका नाम वसिष्ठ: कहा गया है। इस ऋग्वेद प्रोक्त प्रथम यौगिक की रचना में स्थायित्व लाने के लिए एक और कण भाग लेता है उस कण का ऋग्वैदिक नाम अगस्त्य: है। अगस्त्य, मित्र-वरुण का अंश नहीं है; अत: यह अर्यमा उदासीन अर्थात् विद्युत् चार्ज से रहित कणों के समूह का सदस्य है। इस प्रकार अगस्त्य: भी उदासीन कण है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार धनात्मक चार्ज्ड प्रोटॉन तथा ऋणात्मक चार्ज्ड् इलेक्ट्रॉन संयोग करके उदासीन कण न्यूट्रॉन बनाते है। पर इस न्यूट्रॉन रचना में एक उदासीन कण न्यूट्रीनो भाग लेता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वसिष्ठ आधुनिक विज्ञान का न्यूट्रॉन है तथा अगस्त्य, एन्टी इलेक्ट्रॉन न्यूट्रीनो है।

इस अध्याय में यह प्रस्थापित किया जाना प्रस्तावित है कि वसिष्ठ: कोई

ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है वरन् यह मूल कणों का महत्त्वपूर्ण यौगिक है तथा ऋग्वेद से वसिष्ठः की रचना संबंधी विचारों को प्रस्तुत किया जाना है।

1. महावसु कौन हैं ?

ऋग्वेद मंडल 7, सूक्त 82 के 2 रे मंत्र में यह बताया गया है कि इन्द्रः (परमात्मा) सम्राट् हैं तथा वरुणः स्वराट् हैं अर्थात् ईश्वर सर्वनियंत्रक सर्वोच्च सत्ता है तथा वरुण अपने सीमित क्षेत्र भौतिक सत्तात्मक जगत् का राजा है। ये दोनों महावसु हैं। मन्त्र है - (क्र. 193)

सम्राटन्यः स्वराटन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः।।

भाष्य - इन्द्रा-वरुणा हे इन्द्र वरुण आप दोनों **महान्तौ** महान् शक्तिशाली महावसु है। **वाम्** आप दोनों में से **अन्यः** एक तो **(सम्राट्)** सर्वोच्च शासक 'नियंता है' **अन्यः** दूसरा **स्व-राट्** अपने सीमित क्षेत्र (भौतिक क्षेत्र) का राजा **उच्यते** कहा जाता है क्योंकि **वरुणः** भौतिक सत्तात्मक तत्त्व है। **वृषणा** हे वर्षणाशील **परमे व्योमनि** परम विस्तृत **दिक्** (स्पेश) में **विश्वे देवासः** समस्त भौतिक शक्तियों ने **वाम्** आप दोनों के **ओजः बलं सं दधुः** तेज और बल को सम्यक् रूप से धारण किया है।

विश्व रचना में इन्द्र निमित्त कारण तथा वरुण जो द्राव्यिक कारण मूल तत्त्वों में से एक है द्राव्यिक कारण का प्रतिनिधि है। वरुण महावसु है अर्थात् तीनों मित्र, वरुण, अर्यमन् महावसु हैं। इस सूक्त के देवता इन्द्र वरुण हैं अर्थात् चर्चा का विषय इन्द्र वरुण हैं। फिर भी इसी सूक्त के अंतिम मन्त्र में इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा का एक साथ उल्लेख इस बात को प्रस्थापित करता है कि जो बात वरुण के लिए प्रयुक्त है वह मित्र, अर्यमा के लिए भी उपयुक्त है अर्थात् तीनों ही महावसु हैं, मन्त्र है - (क्र. 194)

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्नं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे।।

हममें इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा महान् प्रकाश एवं विस्तृत शान्ति प्रदान करें। अदिति की नाशरहित ज्योति को बढ़ाने वाले जगत् उत्पादक देव सविता की कवितामय प्रशंसा को हम बढ़ाएँ।

इस प्रकार इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा शाश्वत सत्ताएँ हैं, महावसू हैं। इन्द्र सृष्टि का निमित्त कारण (efficient cause) अर्थात् रचयिता ईश्वर वाचक है तथा मित्र, वरुण, अर्यमा प्रकृति के तीन संयुक्त रूप से मूल उपादान कारण या द्राव्यिक कारण (material cause) के वाचक हैं। उपर्युक्त ऋचा से स्पष्ट है कि ऋग्वेद ने महावसु तथा वसु में भेद माना है। महावसु मूल सत्तात्मक तत्त्व हैं जो वसु का कारण है अनेन सर्वम् वसन्ति तथा वसु, महावसुओं के यौगिक हैं महावसुओं के परिणाम हैं।

2. वसिष्ठः शब्द का निर्वचन

वसिष्ठः शब्द की व्युत्पत्ति 'वस्' धातु से हुई है। वैदिक व्याकरण के अनुसार वसिष्ठः शब्द 'वसु' से बना है तथा इसका अर्थ है–सर्वोत्तम (वै. व्या. पृ. 129)।

यह कहा जा चुका है कि महावसु मूल तत्त्वों की संज्ञा है तथा वसु संज्ञा है द्रव्यों की अर्थात् मूल से बने यौगिकों की। वसिष्टः का शब्दार्थ है सर्वोत्तम अर्थात् वसिष्ठ वसुओं, यौगिकों की श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोत्तम है, सर्वोत्तम वसु है।

वसिष्ठः शब्द के निर्वचन पर टिप्पणी करते हुए सायण (ऐ.ब्रा. 1/5/2) कहते हैं–**वसिष्ठःऽतिशयेन निवासहेतुः।**

जो अतिशय निवासहेतु है स्थायी निवास का कारण है। **देवानाम् स्वस्वस्थाने निवासहेतुत्वादग्नेर्वसिष्ठत्वम्** अर्थात् देवताओं को अपने-अपने स्थान में निवास प्रदान करने वाला अग्नि का वसिष्ठपन है।

इस भाष्य में मूल आशय यह है कि देवताओं (भौतिक द्रव्यों) के निवास, सत्ता का हेतु जो तेज है वह वसिष्ठ है। द्रव्यों की सत्ता का हेतु परमाणु है, परमाणु की सत्ता का हेतु नाभिक (nucleus) है। नाभिक की सत्ता हेतु न्यूट्रॉन है।

वसिष्ठ अतिशय सत्ता का हेतु होने से अर्थात् द्रव्य सत्ता का परम हेतु होने से विज्ञान द्वारा अन्वेषित न्यूट्रॉन है। इस प्रकार वसिष्ठ नाभिक का प्रमुख घटक है। अतः परमाणु रचना का प्रथम चरण है।

3. वसिष्ठः परमाणु निर्माण की महत्त्वपूर्ण शृंखला है

वसिष्ठः के विषय में जानकारी हेतु ऋग्वेद मंडल 7, सूक्त 33 के 12 वें व 9 वें मन्त्र पर विचार किया जाता है - (क्र. 195)

स प्रकेतोभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्त्रदान उत व सदानः।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परिजज्ञे वसिष्ठः।।

भाष्य - सः वह वसिष्ठ **प्रकेतः** उत्तम ज्ञानी **उभयस्य** द्यु-लोक पृथ्वी, प्रकाशित अप्रकाशित लोकों का **प्रविद्वान्** उत्तम ज्ञाता, **सहस्त्रदानः** सहस्त्रों दान करने वाला **उत व सदानः** वह निश्चय ही महान् दानी है।

यमेन नियंता प्रभु के द्वारा **ततं** फैलाये गये **परिधिं** महान पट को **वयिष्यन्** बुनते हुए **वसिष्ठः** यह वसिष्ठ **अप्सरसः आपः** के मौलिक सारभूत अंश से **परिजज्ञे** उत्पन्न हुआ है।

पूर्व अध्याय में ऋग्वेद की आन्तरिक साक्षी के आधार पर विस्तृत विवेचन किया जा चुका है कि अप्सरा पद (मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था) अप् सारिणी शक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

मंत्र के पूर्वार्द्ध से ज्ञात होता है कि वसिष्ठः कोई ज्ञानी ऋषि है किन्तु यह धारणा गलत है। नियंता प्रभु द्वारा फैलाये पट को बुनने वाला, प्रभु के द्वारा विस्तारित महान् निर्माण कार्य की वह एक महत्त्वपूर्ण श्रृंखला है, कोई सर्वसमाविष्ट भौतिक सत्ता है जिसे वेद ने अपनी रूपकशैली में इस प्रकार व्यक्त किया है। यह वसिष्ठ, परमाणु आदि के निर्माण में अनिवार्य कड़ी है। वसिष्ठ सहस्त्रदानी है, उसके दान से सहस्त्रों प्रकार के परमाणु एवं अणुओं की उत्पत्ति हुई है। अब इसी सूक्त के 9 वें मन्त्र पर विचार किया जाता है मन्त्र है - (क्र. 197)

त इन्निण्यं हृदस्य प्रकेतैः सहस्त्रवल्शमभि सं चरन्ति।
यमेन ततं परिधिम् वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः।।

भाष्य - ते **इत्** वे यहाँ **हृदस्य** हृदय के **प्रकेतैः** ज्ञान से **सहस्त्रवल्शं** सहस्त्रों शाखाओं, उपशाखाओं वाले (**निण्यं**) गुप्त द्रव्य को **अभि सं चरन्ति** साथ सम्यक् गमन करते हैं **यमेन ततं** नियन्ता प्रभु के द्वारा विस्तारित **परिधिं** महान् पट को **वयन्तः** बुनते हुए (**वसिष्ठाः** बहु वचन) वसिष्ठ गण **अप्सरसः** अप् **सारिणी** शक्तियों के (विस्तार के) **उपसेदुः** पास रहते हैं।

यदि कोई अप्सरा को दिव्याँगना स्त्री मान लें तो वैदिक ऋषि के दर्शन में क्या दोष है। यह पूर्व विशद रूप से निर्धारित हो चुका है कि आपः मूलतत्त्व की क्रियात्मक अवस्था है तथा अप्सरा पद अप् सारिणी शक्तियों के लिए आया है (अ. 11)। यह समस्त विवरण भौतिक नाभिकीय अवस्था का है।

मन्त्र में कहा गया है कि वसिष्ठों को हृदय के गुप्त स्थान का ज्ञान है। रूपक भाषा में कथित मन्त्र पदों में नाभि के प्रमुख भाग वसिष्ठ (= न्युट्रान) के गुणों का विवरण है। हृदय के गुप्त भाग के रूप में नाभि के प्रमुख अंश परमाणु के अन्तर्वर्ती गुप्त क्षेत्र का कथन है जिसका ज्ञान अत्यधिक आधुनिक है। ये वसिष्ठ गण सहस्त्रों शाखाओं के साथ सम्यक् गमन करते हैं। ये सहस्त्रों शाखाएँ हैं परमाणु, जो अनेकानेक प्रकार के हैं किन्तु जिनमें नाभि (न्यूक्लियस) सम्यक् रूप से वर्तमान रहती है। ये नियन्ता (प्रभु) के द्वारा फैलाये गये इस द्रव्य जाल रूपी वस्त्र को बुनते हैं। यह एक रूपक है वसिष्ठः कोई बुनकर नहीं है। वसिष्ठः परमाणु की नाभि का अनिवार्य अंग है वसिष्ठ के बिना नाभि रचना संभव नहीं है। नाभि रचना पर परमाणु रचना आधारित है तथा परमाणु रचना पर द्रव्य-जगत्। अतः द्रव्य के उत्तरोत्तर विस्तार में वसिष्ठ की प्रमुख भूमिका है। ये अपसराः अप् सारिणी शक्तियों के पास बैठते हैं अर्थात् ये नाभिक श्रेणी के द्रव्य हैं।

सहस्त्र शाखाओं के साथ सम्यक् गमन करने वाले, विश्व पट को बुनने वाले, आपः के अंशों के साथ बैठने वाले ये वसिष्ठः कोई व्यक्ति नहीं हैं वरन् परमाणु के अनिवार्य अंग हैं, नाभि के प्रमुख भाग हैं। हृदय का रूपक नाभि का द्योतक है। भौतिक द्रव्यों के शृंखलाबद्ध निर्माण व वस्त्र बुनने के रूपक को समझाता है।

4. वसिष्ठः उत्पत्ति विषय

पूर्व अनुच्छेदों में वसिष्ठः के स्वरूप के विषय में प्रकाश डाला गया है। अब वसिष्ठ की उत्पत्ति संबंधी विचारों पर ऋग्वेद की आन्तरिक साक्षी भूत ऋचा से प्रकाश डाला जाता है। ऋचा है - 7/33/11 (क्र. 197)

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त।।

भाष्य - **वसिष्ठ** हे वसिष्ठ तू **मैत्रावरुणो** मित्र-वरुण **असि** है, मित्र-वरुण का सम्मिलित रूप हैं।

उत ब्रह्मन् तथा हे ब्रह्म शक्ति तू **उर्वश्याः** मूल तत्त्व की समग्र रूप देवी अदिति नाम से आख्यात उरू वशिनी बड़ी इच्छा वाली के **मनसः** मानसिक संकल्प मात्र से (अधि, उपसर्ग = आधार, ऐश्वर्य) प्रमुख ऐश्वर्य के रूप में **जातः** उत्पन्न हुआ है।

दैव्येन दिव्य **ब्रह्मणा** महान् परमेश्वर द्वारा (स्कन्नं, स्कन्न भू. का. कृ.)

टपकाये गये, प्रदत्त द्रप्सं सारभूत तेज अंश को विश्वे देवा: समस्त सूक्ष्म स्थूलभूत रूप दिव्य शक्तियों ने (पुष्करे, पुष्करं अन्तरिक्षं निरु. 5/3, पुष: कित् इति करन् पुष्करं, क्र्या. पर. पुष् = पुष्टौ, हला. कोश) अन्तरिक्ष में, (परमाणु रूपी) पुष्ट तत्त्व में त्वा तुझे (अददन्त, दा की लङ् लकार) धारण किया।

ऋचा से निम्नलिखित तथ्य प्रस्थापित होते हैं :-

1. वसिष्ठ:, मित्र-वरुण के अंशों से निर्मित्त यौगिक है।
2. वसिष्ठ: ब्रह्म शक्ति है।
3. वसिष्ठ: उर्वशी के मनस: जात: है अर्थात् वसिष्ठ: ब्राह्मी शक्ति के संकल्प मात्र से हुआ है न कि वास्तविक प्रजनन से।
4. द्रप्सं ब्रह्म प्रदत्त सारभूत भौतिक तेज अंश है जो कि ब्रह्म से च्युत हुआ है न कि मित्र-वरुण से।
5. ऋचा के अनुसार वसिष्ठ मित्र-वरुण का सम्मिलित पुत्र नहीं है। अत: दो पिता से उत्पत्ति वाली यह कथा कपोल कल्पित है। ऋचाओं का तात्पर्य न समझ पाने के कारण गढ़ी गयी है।
6. इस ऋचा में वसिष्ठ की उत्पत्ति से ब्रह्म (ईश्वर) को संबंधित किया गया है। उर्वशी (उरू+अश्) व्यापक प्रकृति है (अ. 11)। मित्र-वरुण मूल कणों के समुच्चय हैं अत: मित्र-वरुण से उद्भूत वसिष्ठ कोई महत्त्वपूर्ण द्रव्य संरचना का प्रतीक है। पट रचना में जैसे गठान (knots) महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है वैसे ही यह वसिष्ठ द्रव्य रूप पट की रचना में नाभि रूप गठान की रचना का महत्त्वपूर्ण अंग है।
7. विश्वे देवा, जगत् में विद्यमान सूक्ष्म, स्थूलभूत रूप पट अर्थात् निर्मित द्रव्य जाल के तन्तु हैं। पुष्कर - पुष्ट तत्त्व परमाणु है जो समस्त सूक्ष्म स्थूलभूत का अनिवार्य आधारभूत स्तम्भ है जिस पर जगत् स्थित है तथा परमाणु स्वयं नाभि (nucleus) रूप मूलाधार पर ठहरा है। इस प्रकार ऋचा अपनी अद्भुत अलौकिक वाणी में विज्ञान के महत्तम सिद्धातों को रूपक शैली में संजोये है।
8. द्रप्स: ब्रह्म से च्युत हुआ सारभूत तेज अंश है जो भौतिक जगत् रचना का आदि मूल कारण एवं स्रोत है; यह तथ्य गत अध्याय में ऋग्वेद की आन्तरिक साक्षीभूत ऋचाओं से निर्धारित किया जा चुका हे। वहाँ चर्चित इस ऋचा की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता है -

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युत धिष्णायोपस्थात्।

यहाँ द्रप्सः को किरण रूप कहा गया है तथा इस द्रप्सः को ब्रह्म की बुद्धि द्वारा मूल उपादान कारणभूत ब्रह्म के भौतिक प्रकृत्यंश रूपी बाहु से च्युत हुआ, ब्राह्मी अवस्था से ईश के संकल्प द्वारा विचलित हो टपका हुआ मूल प्रकृति का शक्त्यंश कहा गया है।

5. वरुण-मित्र वर्गों के अंशभूत कणों से वसिष्ठः की उत्पत्ति

वरुणा-मित्र के अंशभूत कण विपरीत धर्मी चार्ज वहन करते हैं। इन कणों के मात्र सन्निकट आने पर एक उदासीन कण की उत्पत्ति होती है। इस संयुक्त उदासीन परिणाम को एक और उदासीन अगस्त्य नामक कण आकर संयुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो स्थिर परिणाम प्राप्त होता है वह परमाणु की नाभि का प्रमुख अंग है उसका ऋग्वैदिक नाम वसिष्ठ तथा आधुनिक वैज्ञानिक नाम न्यूट्रॉन है। अब वरुण-मित्र से वसिष्ठ की उत्पत्ति संबंधी विषय पर ऋचा से प्रकाश डाला जाता है - (क्र. 198)

विद्युतो ज्योतिः परि सञ्जिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आ जभार।।

भाष्य - **विद्युतः ज्योतिः** इलेक्ट्रिक जार्च का **सं** समान रूप से **परि जिहानं** पूर्ण परित्याग किये हुए **मित्रावरुणा** मित्र-वरुण ने **यत्** जब **त्वा अपश्यतां** तुझे देखा **तत्** वह **ते** तेरा **जन्मः** जन्म है **उत्** तथा **एकं** एक जन्म वह है **यत्** हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ जब **त्वा** तुझे **अगस्त्यः** अगस्त्य ने **विशः** प्रजा में **आ जभार** धारण किया है।

मित्र-वरुण के अंशभूत कण, जो वसिष्ठ की रचना में भाग लेते हैं, समान मात्रा में किन्तु विपरीत स्वभाव वाले विद्युत् चार्ज वहन करते हैं; एक धनात्मक है तो दूसरा ऋणात्मक है। मित्र-वरुण के देखने मात्र से वसिष्ठ की उत्पत्ति होती है अर्थात् जब मित्र-वरुण के अंशभूत कण पास-पास आते हैं तो विपरीत विद्युत् चार्ज परस्पर मिलकर तटस्थ (neutral) हो जाता है और एक उदासीन कण की उत्पत्ति होती है। विज्ञान से हमें ज्ञात है कि इलेक्ट्रॉन प्रोटॉन संयोग से जो न्यूट्रॉन बनता है, वह संगठन अस्थायी (Unstable) होता है। जब इस यौगिक में एक कण न्यूट्रीनो आकर संयुक्त हो जाता है तब स्थायी न्यूट्रॉन बनता है।

ऋचा में कहा गया प्रथम संयोग है जिसमें वरुण-मित्र भाग लेते हैं। इस संयोग से बने यौगिक में एक और अगस्त्य नामक कण आकर मिल जाता है। इस तीन कणों

के संयोग को द्वितीय जन्म कहा गया है। इस प्रकार वसिष्ठ की उत्पत्ति होती है। जैसा कि कहा जा चुका है मित्र-वरुण के अंशभूत कण क्रमशः इलेक्ट्रॉन प्रोटॉन हैं तथा अगस्त्य विज्ञान का एन्टी-इलेक्ट्रॉन न्यूट्रीनो है। यह वसिष्ठ विज्ञान का न्यूट्रॉन है। प्रथम संयोग (जन्म) अस्थिर और अगस्त्य के संयोग से होने वाला दूसरा जन्म स्थायी न्यूट्रॉन है।

यह वसिष्ठ परमाणु की नाभि का प्रमुख घटक है। यह नाभि में वर्तमान रहता हुआ नाभि के साथ अनेकों परमाणुओं की रचना में भाग लेता है। इस प्रकार यह विवित्र प्रकार के उत्पन्न परमाणु प्रजा को धारण करता है। ऋचा में न्यूट्रॉन रचना विज्ञान है, व्यक्ति के जन्म संबंधी घटना या इतिहास नहीं है। स्थायी न्यूट्रॉन रचना का सूत्र भी ऋचा में है।

मित्र-वरुण की दृष्टिमात्र से वसिष्ठ का जन्म होता है। अतः उर्वशी अप्सरा को देखकर मित्र-वरुण देवताओं के वीर्य के पतन की कथा निराधार है। इस ऋचा में स्पष्ट कहा गया है कि मित्र वरुण ने विद्युत् त्यागते हुए (त्वा) वसिष्ठ को देखा न कि उर्वशी को, तब वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई। इस ऋचा में उर्वशी का कोई उल्लेख भी नहीं है। मित्र-वरुण की मात्र दृष्टि से अर्थात् चार्जड् कणों के सम्पर्क मात्र से वसिष्ठ की उत्पत्ति होती है।

मित्रः वरुणः प्रकृति के दो वर्ग हैं। पूर्व ऋचा का यह कथन कि वसिष्ठ उर्वशी के मानसिक संकल्पमात्र से जन्मा, केवल इस तथ्य को उजागर करता है कि मित्र-वरुण के अंशभूत कणों में परस्पर क्रिया करने का स्वाभाविक गुण (affinity) है।

6. वसिष्ठः की रचना का विज्ञान व परिभाषा

वसिष्ठ की परिभाषा एवं रचना विज्ञान हेतु बाह्य स्रोत की आवश्यकता नहीं है। ऋचा 7/33/13 में वसिष्ठ की रचना विधि एवं परिभाषा दी हुई है। मन्त्र है-(क्र. 199)

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानं।
ततः ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्।।

भाषार्थ - ह प्रसिद्ध है कि **जातौ इषिता** उत्पत्ति के इच्छुक मित्र-वरुण **कुम्भे** किसी (उपयुक्त) पात्र में **समानं रेतः** बराबर-बराबर शक्ति के कण **सिषिचतुः** गिराएँ, सींचें **ततः** उससे **सत्रे** संगतिकरण में ह निश्चय ही **मध्यात् मानः** मध्यमान, तटस्थ, उदासीन (neutral) (उत इयाय, लिट, लकार) वहाँ होता है, **ततः जातं** इस प्रकार उत्पन्न हुए को **ऋषिं वसिष्ठं** वसिष्ठ ऋषि **आहुः** कहते हैं।

पूर्व मन्त्र में मित्र-वरुण द्वारा समान मात्रा में विद्युत् त्याग की बात स्पष्ट रूप से आ चुकी है। 'रेतः' का अर्थ कण यहाँ चार्ज्ड कण है। समान मात्रा में विद्युत् के मिलन से ही मध्यमान (न्यूट्रल) की स्थिति होती है। मन्त्र में स्पष्ट रूप से मित्र-वरुण के अंशभूत कणों से उदासीन कण वसिष्ठ की रचना की बात है। मन्त्र में वसिष्ठ की रचना किस प्रकार होती है इसका निर्देश है। अतः मन्त्र में एक सार्वकालिक सत्य है। एतदर्थ वसिष्ठ व्यक्ति नहीं प्राकृतिक द्रव्य है। ऋचा में उर्वशी का अभाव सत्य स्थिति को प्रतिष्ठित करता है। अतः देवता शब्द की तरह ऋषि शब्द का प्रयोग भौतिक शक्ति के लिए हुआ है। 'ऋषि' शब्द ऋष् (गतौ) धातु से गमनशील पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है। निरूक्त 10/26 में ऋषि को ज्योति कहा गया है -

'सप्त ऋषीणानि ज्योतींषि'

उसी भाव से यजुर्वेद 34/55 में देहगत शक्तियों के लिए कहा गया है -

'सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे'

देह में सात अर्थात् सात शक्तियाँ स्थित हैं।

इसी प्रकार अथर्ववेद काण्ड 11, सूक्त 1 के प्रथम मन्त्र में सप्त ऋषयः पद भौतिक शक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। मन्त्र है - (क्र. 200)

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा।
सप्त ऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह।।

भाष्य - अग्ने जायस्व हे अग्ने प्रकट हो (**इयं नाथिता**, भवा. नाथ् = याचना करना) यह **याचिता अदितिः** मूल मातृशक्ति पुत्रकामा परिणामों की, सृष्टि की इच्छा वाली **ब्रह्म ओदनं** ब्रह्म शक्ति के अंश रूप अन्न को पचति पकाती है। **भूतकृतः** भूतों को, प्रकृति की अवस्थाओं को बनाने वाले **सप्त ऋषयः** सात ऋषि **ते वे त्वा** तुझ अग्नि को प्रजया सह शक्तियों सहित **इह मन्थन्तु** अवश्य मंथन करें।

आदि सृष्टिकाल में मूल तत्त्व पकाया जाता है तब बृहत् अग्नि ताण्डव (बिग-बैंग) होता है। सृष्टि उत्पत्ति के प्रारंभिक चरणों में प्रकृति अनेक अवस्थाओं से निर्गम करती, गुजरती हुई विकास की ओर अग्रसर होती है। तदन्तर महाभूतों को उत्पन्न करने वाले सप्त वर्गी परमाणुओं का प्रकृति के अनेक कणों के साथ मन्थन होता है। उन्हीं सप्तवर्गी परमाणुओं को यहाँ सप्त ऋषि कहा गया है। यहाँ स्पष्ट रूप से सप्त ऋषि को भूतकृतः भूतों को बनाने वाला उपादान कारण कहा गया है। विदित है कि भूतों (द्रव्यों) को बनाने वाले परमाणु ही हैं।

इसी सूक्त के तीसरे मन्त्र में पुनः '**सप्त ऋषयः भूतकृतः**' पद का प्रयोग है।

अथर्ववेद के इसी काण्ड के तीसरे विराड् अन्न सूक्त में सप्त ऋषियों को प्राणापानः, प्राण-अपान, प्राणवायु के दो भेद कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि ऋषि शब्द का प्रयोग भौतिक शक्तियों के लिए हुआ है।

जब पूर्व संदर्भित सूक्त के 8 वें मन्त्र से विषय पर प्रकाश डाला जाता है। मन्त्र है - (क्र. 201)

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः।।

भाष्य - हे मैत्रावरुण तुम दोनों **सूर्यस्य ज्योतिः** इव सूर्य के प्रकाश की तरह तथा **वातस्य प्र जवः इव** वायु के प्रकर्ष वेग की तरह वसिष्ठ रूप से (**वक्षथस्**, वह = ले जाना की लेट् ल. म. पु. द्वि. व.) ले जाते हो। **एषां महिमा** इनकी महिमा **समुद्रस्य इव गभीरः** समुद्र की तरह गंभीर है, गहरी है। **वसिष्ठाः वः** हे वसिष्ठो, आपकी **स्तोमः** कीर्ति **अन्येन** अन्य के द्वारा (**न अनु एतवे**, तुमर्थ कृ.) अनुकरण करने योग्य नहीं है।

ऋचा में चर्चा वसिष्ठ की नहीं, वसिष्ठ गण की है। वसिष्ठ जातिवाचक है यह एक वर्ग का सूचक है जिसकी वाहक शक्ति प्रकाश के तुल्य व गति वायु के तुल्य है। इनका महत्त्व समुद्र की तरह गहरा एवं रहस्यमयी है। इस प्रकार हर दृष्टिकोण से यह प्रस्थापित होता है कि वसिष्ठ भौतिक सत्ताएँ है, मूल तत्त्व के नाभिक परिणाम हैं।

ऋग्वेद 7/95/6 वें मन्त्र में कहा गया है -

अयमु ते सरस्वती वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।

सरस्वती हे **सुभगे** उत्तम ऐश्वर्यशालिनी सरस्वती **अयम् वसिष्ठः** इस वसिष्ठ ने उ निश्चय ही ते तेरे लिये **ऋतस्य द्वारौ** प्राकृतिक प्रवाह के दो द्वारों को **व्यावः** खोल दिया है।

भावार्थ - ईश्वरीय ज्ञान क्रिया की प्रतिमूर्ति ऋतवाही सरस्वती[1] से यह कहा जा रहा है कि वसिष्ठ ने इस न्यूट्रॉन ने परमाणु रचना की दिशा में दो द्वारों को खोला है अर्थात् दो प्रकार की प्रमुख नाभि रचना के लिए मार्ग प्रशस्त कर द्रव्य रचना

1. सरस्वती - सरो नीरं ज्ञानं वा तद्वद् रसो वास्त्यस्या इति।
जो सरोवर में जल की तरह ज्ञान रूप रस धारण करती है । (हल. कोश)

अर्थात् महाभूत रचना के प्राकृतिक प्रवाह को गति दी है। जगत् में विद्यमान द्रव्य संरचना के तारतम्य में हाईड्रोजन तथा हीलियम इन दो प्रकार की नाभियों की प्रमुख भूमिका है। महाविस्फोट के बाद द्रव्य भाग की बनावट हीलियम 26 प्रतिशत (भार) तथा हाईड्रोजन 74 प्रतिशत (भार) के अनुपात में होती है। इन दो नाभिकों के महत्त्व की बात रूपक भाषा में कही गयी है।

अध्याय 14

शक्ति के भेद

पूर्व अध्यायों में मूल तत्त्व, उसके तीन भेद व द्रव्य की अवस्थाओं पर प्रकाश डाला गया है। अदिति मूल तत्त्व (प्रकृति) के तीन वर्गों की ब्राह्मी अवस्था है। सृष्टि रचना के हेतु नियोजित होते ही मूल तत्त्व की क्रियाशील अवस्था आरंभ हो जाती है जिसे ऋग्वेद में आप: प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। सृष्टि में नियोजित होने पर भौतिक कार्य शक्ति के दो भेद हो जाते हैं। एक भेद के द्वारा भौतिक रासायनिक जगत् धारण किया जाता है तथा दूसरे भाग से वनस्पति व जैविक (बायोलॉजीकल) द्रव्य धारण किया जाता है। इन दो भागों को ऋग्वेद में क्रमश: सोम व पूषा[1] शक्ति के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। पूर्व लेख में बताया जा चुका है कि सोम प्रकृति का विकिरण अंश है। इस विकिरण अंश में समस्त भौतिक रासायनिक द्रव्य समुच्चय निहित कर दिया गया है तथा इससे स्वरूप से भिन्न भौतिक सत्ता के उस भाग को, जिससे वनस्पति व जीवनी शक्ति उद्‌गत होती है, पूषा विभाग में सन्निहित किया गया है। इस प्रकार यह पूषा विभाग वनस्पति व प्राणि जीवन के हेतुभूत आधुनिक (बायोलाजीकल भाग) प्राणिशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

1. भौतिक सत्ता के रासायनिक व बायोलॉजीकल दो भेद

ऋग्वेद मण्डल 2, सूक्त 35 के 8 वें मन्त्र में बताया गया है कि क्रियात्मक मूल तत्त्व से दो शाखाएँ प्रभूत होती हैं, मन्त्र है – (क्र. 202)

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्त्र उर्विया विभाति।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरूधश्च प्रजाभि:।।

भाष्य – अप्सु क्रियात्मक मूल तत्त्वों में दैव्येन दिव्य (ईश्वरीय) प्रेरणा से य: जो शुचिना पवित्र ऋतावा सत्य प्राकृतिक नियमों के द्वारा अजस्र निरन्तर उर्विया

1. पूषा (पुषन् = पुष् + कनिन्) पूषतीति पुष् = पुष्टौ (पुष् = पोषण करना, भ्वा. दिवा. पोषति, पुष्यति)

विविध रूपों में विभाति प्रकाशित होता है अस्य भुवनानि इत् वया इसके समस्त लोक यहाँ शाखाएँ हैं प्रजाभिः च प्राणियों के साथ अन्य (वया) अन्य प्राण रूप (जैविक) शाखा वीरूधः प्र जायन्ते वनस्पतियाँ विविध रूपों में उत्पन्न होती हैं।

क्रियात्मक शक्ति की एक शाखा से लोकादि भौतिक रासायनिक द्रव्यों की उत्पत्ति होती है तथा दूसरी प्राण रूप शाखा से वनस्पति व प्राणि जीवन की उत्पत्ति हुई है। इन दो वर्गों को क्रमशः सोम व पूषा विभागों के अन्तर्गत निहित किया गया है। ऋग्वेद मण्डल 2, सूक्त 40 का देवता सोम पुषन् व अदिति है। मन्त्र का ऋषि गृत्समद है। सूक्त में सोम-पूषणा दो वर्गीकरण के विषय में विवेचन किया गया है। सूक्त का प्रथम मन्त्र है - (क्र. 203)

सोमा पूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम्।।

भाष्य - हे सोम पूषन् तुम दोनों **रयीणां जनना** समस्त भौतिक पदार्थों के उत्पन्न करने वाले **जनना दिवः** द्युलोक के उत्पन्न करने वाले **पृथिव्याः जनना** पृथ्वी के उत्पन्न करने वाले हो **जातौ** उत्पन्न होकर वे दोनों **विश्वस्य भुवनस्य** समस्त लोकों की **गोपौ** रक्षा करने वाले हैं। **देवाः** विद्वानों ने **अमृतस्य नाभिम्** नाशरहित पदार्थ के मूल स्रोत मूलाधार के विषय में **अकृण्वन्** प्रकाश डाला है अथवा देवों ने तुम दोनों को अमृत का केन्द्र मूल स्रोत बताया है।

मन्त्र में भौतिक पदार्थ को अविनाशी कहा गया है। सोम पूषन् इन दो वर्गों से समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है वे ही समस्त द्रव्य सत्ता को शक्ति प्रदान करते हैं। मन्त्र में पदार्थ के अन्ततम (अल्टीमेट) मूल स्वरूप की जिज्ञासा है। इस जिज्ञासा का उत्तर सूक्त के अंतिम मन्त्र में है। आगामी मन्त्र है - (क्र. 204)

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्याँ जनदुस्त्रियासु।।

भाष्य - समस्त पदार्थ **इमौ जायमानौ** इन दोनों उत्पन्न होती हुई **देवौ** दिव्य शक्तियों का **जुषन्त** सेवन करते हैं। **इमौ** ये दोनों **अजुष्टा** न सेवन किये हुए भाग को **तमांसि** अंधकार में, अविज्ञेय रूप में **गूहताम्** छिपा कर रखें, रखते हैं। **इन्द्रः** सूर्य, विद्युत् **आभ्याम् सोमापूषभ्याँ** इन सोम पूषा से (**उस्त्रियासु**, **उस्राः** = किरण रश्मि निघ. 1/5) प्रकाश किरणों में **आमासु अन्तः** अनपक्व, अनपकी वनस्पतियों के अन्त में **पक्वम्** पक्व रस को (जनत्, लुङ् लोट्) उत्पन्न करें।

मन्त्र में यह कहा गया है कि सूर्य से, विद्युत् से ये दो शक्तियाँ सोम विकिरण

व पूषा उत्पन्न होते हैं। समस्त द्रव्य इनसे शक्ति ग्रहण करते हैं। वनस्पति में रसों का परिपाक होता है। सूर्य या विद्युत् शक्ति दो रूपों रासायनिक एवं प्राण में विभक्त हो कार्यशील हो जाती है। आगामी मन्त्र है – (क्र. 205)

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम्।।

भाष्य – मनसा युज्यमानं ज्ञान से संयुक्त किये गये **अविश्वमिन्वं** दृश्य जगत् के परे तक **विषूवृतं** सर्वत्र व्याप्त **रजसः विमानं** विशिष्ट नाप से स्थापित लोक समूह वाले **सप्त चक्रं** सात परमाणु रूपी चक्र तथा सप्तवर्गी (पाँच महाभूत, दिक् काल) आयाम वाले **पञ्च रश्मिम्** पाँच विषय शब्द रूप स्पर्श रस गंध के **तं रथं** उस गमनशील जगत् रूपी रथ को **वृषणा** हे वर्षणाशील सोम पूषन् आप दोनों **जिन्वथः** शीघ्रगामी बनाते हैं। अथवा

अविश्वमिन्वं अविद्यमान पदार्थ तक भी ले जाने की शक्ति से युक्त **मनसा युज्यमानं** मन से युक्त **पञ्च रश्मिम् विषूवृतं** पाँच ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया से आवृत्त तम उस **सप्त चक्रं** सप्त चक्र वाले देह रथ को **वृषणा** हे वर्षणशील सोम पूषणा आप दोनों **जिन्वथः** चलाते हैं जैसा कि **विमानं रजसः जिन्वथः** विशिष्ट माप से प्रस्थापित लोक समूह को **आपः** चलाते हैं।

इस मन्त्र में सोम पूषणा के कार्यों के दो विभाग किये गये हैं। सोम पूषा जिस क्रम में आये हैं उससे विदित होता है कि सोम शक्ति से आकाश में ज्योतिपिण्ड विशिष्ट माप से प्रस्थापित हुए हैं। पूर्व अध्याय में यह देख चुके हैं कि सोम विकिरण लोकों के स्थायित्व में आधारभूत शक्ति है। सोम के कारण ही गुरुत्वाकर्षण प्रभावशील है।

पूषा शक्ति वनस्पति में रसों का परिपाक करती है। इसी शक्ति से उद्गत सूक्ष्म किरणों से देह में स्थित मन इन्द्रियादिक संचालित होते हैं। पूषा प्राण संचालक शक्ति है। मन बुद्धि के साथ पंच ज्ञानेन्द्रियों वाली यह देह सप्त चक्रीय रथ है।

प्रश्नोपनिषद् में सोम पूषा जोड़े का नाम रयि–प्राण दिया गया है। वहाँ प्रथम प्रश्न के उत्तर में महर्षि पिप्लाद कहते हैं –

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत्।
स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं च इति।
एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यतः।

प्रजा उत्पत्ति की इच्छा वाले प्रजापति ने तप करके रयि और प्राण नाम के जोड़े को उत्पन्न किया कि ये मिलकर बहुत प्रकार के जीव प्रजनन करेंगे।

रयि से भौतिक रासायनिक द्रव्य सत्ता एवं प्राण से सभी जीवों के रक्ताणु वीर्याणु उत्पन्न हुए। इस प्रकार वनस्पति से लेकर जैविक सत्ता का संचालन प्राण शक्ति से होता है। इस प्राण शक्ति को ही ऋग्वेद ने पूषन् (= पुष्ट करने वाला) पोषक अंश कहा है।

ध्यान रहे, चेतन जीवात्मा प्राणशक्ति से सर्वथा पृथक् है। जीवात्मा अजन्मा तत्त्व है। इन्द्रिय व मन करण हैं, भौतिक साधन हैं जो प्राण शक्ति से उद्भूत हैं व संचालित हैं। प्राण देह का संचालन करने वाली भौतिक शक्ति है जो अन्न, जल, वायु पर आश्रित है। इस प्रकार प्राणशक्ति का पोषण वनस्पति, जल व वायु से होता है। यही प्राणशक्ति विभक्त हो इन्द्रियादिक करणों को शक्ति प्रदान करती है। ये इन्द्रियादिक सूक्ष्म रसों, किरणों से संचालित हैं। जीवात्माा इनसे पृथक् है। उसके लक्षण (characteristics) हैं कर्तृत्व, ज्ञातृत्व व भोक्तृत्व अर्थात् निश्चय करना, ज्ञान करना, सुख दुःख की अनुभूति करना।

देह, इन्द्रियादिक तथा जीवात्मा इस पूरे समष्टि रूप की संज्ञा पुरुष है। सूक्त की आगामी ऋचा है - (क्र. 206)

दिव्य १ न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे।।

भाष्य - उच्चा दिवि ऊपर जो आकाश में **सदनं** निवास **चक्रे** किये हुए है **अन्यः** वह शक्ति का अन्य रूप (सोम) है। **अन्तरिक्षे पृथिव्याम् अन्यः** अन्तरिक्ष व पृथ्वी पर उपलब्ध शक्ति अन्य अधि है - वह प्राण-वनस्पति पोषक है।

तौ वे दोनों **अस्मभ्यम्** हम लोगों के लिए **पुरुवारम्** अनेक प्रकार के सुरक्षा साधन को **पुरुक्षुम्** अनेक प्रकार के आवास को **नाभिम्** केन्द्रीभूत प्राणशक्तिरूप **रायः पोषम्** ऐश्वर्य और पोषक द्रव्य को **अस्मे** हममें **वि स्यताम्** विशेषता से प्रवाहित करें।

उच्च आकाश में स्थित शक्ति को अन्य प्रकार का कहा गया है कास्मिक विकिरण है। पृथ्वी पर और अन्तरिक्ष वायुमंडल में जो शक्ति का रूप है वह प्राण वनस्पति पोषक है। इस प्रकार प्रकृति के दो भेद हो जाते हैं। आगामी ऋचा में सोम व पूषा शक्तियों के कार्य क्षेत्र का विवरण है। मन्त्र है - (क्र. 207)

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्याँ विश्वाः पृतना जयेम।।

अन्यः विश्वानि भुवना जजान प्रकृति का भिन्न भाग समस्त लोकों को उत्पन्न करता है। **अन्यः** जो दूसरा भाग है **विश्वम्** संसार को **अभिचक्षाणः** पूर्ण रूप से दर्शाने के लिए एति आता है। देखने की क्रिया जो नेत्र इन्द्रिय का कार्य है, वह यहाँ सांकेतिक रूप से दी गयी है जिसका तात्पर्य इन्द्रियों की शक्ति से है। इस प्रकार प्रकृति के एक भाग से भौतिक रासायनिक दृश्य जगत् उत्पन्न होता है तथा दूसरे भाग से द्रष्टा चेतन की देखने-सुनने आदि की शक्तियाँ जो मन-प्राण का व्यापार है उत्पन्न होती हैं।

सोमा पूषणा अवतं धियं मे हे सोमा पूषणा तुम दोनों मेरी बुद्धि की रक्षा करो जिससे **युवाभ्याम्** तुम दोनों के द्वारा हम लोग **विश्वाः पृतना जयेम** जीवन के समस्त संग्रामों को जीत सकें।

सूक्त का अंतिम मन्त्र है – (क्र. 208)

धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।

पूषा प्राण शक्ति **धियं** मेरी बुद्धि को **जिन्वतु** शीघ्रकारी बनाए, गतिशील बनाए। (**विश्वमिन्वः**, वै. व्या.) **सर्वव्यापी रयिपतिः** भौतिक सत्ता का अधिपति **सोमः** सोम **रयिं** भौतिक ऐश्वर्य को **दधातु** धारण करे। **अनर्वा** स्वशक्ति सम्पन्न देवी **अदितिः** दिव्य अखंड मूल आद्या मातृशक्ति **अवतु** रक्षा करे।

सुवीराः उत्तम ज्ञान ऐश्वर्य से शक्तिशाली हो हम (**विदथे**, विदथन् = ज्ञान समूह, निरु.) ज्ञानार्थ हुए वाद, शास्त्रार्थ में **बृहत् वदेम** अच्छी तरह चर्चा कर सकें।

मस्तिष्क की शक्तियों की संचालक बुद्धि है। मन्त्र में यह बताया गया है कि बुद्धि की प्रेरणा देने वाली पूषा शक्ति है। इस प्रकार पूषाशक्ति तथा प्राणशक्ति का एकत्व सिद्ध होता है। रयि अर्थात् भौतिक रासायनिक द्रव्य सत्ता का अधिपति सोम अर्थात् विकिरण है। विकिरण ही पदार्थ में गति, ताप, विद्युत् का कारण है। विकिरण ही प्रकाश के रूप में वनस्पतियों का परिपाक करता है। सोम के कारण ही समस्त लोक गुरुत्वाकर्षण से बँधे हुए अपनी-अपनी दीर्घा (orbit) पर चलते हैं। इस दृष्टि से सोम ही समस्त द्रव्य सत्ता का अधिपति या नियामक है। पूषाशक्ति वनस्पति व जैविक कोशों का संचालन करने वाली बायोलॉजीकल द्रव्य संबंधी है।

सूक्त के प्रथम मन्त्र में भौतिक पदार्थ सत्ता के अन्ततम मूल स्वरूप की जिज्ञासा की गयी थी। सूक्त के अन्तिम मन्त्र में उस जिज्ञासा का उत्तर दिया गया है कि आद्या भौतिक शक्ति का नाम अनर्व (स्वतंत्र) अदिति है। अनर्व की विपरीत अर्व है। अर्व भौतिक सत्ता का वह भाग है जो स्वतंत्र नहीं है, जो यौगिक है जिसकी स्वसत्ता नहीं है। जो ऊर्जा की सवारी है (matter is the vehicle of energy) किन्तु अनर्व स्वशक्ति रूप है, मूल है, स्वधारण शक्ति से युक्त है।

ऋग्वेद मण्डल 10 के 17 वें सूक्त में पूषन् को प्राणि जीवन का स्वामी कहा गया है। सूक्त की 3री ऋचा है - (क्र. 209)

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविद त्रियेभ्यः।।

भाष्य - पूषा पूषा शक्ति की स्वामी उस रूप में ईश्वर **त्वा इतः प्र च्यावयतु** तुझे इस (संसार) से पूर्ण रूप से मुक्त कराये जिस **विद्वान्** ज्ञानवान् ईश्वर के **अनष्ट-पशुः** प्राणी कभी नष्ट नहीं होते जो **भुवनस्य गोपाः** सब लोकों का रक्षक है।

इसका तात्पर्य यह है कि पूषन् रूप में ईश्वर जो प्राणशक्ति का उत्पादक वा संचालक है जीवों को देह से देहान्तर में भेजता है। यह पुनर्जन्म का क्रम कभी समाप्त नहीं होता, किन्तु जब ज्ञान प्राप्त होता है तो जीवात्मा इस जन्म-मरण रूपी चक्र से छूटकर मुक्त हो जाता है–यही प्रार्थना की गई है।

सः अग्निः वह ज्ञानवान् ईश्वर **त्वा** तुझे **एतेभ्यः पितृभ्यः** इन माता-पिताओं **देवेभ्यः** ज्ञानवान् पुरुषों के लिए **सुविद त्रियेभ्यः** ज्ञान के रक्षक त्रि विद्या ज्ञाता गुरुओं के लिए (**परि ददत्**, लेट् लकार) पूर्ण रूप से दे (आगामी जन्म में यदि मोक्ष न हो तो)।

पूषन् के विषय में निरुक्ताचार्य (7/9) कहते हैं :-

एष हि सर्वेषाम् भूतानाम् गोपायिता -

वह सभी प्राणिमात्र का रक्षक है।

पूषा शक्ति प्राणी जीवन से अर्थात् प्राण से संबंधित है। इस शक्ति के अधिपति के रूप में ईश्वर पूषन् प्राण पोषक रूप से वरणीय है। आगामी ऋचा में पूर्वोक्त तथ्य की पुनःस्थापना हुई है, ऋचा है - (क्र. 210)

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु।।

भाष्य - विश्वायुः सबको जीवन देने वाला पूषा रूप में ईश्वर **आयुः** आयु रूप हुआ **त्वा परि पासति** तेरी रक्षा करे। **प्रपथे** उत्तम मार्ग के लिए **पुरस्तात्** आगे भी **पूषा पूषन् त्वा पातु** तेरी रक्षा करें।

यत्र सुकृतः जहाँ पुण्यात्मा (आसते, आस्) विराजते हैं **यत्र ते ययुः** जिस उत्तम लोक व मार्ग से वे जाते हैं **तत्र** वहाँ **देवाः सविता** सर्वप्रेरक देव ईश्वर **त्वा दधातु** तुझे स्थापित करें।

महाजनों के मार्ग पर चलने की इच्छा व्यक्त की गयी है तथा जिस उत्तम गति को वे प्राप्त होते हैं उस मोक्षावस्था को प्राप्त करने के लिए ईश्वरीय प्रेरणा की इच्छा की गई है।

पूषन् शक्ति के अन्तर्गत वनस्पति एवं प्राणि जीवन संबंधी दो भेद आते हैं। इन दो भेदों के विषय में ऋग्वेद के अन्य स्रोत से प्रकाश डाला जाता है। इस विषय पर ऋ. 2/4/2 री ऋचा है - (क्र. 211)

इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा 3 योः।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः।।

भाष्य - (**इमं विधन्तः** विध् का शत्रन्त) इस अग्नि इनर्जी को व्यवहार में लाते हुए (**भृगवः**) तपस्वी ज्ञानियों ने (**अपां सधस्थे**) क्रियात्मक मूल तत्त्व आपः के क्षेत्र में व (**आयोः विक्षु**) मानव के प्राणियों (सम्बधी जीव क्षेत्र) में (**द्विता अदधुः**) दो प्रकार से स्थापित किया है। प्राण के कार्यक्षेत्र में शक्ति दो प्रकार नियोजित है **एषः** यह देवानाम् देवों की (**अरतिः** = सेवक, वै. व्या. पृ. 339) सेवा करने वाली **जीराश्वः** शीघ्रगामी गुण वाली **भूमा अग्निः** भूमा शक्ति (**विश्वानि अभ्यस्तु**) सबको सब ओर से प्राप्त हो।

प्राण के क्षेत्र में दो प्रकार से नियोजित यह शक्ति जैविक (zoological) एवं वनस्पति संबंधी (botanical) है।

अध्याय 15

घृत व अन्न का वैदिक स्वरूप

पूर्व अध्यायों में कई प्रतीकों में निहित अर्थों की विवचेना हो चुकी है। ऋचाओं में घृत व अन्न शब्द बार-बार प्रयुक्त हुए हैं; किन्तु अधिकतर न घृत घी के अर्थ में आया है न ही अन्न शब्द अनाज के अर्थ में। इस अध्याय में इनके प्रतीकात्मक स्वरूप का निर्धारण ऋचाओं की आन्तरिक साक्षी के आधार पर किया गया है।

1. घृतं शब्द की व्युत्पत्ति

घृतं शब्द भ्वा. परस्मै. धातु घृ (घरति = छिड़कना) या चुरा. उभ. धातु घृ (घारयति, घारित = छिड़काव करना, तर करना) में क्त प्रत्यय से बना है। शुक्र (वीर्य) में तर होने से, शुक्र के छिड़काव से तर होने से देह बल, वीर्य, ओज और प्राणयुक्त होती है इस अर्थ में कोश में (हलायुध कोश) घृत का अर्थ **आयुः, अमृतम्** और **तेजस्** दिया हुआ है। इस प्रकार घृत शब्द आयुः का, अमृत अर्थात् जीवनी शक्ति का, प्राण का बोधक है।

घृत के लक्षण (चरक) इस प्रकार दिये गये हैं -

स्मृतिबुद्धयग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्द्धनम्।

यह स्मृति, बुद्धि, जठराग्नि, वीर्य, ओजादि को बढ़ाने वाला है।

सहस्त्रवीर्यं विविधैर्घृतं कर्म सहस्त्रकृत्।

घृत को अनेक प्रकार के बल व ओज देने वाला कहा गया है। सहस्र बल वीर्य वर्धक होने से इसे वेद ने प्राण शक्ति, जीवनी शक्ति के अर्थ में लिया है तथा स्मृति ने बुद्धि वर्धक होने से इसे ज्ञान का पर्याय लिया है जैसा कि सुश्रुत में-**बल्यं पवित्रं मेध्यं च विशेषात्तिमिरापहम्** कहा गया है।

(घृतं = तेजसं) घृत का पर्याय तेजस् है और (तेजसं = घृतं), तेजस् का

पर्याय घृत है। तेजस् का अर्थ परम सारभूत कान्ति है (**यत् परं तेजः इति उत्कृष्टं सारः**, हलायुध कोश), **तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि** (यजु. 1/31)। इस प्रकार 'घृतं' शब्द तेजस् अर्थात् प्रकाश किरण या ऊर्जा के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा शुक्रम् अर्थात् बल, वीर्य प्राण शक्ति के लिए तथा अमृतम् अर्थात् अक्षय मूल भौतिक शक्ति या मूल तत्त्व के लिए प्रयुक्त हुआ है।

ब्राह्मण ग्रन्थों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। शतपथ ब्राह्मण (7/4/1/41) में यह वचन आया है -

आग्नेयं वै घृतम्।

घृत अग्नि है, ऊर्जा है, मूल शक्ति का पर्याय है।

इसी प्रकार गोपथ ब्रा. (1/15) में कहा गया है :-

एषा स्वधृत्या तनूः यत् घृतम्।

यह स्वधारण शक्ति से युक्त मूलाधार देह है जिसे घृत कहा गया है और यह भौतिक सत्तात्मक जगत् की मूल देह मूल प्रकृति है, मूल तत्त्व है। इस प्रकार घृतं शब्द का प्रयोग मूल शक्ति एवं ऊर्जा के लिए हुआ है।

चेतना के क्षेत्र में तेजस् का अर्थ होता है ज्ञान, तदनुसार घृतं शब्द ज्ञान का बोधक है। वेदान्त सार में तेजस् शब्द अन्तःकरण का पर्याय कहा गया है; यथा -

एतद्व्यष्ट्युपहितं चैतन्यं तेजसो भवति तेजोमयान्तः करणोपहितत्वात्।

तेजोमय अन्तःकरण की विद्यमानता से व्यक्तिगत चेतना तेजस् होती है।

स्मृति, बुद्धि, मेधा धारक वर्धक अर्थ में घृत या तेजस् शब्द ज्ञान एवं ज्ञानेन्द्रिय शक्ति का या प्राण शक्ति का वाचक हुआ है तथा भौतिक क्षेत्र में ऊर्जा का वाचक है।

इसी प्रकार अन्नं शब्द का प्रयोग कर्मेन्द्रियों की आधारभूत दैहिक शक्ति (motor nerves) का द्योतक है या सामान्य प्रयोग में केवल पोषक शक्ति का द्योतक है।

2. ऋचाओं में घृत के तीन स्वरूप

अब घृत के स्वरूप पर ऋचाओं से प्रकाश डाला जाता है। ऋग्वेद मंडल 4, सूक्त 58 में घृत को प्राणशक्ति और सारभूत ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ देखा जा सकता है। सूक्त की प्रथम ऋचा है :-

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभि।।

भाष्य - घृतस्य यत् गुह्यं नाम अस्ति घृत का जो गुप्त, अप्रकट स्वरूप है **अमृतस्य नाभि** वह अक्षय शक्ति का केन्द्र, स्रोत **देवानाम्**[1] **जिह्वा** विद्वानों की वाणी है तथा देवानाम् जिह्वा सूर्य की भाँति प्रज्ज्वलित नक्षत्रों के द्वारा प्रवाहित प्रकाश ताप में है।

(अंशुना अमृतत्वं सम् उप आनट्, नश् लुङ् धातु) सूर्य की जीवनी शक्ति सम्यक् निकटता से प्राप्त हुई है।

(समुद्रात् मधुमान् ऊर्मिः उत् आरत्, ऋ. लुङ्अ) आकाश से मधुर जीवनी शक्ति तरंग रूप ऊपर आयी तथा हृदय समुद्र से अक्षय ज्ञान तरंग ऊपर उठी।

ऋचा में दो प्रकार के अमृत कहे गये हैं एक का प्रवाह सूर्यादि लोकों से प्रकाश ताप रूप में होता है जिससे पृथ्वी पर जीवन संभव हुआ है। दूसरे प्रकार के अमृत के प्रवाह का स्रोत विद्वानों की वाणी है। ऋचा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वेद-प्रोक्त घृत का स्वरूप गूढ़ है, दूध से निकाले गये घी के लिए यह प्रयोग नहीं हुआ है। आगामी ऋचा क्रमांक 214 में घृत के तीन रूप बताये गये हैं। तदनुसार ही अर्थ ग्रहणीय है।

सूक्त के आगामी मन्त्र में घृत को ज्ञान का प्रतीक कहा गया है, ऋचा है -

(क्र. 213)

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद् गौर एतत्।।

भाष्य - **ब्रह्मा** चारों वेदों का ज्ञाता **ब्रह्मा एतत् शस्यमानम्** इस अनुशासनात्मक उपदेश को **(उप शृण्वत्, श्रु लेट्)** ध्यान से सुने **चतुः शृङ्गः** चारों वेद का ज्ञाता **गौरः** वाणी से देने, व्यक्त करने में समर्थ **अवमीत्** सरल रूप में (अर्थ) निर्धारित करें।

अस्मिन् यज्ञे इस ज्ञानयज्ञ में **वयं** हम ऋषिगण **घृतस्य नाम** वेद वाणी के स्वरूप का, ज्ञान के स्वरूप का **(प्र ब्रवाम, ब्रू लेट् बहु व.)** प्रवचन करेंगे तथा **नमोभिः** इसे आदर के साथ हम **(धारयाम)** धारण करें।

---

1. देवो दानाद्वा। दीपनाद्वा। द्योतनाद्वा। द्युस्थानो भवतीति वा।
देवता इसलिए कहलाता है कि यह दान देता है, दीप्त होता है या द्युलोक में है।

इस ऋचा में घृत का प्रयोग ज्ञान के अर्थ में, वेद वाणी के अर्थ में इतने स्पष्ट शब्दों में हुआ है कि संशय को स्थान नहीं रह जाता।

आगामी ऋचा में घृत के तीन स्वरूप कहे गये हैं, ऋचा है - (क्र. 214)

त्रिधा हितं पणिभिर्गुहमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः।।

भाष्य - पणिभिः गुह्यमानं वणिकों द्वारा छिपाई हुई रकम की तरह गवि गुह्यमानं घृतं गाय के दूध में छिपे घृत की तरह **देवासः** विद्वानों ने **गवि गुह्यमानं** वाणी में, किरणों में, इन्द्रियों में छिपे हुए **त्रेधा हितं घृतं** तीन प्रकार निहित तेज के स्वरूप को अनु अविन्दन् पूर्ण रूप से प्राप्त किया है, जाना है।

इन्द्र एकं जजान परमात्मा ने एक तेजस् रूप घृत को उत्पन्न किया; **सूर्य एकं जजान** सूर्य ने प्रकाश रूप, प्राण शक्ति रूप एक घृत को उत्पन्न किया; **वेनात् एकं विद्वान्** एक घृत को **स्वधया** स्वधारणा शक्ति से **निः ततक्षुः** गढ़ते हैं।

ऋचा में घृत के तीन स्वरूप कहे गये हैं। एक घृत विकिरण या अग्नि रूप या मूल शक्ति है जिससे सृष्टि का निर्माण हुआ है। यह इन्द्र[1] से प्रादुर्भूत हुआ है। दूसरा घृत सूर्य से प्रादुर्भूत हुआ है जो जीवनी शक्ति प्राण को धारण करने वाला है। तीसरा घृत ज्ञान का प्रतीक है जो सूक्ष्म दर्शन का विवेचन करता हुआ विद्वानों की जिह्वा से वाणी रूप में प्रकट होता है तथा जो ज्ञान रूप में अवस्थित है। इस प्रकार घृत शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है विकिरण के लिए, जीवन शक्ति के लिए तथा ज्ञान के लिए।

3. घृत की धाराएँ मन से उद्भूत उच्च कल्पनाएँ है

उक्त विचार को प्रकाश में लाने हेतु विचाराधीन सूक्त की आगामी ऋचाओं पर विचार किया जाता है :- (क्र. 215)

एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम्।।

भाष्य - **हृद्यात् समुद्रात्** हृदय रूपी सागर से **शतव्रजाः** सैकड़ों मार्गों वाली अर्थात् अनेक कल्पनाओं वाली **घृतस्य एताः धाराः** ज्ञान की ये धाराएँ **अर्षन्ति**

---

1. इन्दु+ द्रु, इन्द्र सोम के लिए दौड़ता है। इन्दु + रम्, इन्द्र सोम में रमण करता है–निरु. 10/7। ध्यान रहे सोम विकिरण है। यहाँ घृत (सोम) विकिरण के लिए प्रयुक्त हुआ है।

प्रवाहित होती हैं। **रिपुणा न अवचक्षे** द्रोहयुक्त भावना वाला (इन दिव्य कल्पनाओं को) नहीं देख पाता।

आसाम् मध्ये इनके बीच में (**वेतसः** = उत्तरवर्ती, निघ. 3/29) आगामी, भविष्य के गर्भ में रहने वाली, **हिरण्ययः** तेजोमय **घृतस्य धाराः** ज्ञानमयी विचारों के तरंगों प्रवाहों को **अभि चाकशीमि** मैं पूर्ण रूप से साक्षात् करूँ।

हृदय के समुद्र से उठने वाली घृत की धाराएँ ज्ञानमय विचार की तंरगों के अतिरिक्त और क्या हो सकती है। वेद मन्त्रों के विषय में यह कहा गया है कि द्रोहयुक्त भावना वाला इनमें निहित ज्ञान का साक्षात् नहीं कर पाता। इसका स्पष्ट रूप से यह तात्पर्य है कि मन्त्रों में उत्कृष्ट विचार निहित है। ऋषि ने पाठक की ओर से यह अभिलाषा व्यक्त की है कि वह मन्त्रों में निहित भविष्यवर्ती ज्ञान का साक्षात् कर सके। आगामी ऋचा है – (क्र. 216)

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमानाः।।

भाष्य – **अन्तः हृदा** अन्तःकरण से हृदय की गहराईयों से, हृदय के अन्तस् में विराजमान ईश की प्रेरणा से **धेनाः** विद्या बुद्धि युक्त वेद वाणियाँ, **सरितः न सम्यक् स्रवन्ति** जल प्रवाह की तरह सम्यक् प्रवाहित होती है अर्थात् भाव की व्यवस्था का क्रम छिन्न-भिन्न नहीं होता वरन् धारावाही बना रहता है। **ईषमानाः** इच्छा शक्ति से प्रेरित हुई, **एते घृतस्य ऊर्मयः** ये ज्ञान की तरंगें **क्षिपणोः मृगा इव** फेंके हुए अस्त्र से भागे हिरण की तरह (अर्षन्ति, ऋष्) वेग से जाती है।

वेद मन्त्रों में निहित विचार पवित्रता से युक्त है तथा उसमें उच्चकोटि की कल्पनाएँ संजोयी गई हैं। जब विद्वान् पवित्र मन से हृदय की गहराईयों में उतरता है तो उसे सतत जलप्रवाह की तरह मन्त्रों का धारावाहिक ज्ञान प्राप्त होता है यह कहा गया है।

सूक्त की 10 वीं ऋचा में शाश्वत ज्ञान प्राप्त करने की उत्कृष्ट इच्छा व्यक्त की गई है। ऋचा है – (क्र. 217)

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते।।

भाष्य – आजिम् ज्ञान चर्चा में, बाद में **सुष्टुतिं** उत्तम प्रशसित, **गव्यम्** वाणी को आप दोनों गुरु शिष्य (अभि अर्षत, ऋष् लोट्) पूर्ण वेग से प्रवाहित करो। **अस्मासु** हममें **भद्रा द्रविणानि धत्त** आप कल्याणकारी द्रव्य धारण करें।

नः इमं यज्ञं हमारे इस जीवन रूप यज्ञ को, ज्ञान यज्ञ को **देवता नयत** हे विद्वान् हे दिव्य शक्तियों तुम वहन करो, आगे ले जाओ। **मधुमत् घृतस्य धाराः पवन्ते** मधुर सुखकारी, अमृतमय नित्य ज्ञान की विचार तरंगें पवित्र करती हैं।

मन्त्र में नित्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिए विद्वानों व दैवी शक्तियों की सहायता की याचना की गई है।

सूक्त की अन्तिम ऋचा में ईश्वरीय सान्निध्य प्राप्त कर विश्व रचना के ज्ञान को प्राप्त करने की जिज्ञासा की गई है। ऋचा है - (क्र. 218)

धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्य १ न्तरायुषि।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम्।।

भाष्य - यः अन्तः समुद्रे विश्वं भुवनं अधि श्रितं अन्तरिक्ष के विस्तार में जो समस्त लोक ठहरे हैं, **ते हृदि अन्तः** वे तेरे मानसिक संकल्प में **अपां अनीके समिथे** मूल तत्त्वों की सेना के संघर्षमय जीवन **धामन्** धारण की गई आधारभूत **आयुषि** आयु में **आभृतः** ठहरे हैं **ते तम् मधुमन्तं ऊर्मिम्** तेरी उस अमृत, शाश्वत ज्ञान तरंग को **अश्याम** हम प्राप्त करें।

ईश्वरीय संकल्प में सृष्टि की आयु निर्धारित होती है; उसी के अनुरूप आदिकाल में ईश्वर मूल तत्त्व को आद्य संवेग (impulse) एवं सामर्थ्य (capacity) प्रदान करता है जो सृष्टि को आयुपर्यन्त तत्त्व में संगृहीत रखते हैं। ईश के उस संकल्प से मूल तत्त्व को जो सामर्थ्य प्राप्त होती है उसी आधारभूत सामर्थ्य में समस्त लोकों के विस्तार वाला ब्रह्माण्ड ठहरा है। ऋषि ने पाठक की ओर से यह जिज्ञासा व्यक्त की है कि ईश के मानसिक संकल्प का वह सर्वोत्कृष्ट अक्षय ज्ञान, जिससे विश्वधारण हुआ है, हमें प्राप्त हो जिसे जान लेने के पश्चात् कुछ और जानने को नहीं रह जाता। ऋचा यह उच्च कल्पना संजोये है।

4. घृत प्राणशक्ति का प्रतीक है

अनुच्छेद 2 में घृतं शब्द के तीन अर्थो में हुए प्रयोग को प्रकाश में लाया गया है। उसी तारतम्य में 'घृतं' शब्द के प्राणशक्ति, जीवनशक्ति के लिए हुए प्रयोग पर ऋचा (10/82/1) से प्रकाश डाला जाता है। ऋचा है - (क्र. 219)

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावा पृथिवी अप्रथेताम्।।

भाष्य - पूर्वे आदिकाल में, सृष्टि विकास के तारतम्य में **यदा इत्** जब ही

अन्ताः आन्तरिक भागों को (अददृहन्त, दृह् का लिट् प्र.) दृढ़ कर लिया, आत् इत् तब ही द्यावा पृथिवी प्रकाशित व अप्रकाशित लोक अर्थात् नक्षत्र और ग्रह अप्रथेताम् विस्तारित हुए।

एने इन द्यावा पृथ्वी के नम्नमाने झुक जाने पर, जीवन के लिए उपयुक्त हो जाने पर चक्षुषः नेत्रादिक इन्द्रिय के पिता पालक, जन्मदाता धीरः विचारवान् ईश्वर ने मनसा हि विचार से ही घृतं इन्द्रियादिकों के आश्रयभूत प्राण तत्त्व को अजनत् उत्पन्न किया है।

सृष्टि विकास के तारतम्य में जब गैलेक्सियों के आन्तरिक भाग दृढ़ हो गए तब स्वयं प्रकाशित नक्षत्र व ग्रहों की उत्पत्ति हुई। अनन्तर द्यावा पृथ्वी के जीवन धारण करने के लिये उपयुक्त हो जाने पर अर्थात् जब सूर्य के कास्मिक रेडियेशन व अल्ट्रा स्पेक्ट्रम रेडियेशन के घातक प्रभाव का असर अपेक्षाकृत शिथिल हुआ तथा पृथ्वी का ताप कम होने पर वायुमण्डल वनस्पति, जीवन के उपयुक्त हुआ तब ईश्वर ने प्राणि जीवन के विस्तार हेतु प्राण तत्त्व की रचना की।

ऋचा में द्यावा पृथिवी के उपयुक्त हो जाने पर घृत की उत्पत्ति होना कहा गया है अतः घृतम् शब्द का अर्थ दूध से निकाला गयी घी नहीं हो सकता। ऊर्जा तो आदिकाल से ही मौजूद है। अतः यहाँ उत्पन्न होने वाला घृत जीवनी शक्ति के आश्रयभूत प्राणतत्त्व के लिए ही आया है। ध्यान रहे, प्राण और चेतना में भेद है प्राण भौतिक देह सत्ता का सूक्ष्मतम बिन्दु जीव कोशिका है।

5. अन्नम् का स्वरूप

'अन्नम्' शब्द अद् भक्षणे (= खाना) अर्थ वाली धातु (अद् + क्त) से तथा अन् प्राणने, जीवनं (श्वास लेना, जीवन धारण करना) अर्थ वाली धातु से (अन् + नन्) से व्युत्पन्न है तथा इसका प्रयोग पोषक तत्त्वों के लिए, स्थिति, वृद्धि के लिए किया जाना उपयुक्त है। व्यापक अर्थ में अन्नम् शब्द का प्रयोग जीवन की आधारभूत वनस्पति के लिए हुआ है तथा भौतिक द्रव्यों की स्थिति, वृद्धि का हेतु होने से मूल प्रकृति के लिए, नाभिकीय द्रव्यों के लिए तथा अन्य सूक्ष्म सत्ताओं के लिए हुआ है जो स्थूल द्रव्यों का पोषण करनेवाली मध्यस्थ सत्ताएँ हैं। ऋचा (10/5/4) में 'घृतम्' व 'अन्नम्' शब्दों के विशिष्ट अर्थों में हुए प्रयोग पर प्रकाश डाला जाता है, ऋचा है – (क्र. 220)

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते।
अधिवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम्।।

भाष्य – **ऋतस्य हि वर्तनयः** सत्य प्राकृतिक नियमों के अनुसार **वर्तते** हुए **सुजातं** उत्तम प्रकार जन्मे **प्रदिवः सूर्यवत् ज्योतिर्पिण्ड इषः** अन्न अर्थात् वनस्पति **वाजाय** खनिजादि दृढ़ द्रव्य **सचन्ते** संयुक्त करते हैं।

(रोदसी) सूर्य और पृथिवी ने (मधूनाम्) प्राणियों के (वावसाने) वास हो जाने पर (घृतैः अन्नैः) प्राण शक्ति और वनस्पति से (अधिवासं) प्राणियों के आश्रयभूत आवास को अथवा आच्छादित वायुमंडल को (वावृधाते, वृध् लिट् द्वि. व.) वृद्धि प्रदान की। सूर्य और पृथ्वी से जैविक शक्ति और वनस्पति प्रादुर्भूत होती है। प्राण शक्ति से प्राणियों के जीवन का आधारभूत जीवन तत्त्व उत्पन्न हो विकास को प्राप्त होता हुआ विभिन्न जीवों की देह की उत्पत्ति का हेतु होता है। इन जीवों की देह के धारण, पोषण एवं वृद्धि के लिए उपयुक्त आश्रयभूत वनस्पति विकसित होती व वृद्धि को प्राप्त होती है। प्राण शक्ति से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का संचालन होता है तथा वनस्पति से प्राणियों की देह में रस और रक्त बनता है जो देह की वृद्धि का आधारभूत द्रव्य है। इस प्रकार संदर्भानुसार 'घृतं' प्राणशक्ति, ऊर्जा या ज्ञान या वाणी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ तथा 'अन्नं' शब्द व्यापक अर्थ में प्राकृतिक पोषक द्रव्यों के लिए तथा सीमित अर्थ में वनस्पति के लिए प्रयुक्त होता है।

उपर्युक्त मीमांसा के आधार पर घृतम् व अन्नम् शब्दों के विशिष्ट अर्थ लिए गए हैं। इन शब्दों के विशिष्ट प्रयोगों के लिए अध्याय 6 में मन्त्र क्रमांक 69, 73, 74 देखे जा सकते हैं।

अध्याय 16

आकाश, दिक् एवं काल

इस अध्याय में ऋग्वेद में वर्णित आकाश, दिक् व काल के स्वरूप का विवेचन आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

1. जगत् सप्तवर्गी है

ऋग्वेद ने दृश्य जगत् को सात वर्गों में विभाजित किया है; यथा -

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रं।

जगत् एक चक्र वाला रथ है। यह चक्र सात घटक, अवयव वाला है।

अतो देवा अवन्तु नो यतः विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः। 1/22/16

जिस कारण तत्त्व से व्यापक परमात्मा ने पृथ्वी महाभूत से लेकर सप्तवर्गी जगत् को विशिष्टता से क्रमबद्ध किया, रचा- उस कारण तत्त्व से विद्वान् अवगत कराएँ।

क्रम् धातु का प्रयोग यह दर्शाता है कि मूल भौतिक सत्ता अविनाशी एवं नित्य है तथा ईश्वर ने इसी मूल शक्ति को जगत् रूप में व्यवस्थित (systematise) किया है। भौतिक पदार्थ सत्ता के आदि कारण को अखण्ड एवं शाश्वत कहा गया है तथा उसे अदिति संज्ञा प्रदान की गई है। अन्ततम कारण होने तथा सभी पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु होने से इस सत्ता को माता (mother cause) पद से विभूषित किया गया है तथा ईश्वरीय कार्य शक्ति होने से इसे देवी (divine) कहा गया है।

ऋग्वेद ने दृश्य जगत् को व्यापक दृष्टिकोण से सात वर्गों में विभाजित किया है। अनेक ऋचाओं में यह सत्य सुरक्षित है।

सप्त शिवासु मातृषु (क्रमांक 45 देखें)

ऋचा (10/122/3 तथा 4) में कहा गया है -

सप्त धामानि परियत्। वह सात लोकों को व्यापता है।

ईलते सप्त वाजिनम्। सात ऐश्वर्यों के स्वामी की उपासना करते हैं।

वेद-प्रोक्त ये सात लोक क्या है? इस तथ्य को यहाँ स्पष्ट किया जाएगा।

ऋग्वेद ने दृश्य जगत् को सात वर्गों में परिभाषित किया है, ये सात वर्ग हैं पाँच महाभूत - पृथ्वी (ठोस अवस्था), जल (द्रव अवस्था), वायु (गैसीय अवस्था), तेज (= ऊर्जा = प्रकाश, ताप, विद्युत्), आकाश (= सर्वव्यापक माध्यम = आधुनिक विज्ञान का सर्वव्यापी कास्मिक विकिरण) तथा दिक् (= अन्तरिक्ष = लोकों के बीच का स्थान = inter stellar sapce), काल (समय = सृष्टिकाल)। ठोस, द्रव, वायु और ऊर्जा इन चार अवस्थाओं के विषय का ज्ञान सामान्य है। अतः केवल आकाश, दिक् एवं काल की समीक्षा की जाएगी।

2. आकाश तत्त्व विवेचना

उपनषिदों में आकाश के संबंध में दो परस्पर विपरीत गुण कहे गये हैं। कहीं कहते हैं आकाश उत्पत्तिधर्मी है, कहीं कहते हैं नित्य है। यथा - मुण्डकोपनिषद् (2/1/3)

एतस्माज्जायते प्राणो .... । खम् वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।

द्रव्यों की उत्पत्ति के क्रम में सर्वप्रथम उत्पत्ति आकाश की कही गयी है फिर आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से द्रव्यादि हुए। इसी प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है।

इस प्रकार आकाश को उत्पत्तिधर्मी कहा गया है; जिसे परिणामी भी कहा गया है उससे वायु रूप परिणाम उत्पन्न हुआ। यदि आकाश को परिणामी मानें तो आकाश का कहीं-कहीं उच्छेद हो जाने से निरन्तरता न रहेगी तथा द्रव्यों को ठहरने का स्थान नहीं मिल सकता। लोक लोकान्तर जो अपनी-अपनी कक्षा में गति करते हैं उसमें भी बाधा उपस्थित होगी। अतः आकाश की उत्पत्ति युक्तियुक्त नहीं है तथा उन्हीं श्रुतियों ने आकाश को नित्य एवं उत्पत्ति रहित माना है।

अब वेदान्त पर शांकर भाष्य उद्धृत किया जाता है। वेदान्त दर्शन (2/3/1) में सूत्र है -

'न वियदश्रुते'

आकाश उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि उसकी उत्पत्ति विषयक श्रुति नहीं है। किन्तु आगे सूत्र 2 में कहते हैं – **अस्ति तु।**

किन्तु अन्य श्रुतियों में आकाश की उत्पत्ति दिखाई गई है।

यथा पूर्वोक्त तैत्तिरीयोपनिषद् (2/1)। सूत्र 3 में उत्तर दिया है।

गौण्यसंभवात्।

असंभव होने से गौण है।

आकाश की उत्पत्ति कहने वाली श्रुति गौण है क्योंकि आकाश की उत्पत्ति संभव नहीं है–सूत्र 4 में कहा गया है – **शब्दाच्च।**

शब्द से भी आकाश की उत्पत्ति न होना ही सिद्ध होता है। बृहदारण्यक श्रुति का कथन है कि '**वायुर्चान्तरिक्षं चैतदमृतम्**' अर्थात् वायु और आकाश अविनाशी हैं जो अविनाशी है उसकी उत्पत्ति का प्रश्न नहीं है। इस पर भी ब्रह्म को आकाश के समान व्यापक एवं नित्य कहकर आकाश में भी विभुत्व और नित्यत्व सिद्ध किया है – '**आकाश शरीरं ब्रह्म**' (तै. 1/6/2) अर्थात् आकाश ब्रह्म का शरीर है। इस प्रकार श्रुतियों ने आकाश को ब्रह्म के विशेषण रूप से कथन किया है। यदि आकाश की उत्पत्ति होती तो वह ब्रह्म का विशेषण नहीं हो सकता।

यदि शंका करें कि आकाश में उत्पन्न न होने से, तो –

'**एकमेवाद्वितीयम्**' (छान्दो. 6/2/1) अर्थात् ब्रह्म एक ही अद्वितीय था इस प्रतिज्ञा की हानि होती है; क्योंकि आकाश भी अजन्मा हो तो ब्रह्म के समान हो जाता है तब ब्रह्म का अद्वितीय होना नहीं बनता। इसका समाधान यह है कि ब्रह्म का एक अद्वितीय कहा जाना उसकी अपेक्षा से है। इसलिए आकाश को भिन्न अजन्मा मानने से ब्रह्म का अद्वितीय होना नहीं मिट सकता। क्योंकि भिन्न लक्षण होने से ही दो वस्तुएँ भिन्न मानी जाती हैं, परन्तु सृष्टि से पूर्व ब्रह्म और आकाश में किसी लक्षण का भेद न होते हुए दोनों में ही व्यापकता, अव्यक्तता, नित्यता आदि धर्म की समानता होती है। सृष्टिकाल में ब्रह्म सृष्टि करता है और आकाश उस समय निश्चल भाव से यथावत् रहता है, इसीलिए उनमें भिन्नता प्रतीत होती है। (**शांकर भाष्यानुवाद**)

खेद है कि शंकराचार्य जी ने उपरोक्त अपने स्पष्ट व्यक्त किये गये विचारों का आगामी सूत्रों के भाष्य में स्वयं ही खंडन किया है, यथा –

'आत्मा आकाश के समान सर्वव्यापी और नित्य है इस कथन में आकाश के माहात्म्य की प्रसिद्धि होने के कारण आत्मा के माहात्म्य प्रतिपादनार्थ उसकी उपमा दी

है। क्योंकि '**ज्यायानाकाशात्**' अर्थात् आकाश से बड़ा है, यह श्रुति आत्मा की यथार्थ महत्ता को प्रकट करती है और '**अतोऽन्यदार्तम्**' अर्थात् आत्मा से अन्य सब नाशवान् हैं। इससे सिद्ध होता है कि अविनाशी आत्मा से भिन्न आकाशादि सभी अनित्य हैं; इससे तुम्हारी आकाश की उत्पत्ति बताने वाली श्रुति के गौण होने वाली शंका का भी समाधान हो गया।

इस प्रकार दो विपरीत तथ्यों का प्रतिपादन कर शंकराचार्य जी कह रहे हैं कि समाधान हो गया, कैसे समाधान हो गया? नित्य और अनित्य दो विपरीत भाव हैं। इसी आकाश में दो विपरीत भाव नित्य और अनित्य अवस्थित नहीं हो सकते। यदि आकाश अनित्य है तो आत्मा कहाँ रहता है, आत्मा अणु है या अनन्त है दोनों स्थितियों में दिक् के बिना सत्ता का अणुत्व या विभुत्व होना नहीं हो सकता। अत: दिक् नित्य है इसी कारण आकाश (= दिक्) को ब्रह्म का शरीर कहा गया है।

इस प्रकार शंकराचार्य जी ने स्वयं दो विपरीत तथ्यों का अपने भाष्य में कथन किया है। अन्ततोगत्वा उपनिषद्-प्रोक्त दो विपरीत सिद्धांतों (कि आकाश नित्य है तथा उत्पत्तिवान् भी है) में निहित रहस्य का अनावरण न हो सका है, रहस्य ज्यों का त्यों बना है। उस रहस्य को सुलझाने के लिए आगामी अनुच्छेदों में विचार किया जा रहा है।

3. आकाश महाभूत है

आकाश तत्त्व के विषय में जो भ्रान्ति है सर्वप्रथम उसका निवारण आवश्यक है। साधारणतया आकाश से अवकाश, फैलाव ग्रहण किया जाता है। साधारण भाषा में ठीक है किन्तु वैदिक साहित्य एवं दर्शन की भाषा में आकाश शब्द का अर्थ सदैव फैलाव नहीं है। तत्त्वमीमांसा में आकाश का अर्थ अवकाश, फैलाव (स्पेश) नहीं है वरन् आकाश महाभूत है। दर्शन के आकाश का लक्षण शब्द (sound) का प्रसार कहा गया है। विज्ञान से विदित है कि शब्द संकेत लहरों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाता है। इस कार्य के लिए एक सर्वव्यापी भौतिक सूक्ष्म पदार्थ के माध्यम की आवश्यकता है। अस्तु वैदिक साहित्य के अनुसार आकाश एक सर्वव्यापी सूक्ष्म तत्त्व का माध्यम है जो विकिरण (radiation) रूप है तथा जो शब्द के संकेत प्रसार के लिए उपयुक्त माध्यम का कार्य करती है। यह विकिरण आदिकाल में सर्वप्रथम उद्भूत होती है। ऋग्वेद में इसे सोम कहा गया है जो सर्वव्यापी है इसका पूर्ण विवरण अध्याय 9 में दिया गया जा चुका है। इस सर्वव्यापी विकिरण

का ज्ञान विज्ञान में अत्याधुनिक है। सन् 1965 में फ्रांस के दो वैज्ञानिक श्री आरनो पेन्जियाज व राबर्ट विल्सन ने इस विकिरण की सत्ता को सिद्ध किया है। अब प्रयोग सिद्ध होने के उपरान्त यह सत्य सर्वमान्य हो चुका है। इसका नाम कास्मिक विकिरण दिया गया है। यही वैदिक वाङ्मय का आकाश महाभूत है जो सर्वप्रथम मूल प्रकृति से आदि सृष्टिकाल में उद्भूत होता है। उपनिषदों में जहाँ आकाश को उत्पत्तिवान् कहा गया है, वहाँ आकाश शब्द से आकाश महाभूत का अर्थ ही ग्रहण किया गया है।

4. दिक् (स्पेश) व्याख्या

आकाश व दिक् का भेद ठीक से समझा जाना चाहिये। दिक् स्थान व खोल मात्र को कहते है। इसका लक्षण है स्थान प्रदान करना जो आयतन (volume) के रूप में नापा जाता है। दिक् सर्वव्यापी एवं नित्य है तथा समस्त द्रव्यों को ठहरने का स्थान देता है। यह दिक् खोल मात्र भौतिक द्रव्य शून्य तीन आयाम (three dimensional) द्वारा विज्ञान व्याख्यात फैलाव है। आकाश महाभूत एवं दिक् दोनों सर्वव्यापी हैं। अतः सर्वव्यापकता गुण के आधार पर आकाश महाभूत एवं दिक् (स्पेश) को साधारण भाषा में एकार्थी कर लिया गया है, किन्तु तत्त्वमीमांसा में लक्षण के आधार पर शब्दार्थ का ग्रहण किया जाना अपेक्षित है।

दिक् गुण रहित नहीं है। उसमें गुण है वह यह कि वह पदार्थों को ठहरने, भ्रमण करने, कोई आवरण, बाधा न प्रस्तुत कर उनमें प्रवेश व निष्क्रमण करने के गुण से युक्त है। नक्षत्रों के बीच दूरी, उनका अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण, कक्षा की वक्रता, लम्बाई-चौड़ाई, गोलाकार आदि आकाश के गुण प्रतीति के विषय हैं। इसी प्रकार एकदेशीय होना, निकटवर्ती होना, दूर होना, क्षेत्रफल होना, स्थान घेरना आयतन, वक्रता (curvature), ऊपर जाना, नीचे जाना आदि व्यावहारिक भाव आकाश के कारण ही सम्भव हैं। विज्ञान में आकाश को तीन विमा वाला कहते हैं अतः आकाश गुणवान् सत्तात्मक तत्त्व है। उपनिषद् ने आकाश को जहाँ नित्य एवं ईश्वर की देह कहा है वहाँ आकाश शब्द महाभूतवाची न होकर दिक् (स्पेश) वाची है। इस प्रकार उपर्युक्त समस्या का समाधान तत्त्वविवेचना से स्पष्ट है।

वेद व वैदिक साहित्य में समन्वय

वेद से इतर अनेक शास्त्रों में पाँच महाभूतों की चर्चा देखी जाती है किन्तु वैशेषिक दर्शन के 9 द्रव्यों में पंच महाभूतों से दिक् काल पृथक् माने गये हैं। विज्ञान

में काल (टाईम) की परिकल्पना आधुनिक है इसे चतुर्थ आयाम कहा गया है। वेद के बाद वैशेषिक दर्शन में दिक् काल की परिकल्पना विद्यमान है। इन्हीं विशेष तथ्यों की मीमांसा के कारण दर्शन को वैशेषिक की संज्ञा से प्रतिष्ठित किया गया है। शास्त्रों में जगत् को पंच महाभूतमय कहा गया है। उसका कारण यह है कि दिक् (अवकाश) एवं काल सदैव ही सभी रचनाओं में विद्यमान रहते ही हैं। अत: इनकी अनिवार्यता के कारण दार्शनिक परम्परा में इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया जाता है। वरन् इनकी विद्यमानता की स्वीकारोक्ति अव्यक्त रूप से निहित रहती है।

जो भी द्रव्य सत्ता में है वह ठहरने के लिए स्थान घेरता है अर्थात् स्थान के बिना किसी वस्तु की कल्पना हो नहीं सकती। इसी प्रकार प्रत्येक सत्ता के साथ काल भी जुड़ा हुआ है जब तक कि वह सत्ता काल से निपरेक्ष (absolute) अनादि-अनन्त तत्त्व न हो। इस कारण चाहे इतिहास हो या भूगर्भ शास्त्र या सृष्टि विज्ञान (cosmology) काल निर्णय उस शास्त्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। जो भी वस्तु निर्मित हुई है वह दिक्, काल से मुक्त नहीं हो सकती। बिना दिक् के वस्तु का ठहरना नहीं हो सकता तथा उत्पत्तिधर्मी वस्तु काल से संयुक्त है चाहे वह काल कितना भी पूर्ववर्ती क्यों न हो। अस्तु दर्शनों ने इन दोनों तत्त्वों की अनिवार्यता जानकार इनका पृथक् उल्लेख करना बुद्धियुक्त नहीं माना-इस कारण इनका पृथक् उल्लेख नहीं किया। अपतु ये दोनों तत्त्व प्रत्येक घटना, परिवर्तन उत्पत्ति, स्थिति, विनाश से, समवाय रूप से अभिन्न रूप से संयुक्त हैं। किन्तु यह ध्यान रखना है कि दिक् काल महाभूत नहीं हैं ये मूल तत्त्वों के यौगिक नहीं हैं, मूल तत्त्वों के परिणाम नहीं है न ही पदार्थ रचना में उस प्रकार नियोजित होते हैं जिस प्रकार पृथ्वी, जल, वायु, तेज व आकाश नियोजित होते व भाग लेते हैं। पृथ्वी, जलादि द्रव्य कणों के संघात हैं अथवा विकिरण (radiation) रूप वाले हैं, दिक् काल इन दोनों रूपों से परे है। वेद से इतर साहित्य में जगत् को पंच महाभूतमय माना गया है। क्योंकि ये पाँच ही क्रियात्मक तत्त्व हैं जो पदार्थ सत्ता के अंगभूत हैं। दिक्, काल अनिवार्य रूप से वर्तमान माने गये हैं। ऋग्वेद में पंच महाभतों के साथ दिक्, काल को सम्मिलित कर जगत् को सप्तवर्गी कहा गया है। अत: दोनों की अभिव्यक्ति में मौलिक भेद नहीं है।

5. सृष्टि-उत्पत्ति के छः कारण

किसी भी वस्तु की रचना में छ कारण होते हैं। गीता ने सांख्य सिद्धांत के आधार पर इस विषय का विवेचन किया है। गीता अध्याय 18 श्लोक 13 –

पञ्चेतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्व-कर्मणाम्।।

सभी कर्मों की सिद्धि के लिए ये पाँच हेतु सांख्य सिद्धांत में कहे गये हैं। उन्हीं को महाराज कृष्ण ने कहा है -

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा देवं चैवात्र पञ्चमम्।।

प्रथम कारण अधिष्ठान अर्थात् उपादान कारण, द्राव्यिक कारण है दूसरा कारण कर्ता, रचयिता या निमित्त कारण है, तीसरा कारण करण अर्थात् साधन तथा भिन्न-भिन्न विधियाँ, तरीके (methods) हैं। चौथा कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म तथा पाँचवां कारण देवं है। यह श्लोक जीवात्मा के कर्म के संदर्भ में कहा गया है। अतः देवं का अर्थ पूर्व संस्कारगत प्रवृत्ति है। सृष्टि उत्पत्ति के संबंध में अर्थात् ईश्वर के संदर्भ में देवं का अर्थ (अनादि अनन्त सृष्टि-प्रलय चक्र में) शाश्वत ज्ञान, योग्यता एवं सामर्थ्य है। इसी प्रकार किसी सामान्य कर्म में यह पाँचवाँ कारण कार्य करने की योग्यता या सामर्थ्य है।

इन पाँचों कारणों में निहित तात्पर्य को समझने के लिए एक उदाहरण दिया जाता है। कुम्हार द्वारा घड़े की रचना में मिट्टी अधिष्ठान, कुम्हार कर्ता, चक्रादि साधन, मिट्टी गूथना-सुखाना, अग्नि में पकाना रूप साधन व विधि तीसरा कारण है, कुम्हार द्वारा कर्म का किया जाना चौथा तथा कुम्हार को घड़े की रचना करने की विधि आदि का पूर्ण ज्ञान होना पाँचवाँ कारण है। इनमें से किसी एक कारण के भी अभाव में कार्य की सिद्धि असंभव है। यदि मिट्टी न हो अथवा चक्रादि साधन, अग्न्यादि उपलब्ध न हों या कुम्हार कर्म ही न करे तो रचना संभव नहीं है अथवा सब कुछ विद्यमान होने पर भी यदि कुम्हार को घड़ा बनाने का ज्ञान न हो तो भी रचना नहीं हो सकती।

इस प्रकार श्लोक में पाँच कारण कहे गये हैं। किन्तु छठा कारण अज्ञात रूप से वर्तमान है। वह ऐसा है कि उसके बिना कोई कार्य सम्पन्न हो ही नहीं सकता और वह है दिक् एवं काल। कुम्हार घड़े की रचना इस दिक् के बाहर नहीं कर सकता, इस विस्तार के अन्तर्गत ही करेगा, किसी स्थान पर करेगा। इसी प्रकार यह कार्य को किसी विशिष्ट काल में करेगा। दिक्, काल से निरपेक्ष एवं स्वतंत्र किसी कार्य की सत्ता नहीं हो सकती। यह छठा अज्ञात कारण प्रत्येक कर्म में विद्यमान रहता है। महाराज कृष्ण ने दार्शनिक परम्परा के अनुरूप ही इस छठे कारण को व्यक्त रूप में

नहीं कहा है। इस प्रकार प्रत्येक कर्म की सिद्धि के लिए छह कारणों, हेतुओं की वर्तमानता आवश्यक है। जिस प्रकार कर्म की सिद्धि के लिए छह कारणों, हेतुओं की वर्तमानता आवश्यक है, जिस प्रकार कर्म की सिद्धि संबंधी हेतुओं में दिक्, काल संबंधी छठा हेतु अज्ञात रूप से वर्तमान है वैसे ही दृश्य जगत् का विश्लेषण करने पर पंच महाभूतों के अतिरिक्त दिक्, काल की सत्ता है। इस प्रकार यह दृश्य जगत् अपने सर्वांगीण रूप में सप्तवर्गी द्रव्य सत्ताओं से परिभाषित होता है।

जगत् उत्पत्ति के छह कारणों में द्वितीय अधिष्ठान कारण तथा तृतीय कारण एवं विधियाँ प्रकृति में सन्निहित हैं तथा तीन कारण कर्तृत्व, कर्म एवं (देवं) सामर्थ्य ईश्वर में सन्निहित है। छठा कारण सृष्टि की आयु एवं विस्तार संबंधी जिसे ऋग्वैदिक भाषा में संवत्सर कहते हैं तथा सृष्टि में लोकों के बीच की दूरी का निर्धारण दिक् का यथावत् विभाजन व विस्तार है जिससे इच्छित लोकों पर वांछित ताप, आकर्षण व प्राणप्रद वायु व जलादि के संयोग विशेष से जीवन संभव हो सके। वैदिक साहित्य के षट् दर्शन सृष्टि उत्पत्ति संबंधी छह कारणों में से एक-एक कारण पर प्रकाश विशेष डालते हैं। क्योंकि प्रत्येक दर्शन वेद को आप्त प्रमाण मानता है। अतः उनमें परस्पर विरोध काल्पनिक है। वास्तव में प्रत्येक एक ही कार्य के परिपूरक है। सांख्य में अधिष्ठान कारण, न्याय में प्रकृति के गुण स्वभाव से कारण एवं विधि में हेतुभूत होना (कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते), उत्तरमीमांसा (वेदान्त) में ईश्वर का कर्तृत्व, योग में ईश्वर का ज्ञान व सामर्थ्य, पूर्वमीमांसा में कर्म एवं वैशेषिक दर्शन में अज्ञात कारण दिक्, काल की मीमांसा है। इन विभिन्न पहलुओं को मिलाने से सृष्टि उत्पत्ति पूर्ण रूप विकसित होती है ऐसा जानना चाहिए। कोई भी एक दर्शन अपने आप में अपूर्ण है। भेद बुद्धि के स्थान पर समन्वय वाली बुद्धि सर्वांगीण स्वरूप प्रस्तुत करती है।

6. ऋग्वेद में दिक् की परिकल्पना

कोई भी वस्तु दिक् के बिना ठहर नहीं सकती। यह दिक् उत्पत्तिवान् नहीं है, जहाँ तक द्रव्य सत्ता है वहाँ तक तथा उसके परे भी है। ऋग्वेद में दिक् को व्योम कहा गया है तथा ईश्वर को परमे व्योमन् कहा गया है। (**यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्**–ऋ. 10/129/7, **ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्**–ऋ. 1/164/39, **त्वं अस्य पारे रजसो व्योमन्**–ऋ. 1/52/12) इसका तात्पर्य है कि जहाँ तक द्रव्य सत्ता है वहाँ तक तो व्योम है ही किन्तु उसके परे जो व्योम है उसमें द्रव्य सत्ता नहीं है केवल ईश्वर की सत्ता है। इस कारण जो द्रव्य सत्ता से परे व्योम है उसे परम व्योम कहते हैं तथा वहाँ

केवल ईश्वरीय सत्ता होने से ईश्वर को परमे व्योमन् कहा जाता है। यह ईश्वर का प्रकृति से विभेदक लक्षण है। जहाँ प्रकृति की सत्ता नहीं है, उस परम व्योम में मात्र ईश्वर की सत्ता है इस कारण ईश्वर परमे व्योमन् है।

विज्ञान में परम व्योम की कल्पना नहीं है। विज्ञान वहाँ तक दिक् (स्पेश) मानता है जहाँ तक द्रव्य सत्ता अर्थात् गैलेक्सियों की सत्ता है। पुनः यह विज्ञान की प्रयोगसिद्ध परिकल्पना है कि विश्व का प्रसार हो रहा है (expanding universe) अर्थात् गैलेक्सियें (आकाश गंगाएँ) एक दूसरे से बड़ी तेज गति से दूर जा रही हैं। विज्ञान कहता है कि गैलेक्सियों के दूर भागने से दिक् (स्पेश) का फैलाव हो रहा है। यह परिकल्पना युक्ति पर आधारित नहीं है। वे इसके लिए फुग्गे (बैलून) का उदाहरण देते हैं। यह उदाहरण उनकी परिकल्पना के विपरीत सभी तथ्यों को प्रस्थापित करता है। फुग्गे के प्रसार में फुग्गे के बाहर (Outside the volume occupied by the balloon) दिक् (स्पेश) वर्तमान होता है उसी विद्यमान (already existing) दिक् में फुग्गे का प्रसार होता है। अस्तु यह उदाहरण दिक् स्पेश की उत्पत्ति का नहीं है वरन् उसके विपरीत यह सिद्ध करता है कि पूर्व से वर्तमान दिक् में ही जैसे फुग्गे का प्रसार होता है वैसे ही द्रव्य जगत् (गैलेक्सियों) का भी पूर्व से वर्तमान दिक् में ही प्रसार होता है। यदि फुग्गे के बाहर का दिक् अवरुद्ध कर दिया जाय तो फुग्गा फूट जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि गैलेक्सियों के प्रसार के लिए दिक् वहाँ पूर्व से ही मौजूद रहता है यदि ऐसा न हो तो विस्फोट अथवा परावर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है।

7. आकाश उत्पत्तिवान् है

पूर्व अनुच्छेद में यह बताया जा चुका है दिक् नित्य सर्वव्यापी सत्ता है। शास्त्रों में जगत् को पाँच महाभूतों से निर्मित कहा गया है; उसमें एक तत्त्व आकाश है। यह आकाश तत्त्व मात्र खोल के लिए नहीं आया है वरन् यह एक क्रियाशील तत्त्व (active principle) है। वैदिक साहित्य में आकाश तत्त्व को उत्पत्तिधर्मी कहा गया है। सृष्टि उत्पत्ति क्रम में सर्वप्रथम उत्पन्न द्रव्य आकाश है आकाश से उत्पन्न द्रव्य वायु है अस्तु आकाश वायु का उपादान कारण है।

मुण्डक उपनिषद् में कहा गया है कि द्रव्यों की उत्पत्ति के क्रम में सर्वप्रथम उत्पत्ति आकाश की है। आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से आपः हुआ। आकाश वह सूक्ष्म तत्त्व है जो सर्वप्रथम उद्भूत हुआ तथा जो वायु (gaseous state) का

उपादान कारण है। यदि आकाश से दिक् (स्पेश) अर्थ ग्रहण किया जाय तो जब आकाश नहीं था तब प्रकृति कहाँ ठहरी थी?

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी यही क्रम दिया हुआ है –

तस्मान् वै एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः।

सर्वप्रथम अव्यक्त प्रकृति से अत्यंत सूक्ष्म सर्वव्यापी आकाश (विकिरण) उत्पन्न हुआ। उस आकाश से तरल उत्पन्न हुआ इस मन्त्र पर स्वामी दयानन्द का भाष्य महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है, मूल भाष्य है –

तस्मान् सत्यादिस्वरूपपरमात्मन् आकाशो वायोः कारणं शब्द गुणं तत्त्वं सत्तात्मकं उत्पन्नं न च अत्र अभावमात्रं शून्य आकाशपदवाच्यं।

विद्वान् भाष्यकार ने स्पष्ट विवेचना की है कि सत्यादि स्वरूप परमात्मा ने आकाश तत्त्व जो वायु का कारण (उपादान) है तथा जिसका लक्षण शब्द ले जाना है ऐसे एक सत्तात्मक तत्त्व को उत्पन्न किया, न कि शून्य रूप कहे जाने वाले अवकाश खोल मात्र को।

उपनिषदों का आकाश महाभूत ऋग्वेद का सोम (विकिरण) है। ऋग्वेद के अनुसार भी सर्वप्रथम सोम उद्भूत हुआ था (क्र. 32)। इस प्रकार जो पाँच महाभूतों में आकाश महाभूत कहा गया है वह सर्वव्यापक (कास्मिक) आदि विकिरण है, इस विकिरण से ही तरल (fluid) की उत्पत्ति संभव है।

8. कालमीमांसा

काल उत्पत्तिवान् है। काल का अस्तित्व घटनाओं की सापेक्षता (relativeness) से है, घटनाओं के क्रम की सापेक्षता से है, घटनाक्रम से निरपेक्ष, स्वतंत्र, समय का अस्तित्व नहीं हो सकता है। घड़ी के पेन्डुलम का एक चक्कर पूरा करना एक घटना है कुछ चक्करों के समुदाय को एक सेकेन्ड कहते हैं अर्थात् घटनाओं के तारतम्य के समग्र रूप को समय के रूप में देखा जताा है। इसी प्रकार सूर्य उदय होकर क्षितिज से ऊपर चढ़ता हुआ अस्त होता है, यह एक घटना क्रम है। उदय एवं अस्त इन दो घटनाओं को जोड़ने वाला जो सूर्य का निरन्तर आरोहण रूप घटना क्रम है उसे दिन की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार पृथ्वी द्वारा सूर्य के चारों ओर निरन्तर परिक्रमा एक लगातार घटित घटना क्रम है; इस घटनाक्रम के समग्र रूप को वर्ष की संज्ञा दी जाती है। विदित होता है कि समय घटनाक्रम का पर्याय है घटनाक्रम से स्वतंत्र काल की सत्ता की कल्पना नहीं की जा सकती।

घटनाक्रम से काल का संबंध क्यों है ? सातत्य घटना से काल क्यों नापा जा सकता है ? आप कहेंगे कि घटना के अभाव में काल की गणना नहीं हो सकती यह सत्य है किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि घटनाक्रम के अभाव में काल का अस्तित्व ही नहीं रहता। वस्तुतः यह देखना है कि घटना से स्वतंत्र काल का अस्तित्व है अथवा नहीं ? यह कहने से कोई घटना एक हजार वर्ष पूर्व हुई तात्पर्य क्या है ? विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उक्त घटना के बाद अनेक घटनाक्रमरूप चक्र चला तथा प्रकृति में एक सातत्य घटित होने वाला घटनाक्रम ऐसा है जो एक हजार बार हुआ अर्थात् उक्त घटना के अनन्तर पृथ्वी ने सूर्य की एक हजार बार परिक्रमा की। इस एक हजार की संख्या को वर्ष की संज्ञा प्रदान करने मात्र से काल स्वतंत्र अस्तित्व वाला नहीं हो सकता। एक हजार परिक्रमा एक सातत्य घटनाक्रम है। अस्तु कालसातत्य भी घटनाक्रम ही है। इसी प्रकार घड़ी के लघु चक्र के कुछेक चक्करों की सातत्य घटना को मिनटमात्र कह देने से कोई नई परिस्थिति, कोई नई सत्ता का जन्म नहीं हो सकता। वस्तुतः जो घटना घटित हुई हैं वह है लघु चक्र द्वारा कुछेक चक्कर लगाना, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। कुछेक चक्करों के घटित हो जाने को ही हम कहते है कि कुछ काल हो गया। अतः सातत्य घटना के तारतम्य को काल के रूप में देखा जाता है।

9. विज्ञान में काल की परिकल्पना

महान् वैज्ञानिक सर अलबर्ट आईन्सटीन ने काल (time) को वस्तु (object) का चतुर्थ आयाम कहा है जिसका तात्पर्य यह है कि काल वस्तु का गुण है। काल की स्वतंत्र, निरपेक्ष सत्ता सर आईन्सटीन ने नहीं मानी है। वस्तु समय से संबंधित है किसी वस्तु के विषय में यदि समय का उल्लेख न किया जाय तो वह बात अर्थ हीन (meaningless) है। उदाहरण के लिए यह कहा जाय कि पृथ्वी की दशा का वर्णन करो तो इस प्रश्न में मौलिक भूल है, काल के उल्लेख के बिना इस दशा का प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता। पृथ्वी की आयु अब करोड़ों वर्षों में आँकी जा रही है। प्रश्न में किस काल की दशा के ज्ञान की अपेक्षा है यह स्पष्ट किया जाना चाहिए।

सामान्य रूप से प्रकृति और विशेष रूप से कोई भौतिक द्रव्य परिवर्तन के सातत्य प्रवाह में विद्यमान है। किसी बिन्दु (origin) की अपेक्षा से वस्तु की स्थिति तीन आयामों से (coordinates) जानी जाती है। पर वस्तु की स्थिति किस काल से संबंधित है यह जानना आवश्यक है समय से जोड़े बिना सूचना अधूरी है। सर

आईन्सटीन ने अनेक प्रकार से समय की सापेक्षता (relativeness) को सिद्ध किया है।

काल (time) सृष्टि विज्ञान के समीकरणों की एक चर राशि (variable) है। यदि काल निरपेक्ष सत्ता हो तो वह समीकरण की एक चर राशि नहीं हो सकता। गणित शास्त्र का यह प्रस्थापित सिद्धान्त है कि यदि A, B पर निर्भर है तो B का A पर निर्भर होना अवश्यम्भावी है।

If $A = KB$

where K is a constant, then

$B = A/K$

इस प्रकार यदि परिवर्तन काल पर निर्भर है तो काल परिवर्तन से निरपेक्ष नहीं हो सकता वरन् काल परिवर्तन पर आधारित राशि है।

विज्ञान के (time dialation) समय की नाप के पृथक् मानों की परिकल्पना के सिद्धान्त से यह ठीक से समझा जा सकता है कि समय घटना क्रम पर किस प्रकार आधारित परिवर्तन का मात्र सूचकांक (meter) है। यह सत्य कल्पना है कि यदि एक व्यक्ति पृथ्वी पर से (space) अन्तरिक्ष में ईसा की 20 वीं सदी में चला जाय और वहाँ से अपनी घड़ी के अनुसार 28 वर्ष बाद लौटे तो लौटने पर उसे विदित होगा कि पृथ्वी पर तीन हजार वर्ष व्यतीत हो गये हैं अर्थात् ईसा का सन् 5 हजारवें वर्ष में पहुंच चुका है। इस प्रकार समय कोई (absolute) निरपेक्ष सत्ता नहीं है यदि निरपेक्ष सत्ता वाला होता तो समय के दो पृथक् मान न होते। पृथ्वी पर परिवर्तन की गति गुरुत्वाकर्षण के कारण अति तीव्र है किन्तु अन्तरिक्ष में गुरुत्वाकर्षण के अभाव में (decay) क्षय की गति अति मन्द होती है। क्योंकि समय परिवर्तन पर आधारित है। इस कारण समय के पृथ्वी पर और अन्तरिक्ष में पृथक्-पृथक् मान होते हैं।

विज्ञान ने काल का स्वरूप जो द्रव्य के चतुर्थ आयाम और सापेक्षता के सिद्धांत के रूप में रखा है, उसी तथ्य की मीमांसा यहाँ नित्य और अनित्य दो प्रकार की सत्ताओं के संबंध से लोकप्रिय भाषा में की गई है। विज्ञान का दायरा परिवर्तनशील अनित्य द्रव्य तक सीमित है। किन्तु यहाँ दर्शन का क्षेत्र नित्य-अनित्य दोनों को समाहित करता है, उस दृष्टिकोण से वेद में काल संबंधी परिकल्पना को प्रकाश में लाया गया है।

काल किसी वस्तु में हुए परिवर्तन का मान है, अवस्थान्तरित होने का सूचकांक (meter) है। वस्तु की अवस्था में, वस्तु में हुए परिवर्तन का पर्याय है। विज्ञान ने

परमाणु की आयु परमाणु में हुए नाभिकीय परिवर्तन (रेडियो एक्टीविटी) से निकाली है। परमाणु की आयु से तात्पर्य है परमाणु रचना कितने काल पूर्व हुई थी। नाभिकीय परिवर्तन से काल कैसे निकाला जा सका? इससे यह बात स्पष्ट है कि काल परिवर्तन का मापदण्ड है या इसे ऐसा कहना उचित होगा कि परिवर्तन काल का मापदण्ड है या काल है। हम जब भी काल के विषय में सूचना देते हैं तो अनजाने ही घटनाक्रम का ही उल्लेख करते हैं। एक वर्ष क्या है? पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा। क्षण क्या है? लघु चक्र का स्थानान्तरित होना मात्र। दिन क्या है? सूर्य का उदय से अस्त तक भ्रमण मात्र।

अस्तु, गणित शास्त्र की दृष्टि से यह सूत्र बनता है

समय परिवर्तन के अनुपात में है अथवा समय = स्थिर राशि × परिवर्तन (time = constant x change)। इसी समीकरण को एक उदाहरण द्वारा समझाया जाता है। एक कण (particle) 10 किलोमीटर प्रति सेकेन्ड की गति से चलता है। यदि वह निर्दिष्ट स्थान से 200 कि.मी. दूर पहुँच गया हो तो समय का मान निकालें जो व्यतीत हुआ।

समय = 1 सेकेन्ड, परिवर्तन = दूरी = 10 कि.मी.

सूत्र – समय = स्थिर राशि × परिवर्तन में मान रखने पर –

1 = स्थिर राशि X 10

स्थिर राशि = 1/10

इसलिये समय जो व्यतीत हुआ 1/10 X 200 = 20 सेकेन्ड

इस प्रकार काल परिवर्तन से जुड़ा है। यदि परिवर्तन शून्य हो तो काल का मान भी शून्य होगा जिसका अर्थ यह है कि काल का अन्त हो जाएगा अर्थात् परिवर्तन-रहित स्थित होने से काल विलीन हो जाएगा। अतः काल परिवर्तन का पर्याय है सातत्य घटनाक्रम का दूसरा नाम काल है। घटनाक्रम से पृथक् काल की कल्पना अचिन्तनीय है।

विज्ञान के अनुसार जगत् में केवल एक स्थिर राशि (constant) है यह है प्रकाश की गति। प्रकाश एक सेकेन्ड में 1 लाख 86 हजार मील चलता है। तो सेकेन्ड क्या है ? सेकेन्ड प्रकाश किरण की स्थिति में वह परिवर्तन है जो उस प्रकाश किरण को उद्भूत होते ही स्रोत से 1 लाख 86 हजार मील दूर ले जाता है। ध्यान रहे सेकेन्ड

काल -खण्ड है। इस प्रकार काल-खण्ड परिभाषित हो गया क्योंकि काल, काल-खण्डों का समुच्चय है। अतः काल भी परिभाषित हो गया। दिक् (स्पेश) में उद्भूत हुई प्रकाश किरण की निरंतर स्थिर काल (सेकेन्डों) की सूचक हैं, माप हैं। अतः द्रव्य में परिवर्तन चाहे वह दिक् में सापेक्षिक स्थिति (relative position of an object in space) के रूप में हो या द्रव्य की अवस्था में परिवर्तन के रूप में (जैसे देह का बचपन, जवानी, बुढ़ापा) काल का प्रतिरूप है, प्रतिमान है।

10. काल घटनाचक्र प्रवाह है

दर्शन में काल को घटनाचक्र के प्रवाह के रूप में देखा जाता है। इस विषय में दो उदाहरण काल की गति को समझने के लिए दिये जा सकते हैं। हम नदी के प्रवाह को देखते हैं। नदी का जल प्रतिक्षण बदलता है, प्रतिक्षण नवीन जल पूर्व जल का (जो वह जाता है) स्थान ले लेता है। इस तीव्र गति से परिवर्तित होने वाले प्रवाह को हम स्थायी जल प्रवाह कहते हैं। हम कहते हैं कि यह वही नदी है जिसे गत वर्ष देखा था, क्या यह वस्तुतः सच है। यह तो तब सत्य होता यदि जल प्रवाहरहित होता। यदि नवीन जलप्रवाह, पूर्व हुए प्रवाह का रिक्त स्थान न भरे तो नदी अस्तित्वहीन हो जाय। तो नदी का अस्तित्व प्रतिक्षण नवीन आगन्तुक जलप्रवाह की घटना पर आधारित है। इसी प्रकार काल का अस्तित्व जगत् में प्रतिक्षण होने वाले परिवर्तन पर आधारित है, परिवर्तन समाप्त हुआ कि (नदी की तरह) काल का प्रवाह रुका।

इस विषय में दूसरा उदाहरण दीपक की लौ का दिया जाता है। लौ से प्रतिक्षण किरणों की लहर प्रस्फुटित होकर प्रसारित होती है। (इसे विज्ञान में रिलीज ऑफ ए बन्च आफ फोटान्स कहते हैं)। लौ प्रतिक्षण बदलती है इतनी तेज गति से कि हमें एक लगातार, सतत (continuous) लौ दिखाई देती है जबकि प्रतिक्षण पूर्व रूप नष्ट होता तथा उत्तरवर्ती (आगामी) रूप उद्भूत होता है। इस क्रमिक तीव्र परिवर्तन में स्थायित्व दिखाई देता है। पूर्व लौ के अदृश्य होने व नवीन लौ के रिक्त स्थान को भरने रूप जो घटनाएँ हैं, उनके अस्तित्व के कारण ही लौ का अस्तित्व है। यदि नवीन लौ का उद्भव न हो तो लौ अस्तित्वहीन हो जाय, जब किसी क्षण ऐसा होता है तो सचमुच ही दीपक बुझ जाता है। इसी प्रकार काल का अस्तित्व जगत् में प्रतिक्षण होने वाले घटनाक्रम के तारतम्य पर आधारित है। घटनाक्रम रुका और काल का अस्तित्व समाप्त हुआ। काल घटनाओं से स्वतंत्र कोई निरपेक्ष (absolute) सत्ता नहीं है यदि ऐसा होता तो यह भी संभव होता कि काल की परिभाषा घटना निरपेक्ष स्वतंत्र रूप में की जा सकती। काल की कोई परिभाषा हमें ऐसी विदित नहीं

है जो घटनारहित स्वतंत्र सत्ता वाली हो। तो यह मानना ही पड़ेगा कि काल का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है, घटनाक्रम पर आधारित है। घटना के सातत्य घटित होने का सूचकांक ही काल है, द्रव्य के अवस्थान्तरित होने का सूचकांक ही काल है, वस्तु का एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्तरित होने का सूचकांक ही काल है।

11. कालशून्य स्थिति की कल्पना

तो घटनाक्रम के परिभ्रमण के सूचकांक का नाम काल है। घटनाक्रम का चक्र रुका कि काल भी रुका, काल भी अस्तित्वहीन हुआ। कल्पना करें कि एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये कि सर्वत्र साम्यावस्था, सर्वत्र स्थिरता, गतिशून्यता स्थापित हो जाय, समस्त द्रव्य जगत् मूल तत्त्व की मौलिक अवस्था में गतिशून्य हो स्थित हो जाय, मूल तत्त्व में कोई स्पन्दन न हो, तो समस्त घटना शून्य इस कल्पित अवस्था में क्या काल की सत्ता होगी ? यदि होगी तो उसका मापदण्ड क्या होगा ? उस काल को कैसे नापेंगे ? कोई घटना घटित हो ही नहीं रही है जिससे काल की सत्ता जानी जा सके। यदि ईश्वर का हृदय स्पन्दन कर रहा है तो वही उस स्पन्दन की घटना की गिनती से काल को नाप सकता है किन्तु ईश्वर का हृदय स्पन्दनरहित है। ईश्वर तो नित्य, निर्गुण परिवर्तनरहित है तो किसी प्रकार का परिवर्तन हो ही नहीं रहा है सर्वत्र स्थिरता है तो कल्पना करें कि काल कहाँ गया ? ज्ञात हुआ कि काल मूल तत्त्व के गर्भ में छिप गया। जन्म भी तब ही लेगा जब मूल तत्त्व में क्रिया होगी। अतः काल मूल तत्त्व की अवस्था है। यदि मूल तत्त्व वैसा ही निष्क्रिय पड़ा रहे तो काल की उत्पत्ति न होगी।

ऋग्वेद के प्रसिद्ध नासदीय सूक्त (ऋ. 10/129) में एक ऐसी स्थिति की कल्पना की गई है जिसमें मूल भौतिक शक्ति परिवर्तनरहित स्थिति में अवस्थित हो जाय और सर्वत्र एक स्थिरता, ध्रुवता दिखाई दे। (क्र. 211)

न मृत्युः आसीत् अमृतं न तर्हि, न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।

न किसी का अन्त हो सके ऐसी स्थिति थी, न किसी वस्तु की उत्पत्ति हो सके ऐसी स्थिति थी अर्थात् मूल अवस्था में, आद्या अवस्था में स्थित मूल शक्ति में, जो अविनाशिनी है, मृत्यु अकल्पनीय है उत्पत्ति एवं विनाश मूल के उद्भूत अवस्थाओं के होते हैं, रूपों के होते हैं, यौगिकों के होते हैं, परिणामों के होते हैं। परंतु उत्पत्ति विनाश की प्रक्रिया मूल सत्ता के संदर्भ से संज्ञाहीन है। अत एव मूल अवस्था में स्थित आद्या मातृशक्ति में न मृत्यु है, न जीवन है वहाँ तो केवल एक ही सत्य प्रतिष्ठित है और वह

यह कि 'अस्ति' कुछ है, अस्तित्व है, सत्ता है। बस 'है' अन्य कुछ नहीं। नहीं रहेगा (मृत्यु), उत्पन्न हो रहा है (जन्म) इस प्रकार की स्थिति अर्थहीन है।

न रात थी, न दिन था। यह बात साधारण पार्थिव दिन-रात के संबंध में नहीं कही गई है। उस समय काल की सत्ता ही न थी। अतः दिन या रात होने का प्रश्न ही नहीं उठता। समय (टाईम) मूल सत्ता के गर्भ में था। काल के गाल में सब उत्पत्तिधर्मी (इसलिए मरणधर्मी) समा गये तब काल स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो गया। परिवर्तन-रहित स्थिति में, किसी का अन्त हो सके, किसी की मृत्यु हो सके ऐसी कोई वस्तु मौजूद न थी तब काल किसकी अपेक्षा से जिएगा। काल तो सदा क्षर स्वभाव की अपेक्षा से जीता है उस सन्नाटे की स्थिति में सब कुछ (stand still) ऐसे शान्त हो गया था जैसे - (क्र. 222)

तम आसीत तमसा गूढम्।

गहन अंधकार की स्थिति वर्तमान थी किन्तु वह अंधकार मात्र प्रकाश का अभाव (रूप अवस्था) न था, (तमसा) अंधकार की भाँति (गूढ़म्) रहस्यमयी स्थिति वर्तमान थी। जैसे अंधकार के व्याप्त हो जाने पर कहाँ क्या है सभी कुछ अविज्ञेय हो जाता है, वैसी, ही वह जानने के अयोग्य स्थिति थी। वह काल शून्य स्थिति थी। वह ऐसी स्थिति थी जब ईश्वर नवीन सृष्टि के लिए स्वयं तत्पर था[1]।

12. काल की उत्पत्ति

काल घटनाओं के क्रम के माध्यम से प्रकट होता है। पूर्व में ऐसी स्थिति की कल्पना की गयी है जब मूल आद्या शक्ति अपने स्वस्वरूप में स्थित रहे, अपनी मूल शाश्वत अवस्था में वर्तमान रहे। उस परिवर्तनरहित शान्त, स्थिर अवस्था में 'हो रहा है' नाम की किसी अभिव्यक्ति की सत्ता नहीं है क्योंकि कुछ हो ही नहीं रहा। कुछ नहीं हो रहा है इसीलिए स्थिति परिवर्तनशून्य है। जिस स्थिति में कुछ नहीं हो रहा है उसकी अभिव्यक्ति किन शब्दों में करनी होगी? उस स्थिति की अभिव्यक्ति केवल 'है' से होती है, केवल 'अस्ति' से और 'है' में काल नहीं हैं ध्रुवता में काल नहीं है अनादि अनन्त, शाश्वत जिसकी अभिव्यक्ति मात्र 'है' से होती है, में काल नहीं है। काल तो तब प्रवेश करता है जब कब का प्रश्न उठता है। कोई स्थिति कब से है, कब तक रहेगी इन अभिव्यक्तियों में काल का प्रवेश हुआ है। क्यों हुआ है ? इसका उत्तर यही है कि काल उत्पत्ति, विनाश धर्म से संयुक्त है। उत्पत्ति का ही दूसरा नाम परिवर्तन है। अन्ततोगत्वा यही निश्चित हुआ कि काल परिवर्तन के साथ प्रतिबद्ध है,

बँधा हुआ है परिवर्तन निरपेक्ष, परिवर्तन से स्वतंत्र काल की सत्ता अचिन्तनीय है। क्योंकि परिवर्तन उत्पत्ति विनाश धर्मी है। काल परिवर्तन के साथ उत्पन्न होता है और उसी के साथ लय होता है। परिवर्तन में ही काल की गति है, काल की सत्ता है ऋग्वेद में काल की उत्पत्ति का कारण परिवर्तन कहा गया है। ऋ. 10/190/1 में इस स्थिति का विवरण है – (क्र. 223)

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।

ऋतं स्वाभाविक बहाव को, **च सत्यं** तथा सत्य स्वरूप प्रकृति को **तपसः अभि इद्धात्।** ज्ञानमय तप से, शक्ति से चारों ओर प्रज्वलित किया। **ततः** उसी से रात्रि **प्रलय** रात्रि **अजायत** उत्पन्न हुई है। ततः उसी से (**अर्णवः**, **ऋ** गतो + **असुन्** नुट् च = अर्णस्) गति को धारण करने वाले समुद्रः मूल तत्त्व के कणों के सागर का उदय हुआ।

ऋचा में यह कहा गया है कि ऋत = प्राकृतिक प्रवाह की उत्पत्ति से सत्य स्वरूप की अभिव्यक्ति हुई। ऋचा में दो भावों की उत्पत्ति कही गयी है। एक है ऋत और दूसरा है सत्य। ऋत का अर्थ स्वाभाविक प्रवाह और सत्य का अर्थ है नित्य। उस स्थिति में प्राकृतिक प्रवाह रुका हुआ था अर्थात् काल शून्य स्थिति थी; काल का अस्तित्व नहीं था। न रात्रि थी, न दिन था –

न राया अह्न आसीत्प्रकेतः। (10/129/2)

काल की सत्ता (प्रकेतः) प्रकट रूप में नहीं थी। क्योंकि वह स्थिति घटना रहित थी और घटना के बिना काल की सत्ता हो नहीं सकती। इस कारण न रात्रि थी न दिन था। किन्तु परविर्तन का मूलभूत आधार सत्य स्वरूप प्रकृति वर्तमान थी। इस कारण प्रकेतः पद के द्वारा यह कहा गया है कि काल की सत्ता की अभिव्यक्ति न हुई थी; यद्यपि उसकी बीज रूपा कारण प्रकृति मौजूद थी।

प्रकृति के कणों को गति प्राप्त होते ही ऋत का उदय हुआ और इसी से सत्य स्वरूप प्रकृति (सत्यं अजायत) की अभिव्यक्ति हुई। (ततः) उसी प्रकृति के कणों के सागर में गति रूप प्राकृतिक बहाव के आरंभ होने की घटना से रात्रि की उत्पत्ति हुई। जो काल शून्य स्थिति में चल रही थी वह समाप्त हुई यदि वह स्थिति समाप्त न होती तो काल शून्य स्थिति कायम रहती। रात्रि की उत्पत्ति की बात कहकर ऋषि ने इस तथ्य की प्रस्थापना की है कि काल की सत्ता न थी। क्योंकि यदि दिन नहीं था

तो प्रलय रात्रि होना चाहिए। तो न सृष्टि काल रूप दिन था न प्रलय काल रूप रात्रि थी। वह मध्य की काल शून्य स्थिति थी। प्रकृति में हरकत रूप परिवर्तन से काल की उत्पत्ति का होना अभिप्रेत है। जब काल की उत्पत्ति हुई तब रात्रि की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार काल की उत्पत्ति प्राकृतिक प्रवाह रूप परिवर्तनजन्य है। इस ऋचा में रात्रि की उत्पत्ति की चर्चा है। आगामी ऋचा में (संवत्सर =) सृष्टिकाल रूपी दिन की उत्पत्ति की बात है। इस प्रकार ऋषि ने इस तथ्य को प्रकाशित किया है कि प्रलय रात्रि और सर्जन काल रूप दिन इन दोनों की उत्पत्ति युगपद्, एक साथ ही होती है और वह प्रकृति में परिवर्तन की उत्पत्ति से होती है अर्थात् काल परिवर्तन जन्य है। काल की सत्ता द्रव्य में हुए परिवर्तन, अवस्थान्तरण पर आधारित है (compare principal of time dilation)- यह अति उच्च आधुनिक विज्ञान अन्वेषित परिकल्पना ऋचा में विद्यमान है। आगामी ऋचा है - (क्र. 224)

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहो रात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी।।

अर्णवात् समुद्रात् अधि गतिशील सागर के विस्तार को आधार बना **संवत्सरः अजायत** सृष्टिकाल की उत्पत्ति हुई। **विश्वस्य वशी** जगत् के स्वामी ने (**मिषतः**, मिष् = पलक झपकना) मानो पलक झपकते हुए **अहः रात्राणि** सृष्टिकाल एवं प्रलयकाल की **विदधत्** अवधि विशिष्टता से निर्धारित की।

संवत्सर (= काल) की उत्पत्ति मूल तत्त्व के कणों में उत्पन्न वेग की घटना से संयुक्त है। कणों में वेग की घटना का उत्पन्न होना काल के उत्पन्न होने का पर्याय है। काल की उत्पत्ति घटना (रिलेटिव्ह) है यह विचार मंत्र में व्यक्त है।

कणों में स्पन्दन ही मानों ईश्वर का पलक झपकाना है; वहीं से ईश्वरीय निमेष (= पलक झपकाना) आरंभ हुआ। यथास्थिति भंग हुई, परिवर्तन रूप घटनाचक्र चल पड़ा, काल प्रवाहित हुआ। घटनाओं के सतत क्रम रूप काल की अभिव्यक्ति हुई। ध्यान रहे, परिवर्तन केवल प्रकृति में होता है ईश्वर परिवर्तन की सीमा के परे है।

13. शाश्वत तत्त्व काल सीमा से परे है

हमने जगत् में सभी आदि अन्त वाली वस्तुएँ अर्थात् परिवर्तनशील वस्तुएँ ही देखी हैं। परिवर्तन की बात आते ही काल का प्रवेश हो जाता है। अतः काल से परे, काल से निरपेक्ष, आदि-अन्त रहित तत्त्व हमारे अनुभव के परे की वस्तु है। हमारे संस्कारगत विचार काल से निरपेक्ष, सत् स्वरूप, स्वयंभू की कल्पना के आदी नहीं

हैं। यह कल्पना कष्टसाध्य दर्शन पर आधारित है। सत् स्वयंभू तत्त्वों की सापेक्षता से काल अनावश्यक है, अस्तित्वहीन है। नित्य तत्त्व के विषय में केवल यह कहा जाता है 'अस्ति' (है)। आगे रहेगा या था कहने से काल का समावेश हो जाता है (जो काल से निरपेक्षता का सूचक नहीं है) ऐसा विचार करने का कारण यह है कि हम सदैव अनित्य अर्थात् उत्पत्ति-विनाशधर्मी द्रव्य के संदर्भ से ही सोचते हैं। अनित्य द्रव्य से नित्य की तुलना करते हैं, परिवर्तशील की अपरिवर्तनशील स्वयंभू से तुलना करते हैं।

शाश्वत, स्वयंभू तत्त्व परिवर्तन से मुक्त है इस कारण उसे नित्य कहते हैं। नित्य का अर्थ है एक-सा रहने वाला। अतः नित्य तत्त्व काल के परे है, काल के बंधन से मुक्त है। मुक्त इसलिए है कि अपरिवर्तनशील है। अतः परिवर्तन ही काल का स्वरूप है। जहाँ परिवर्तन है, अवस्थान्तरित होना है वहाँ काल है। पर जहाँ परिवर्तन नहीं है, जहाँ अवस्थान्तरित होना नहीं है वहाँ ध्रुवता है, नित्यता है, वहाँ कालातीत स्थिति है, वहाँ काल का अस्तित्व नहीं है। इसीलिए ईश्वर को कालातीत या अकाल कहा जाता है। यदि काल निरपेक्ष सत्ता हो तो कोई भी कालातीत हो सकता है।

14. काल प्रवाह से नित्य है

जगत् के मूल कारण में लय होते ही अर्थात् नित्य में अवस्थित होते ही काल भी लय को प्राप्त होता है। पुनः मूल तत्त्व के कणों में गति होते ही काल में परिवर्तन होता है। ध्यान रहे, यहाँ गति परिवर्तन के अर्थ में ली गयी है यदि गति स्थायी (constant) हो तो उसे भी परिवर्तनरहित ही माना जाता है।

इस प्रकार समस्त परिवर्तनों को समावेश करने वाली सृष्टि की उत्पत्ति होती है जो शनैः शनैः लय की ओर जाती है। फिर से मूल अवस्था आती है पर मूल अवस्था में आकर तत्त्व स्थिर नहीं हो जाता। पुनः सृष्टि की ओर चल पड़ता है अर्थात् परिवर्तन भी स्थायी है, ध्रुव है। जगत् उत्पत्ति एवं लय एक अनादि-अनन्त चक्र है[1] अर्थात् परिवर्तन स्वयं प्रवाह से अनादि-अनन्त है, शाश्वत है। यदि परिवर्तन उत्पत्ति-विनाश धर्मी है तो परिवर्तन का सूचकांक, काल भी उत्पत्ति-विनाशधर्मी क्यों नहीं है। क्योंकि परिवर्तन (सृष्टि-प्रलय) शाश्वत है-इस कारण काल भी तद्वत् है।

---

1. सन् 1986 तक विज्ञान काल (time) को ध्वस्त हाने व उत्पत्ति धर्म वाला तथा वर्तमान दृष्टि को ही प्रथम और अन्तिम सत्य मानता था।

गीता ने इस सत्य को रहस्यमयी भाषा में कहा है। न तो इस जगत् का आरंभ है न ही इसका अन्त है न ही यह अच्छी तरह स्थित ही है (**न अन्तः न च आदिः न च संप्रतिष्ठा**) अर्थात् यह आदि-अन्त वाला होता हुआ भी प्रवाह से सनातन है। इसी कारण उपनिषद् (कठ.2/3/1) ने इसे सनातन वृक्ष कहा है :-

'एषोऽश्वत्थः सनातनः।'

अब अन्तिम प्रश्न रह जाता है कि यदि दिक् परिणाम अर्थात् उत्पत्तिवान् नहीं है तो क्रमांक 221 की ऋचा में अदिति को सात परिणामों की माता क्यों कहा गया है ?

दिक् उत्पत्तिवान् नहीं है किन्तु लोकों, नक्षत्रों-ग्रहों के बीच की दूरी का निर्धारण प्रत्येक कल्प में होता है। अन्तरिक्ष inter stellar space = लोकों के बीच का दिक् (= दूरी) का निर्धारण ही इस अर्थ में दिक् का निर्धारण (fixing of the firmament) कहलाता है। यही दिक् संबंधी सप्तम परिणाम है। ऋचा कहती है - (क्र. 225)

सूर्याचन्द्रमसो धाता यथा पूर्वमकल्पयत। 10/190/3

ईश्वर ने सूर्य-चन्द्र आदि लोकों को दिक् में पूर्व की भाँति स्थापित किया।

अध्याय 17

उषा-रहस्य एवं सृष्टि-प्रलयकाल

इस अध्याय में ऋग्वेद के आंतरिक साक्ष्यों के आधार पर वैदिक प्रतीक उषा में निहित अर्थ को प्रकाश में लाया गया है। वैदिक प्रतीक उषा सृष्टि-रचना-काल के लिये प्रयुक्त होता है।

वैदिक द्रष्टाओं के अनुसार यही सृष्टि प्रथम और अन्तिम नहीं है। दिन और रात्रि की तरह सृष्टिकाल और प्रलयकाल एक के बाद एक चक्रीय क्रम से आते हैं। यह चक्र अनादि अनन्त है। प्रसंगानुसार वेद मन्त्रों में आयी रात्रि प्रलय-रात्रि की द्योतक है तथा सृष्टिकाल के लिये उषा का प्रयोग किया गया है। वास्तव में ईश्वरीय निर्माण शक्ति की ही उषा के रूप में स्तुति की गयी है। यह सत्य वेद मन्त्रों में निहित है। वेद के अन्तः साक्ष्यों से ही सम्पूर्ण तथ्य को प्रकाश में लाना अभीष्ट है।

ऋग्वेद मण्डल 1 के सूक्त 113 का ऋषि कुत्स आङ्गिरस है। सूक्त का देवता अर्थात् विषय उषा है। सूक्त में प्रलयरात्रि व सृष्टिकाल रूपी उषा के अनन्त चक्र का विशद वर्णन है। सूक्त के 3 रे मन्त्र की व्याख्या दी जाती है। मन्त्र है-(क्र० 226)

समानो अध्वा स्वस्त्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे।।

भाषार्थ–स्वस्त्रोः दोनों बहनों का (अध्वा=अध्वन्=मार्ग, पृ० 629) मार्ग **अनन्तः** असीम काल चक्र में **समानः** बराबर अवधि का है। **तं** उस मार्ग पर **देव-शिष्टे** ईश्वर की आज्ञानुसार **अन्या अन्या** पृथक्-पृथक् क्रम से **चरतः** विचरण करती हैं अर्थात् एक के पीछे एक आती हैं। **विरूपे** एक दूसरे से विरुद्ध स्वभाव वाली **नक्तोषासा** प्रलयरात्रि और उषाकाल **समनसा** समान चित्त वाली **सुमेके** सुसंगत होकर (**न मथेते**, √मथ्=विडोलना, लट् ल०) न मार्ग पर डगमगाती हैं, न **तस्थतुः** न रुकती हैं।

मन्त्र में साधारण पार्थिव दैनिक उषाकाल की चर्चा नहीं है। दैनिक उषाकाल

की अविध दिन के बराबर नहीं होती तथा उषाकाल के पश्चात् रात्रि नहीं आती, वरन् दिन आता है। साधारण दैनिक उषाकाल देवशिष्टे नहीं है। यह सूर्य से संचालित है। अनन्त कालचक्र में एक के पीछे एक जाने वाली सुसंगत बराबर-बराबर कालावधि वाली केवल प्रलयकाल रूपी रात्रि एवं सृष्टिकाल रूपी उषा है। इनका विरुद्ध स्वभाव है, एक का शनैः शनैः सृष्टि उत्पत्ति करना, दूसरे का शनैः शनैः ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार सृष्टि-लय करना है। अपने क्रम को भंग नहीं करतीं। यदि प्रलय न हो तो आगामी सृष्टि की उत्पत्ति कैसे संभव होगी? अतः दोनों का लक्ष्य एक ही है, सृष्टि चक्र को अबाध गति से चलाना। इस प्रकार दोनों विरूप होते हुए भी समान चित्त वाली एवं सुसंगत हैं। अपने-अपने कार्य को पूर्ण करती हैं, जो देवनिर्दिष्ट है। सूक्त के 11वें मन्त्र में ऋषि ने उषाओं के विषय में जो रहस्यमयी बातें की है। अब उन पर विचार किया जाता है। मन्त्र है-(क्र०227)।

इयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः।
अस्माभिरु नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान्।।

भाषार्थ-ये मर्त्यासः जिन मरणधर्माओं ने (**वि उच्छन्तीम्=उत् शन्तीम् √शम्=उपशमे**) विविध प्रकार प्रकाश देने वाली, आध्यात्मिक शान्ति देने वाली **पूर्वतराम् उषसं** प्राचीन उषा को **अपश्यन्** देखा है, ते उन्हें **अस्माभिः प्रतिचक्ष्या** हमारे द्वारा देखे गये (निश्चयात्मकज्ञान) तक **उ नु** अवश्य ही (**इयुः** √इ, विधि लिङ्) पहुँचना चाहिए। ये जो (**अपरीषु** = भविष्यत् वै०व्या०, पृ० 280) भविष्य में आने वाली उषाओं में (**अभूत्**, भू=होना की लुङ् धातु) हो गयी उषा को (**पश्यान्**, √पश् लेट्) देखेंगे ते वे **आ उ यन्ति** निश्चय ही (शान्ति को) प्राप्त होते हैं।

मन्त्र अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण है। सूर्य से होने वाली उषाएँ नवीन या प्राचीन भेद रहित हैं, सभी एक-सी होती हैं। यहाँ ऋषि सृष्टि प्रलय के शाश्वत चक्र में अवस्थित हुई, शाश्वत चक्र में जुड़ी हुई उषाओं, सृष्टियों की बात कर रहा है, सूर्य प्रदत्त उषा की नहीं। वह कह रहा है कि जो मरणधर्मा, जो संक्षिप्त जीवन धारण करने वाले, पानी के बुलबुले की तरह अल्पजीवी होकर भी सृष्टि प्रलय के शाश्वत चक्र में पूर्व में हुई विगत उषाओं को (सृष्टियों को) देखते हैं, वे दर्शन के रहस्यों को समझते हैं जिन्हें हम द्रष्टाओं ने देखा है कि यही सृष्टि प्रथम और अन्तिम नहीं है। जो यह जानते हैं कि इस सृष्टि के लय होने पर पुनः सृष्टि होगी वे शाश्वत मूल्यों को जानते हैं तथा शाश्वत सुख की प्राप्ति हेतु यत्नशील रहते हैं। उन्हें अवश्य यह शाश्वत, सनातन ज्ञान प्राप्त हुआ होगा जो वैदिक द्रष्टाओं को अभिप्रेत है।

मन्त्र के दूसरे भाग में पूर्व कथन को भविष्य में होने वाली उषाओं (सृष्टियों) के संदर्भ से दुहराया है कि जिन मरणधर्माओं को यह निश्चयात्मक ज्ञान है कि यह वर्तमान चल रही सृष्टि भविष्य में आने वाली सृष्टियों के क्रम में है (सृष्टि-प्रलय शाश्वत चक्र में विवर्तन कर रहे हैं, परिक्रमा कर रहे हैं) वे ही वर्तमान सृष्टि में शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति में यत्नशील हो शांति को प्राप्त होंगे।

विज्ञान के परमाणु की आयु के निर्धारण के आधार पर यह आज स्वीकार किया है कि करोड़ों वर्ष पूर्व अव्यवस्थित मूल भौतिक तत्त्व से शनैः शनैः जगत् उद्भूत हुआ किन्तु आज भी वैज्ञानिक विश्वासपूर्ण शब्दों में यह नहीं कह सकते कि इस सृष्टि के लय होने पर भविष्य में भी पुनः सृष्टि होगी। विज्ञान में अभी भी यथास्थितिवाद वाला मत विद्यमान है तब वैदिक द्रष्टाओं ने किस आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं का निश्चयात्मक ज्ञान देने की उद्घोषणा की थी तथा सृष्टि-प्रलय के अनादि अनन्त काल-चक्र की परिकल्पना प्रस्तुत की थी वह आज भी विचारकों के लिये एक पहेली है। पूर्व परिच्छेदों में जिस दर्शन का दिग्दर्शन किया गया है वह काल्पनिक नहीं, वास्तविक है। ऋषि ने स्वयं 13वें मन्त्र में उषा रहस्य का उद्घाटन किया है। मन्त्र-(क्र० 228)

शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी,
अथो व्युच्छदुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः।

भाषार्थ–देवी उषा ईश्वरीय कृति सृष्टिकाल रूपी प्रभात बेला पुरा अतीत से ही (**शश्वत्**=स्थायी, नैरन्तर्येण होने वाला, वै०व्या०, पृ० 684) अनादि चक्र में (**वि-उवास**, वि उपसर्ग=श्रेष्ठ, अद्भुत, **वस्**=चमकना की लिट् ल०, पृ० 554) श्रेष्ठ, अद्भुत रूप से प्रकाशित करती आयी है। **अथो** अतः **अद्य** वर्तमान में **मघोनी** ऐश्वर्यशालिनी **इदं** यहाँ **वि आवः** श्रेष्ठ प्रकार से रक्षा कर रही है। **अजरा** जरा रहित, नित्य **अमृता** अक्षय, अविनाशी **स्वधाभिः** स्व-धारणावती शक्तियों से, अपने अस्तित्व के लिये बाह्य कारण पर जो निर्भर न हो, स्वयंभू शक्तियों से **अनु चरति** शनैः शनैः चल रही है, अपना कार्यकाल पूरा कर रही है **अथो** अपितु **उत्तरान् द्यून** आगामी सृष्टिकाल को भी वि उच्छात् श्रेष्ठ ढंग से प्रकाशित करेगी।

मन्त्र में 4 दार्शनिक संकेत शश्वत्, अजर, अमृत तथा स्वधावान् हैं। ऋचा में अमृत, अजर और शश्वत् विशेषण सूर्य उषा के लिए प्रयुक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। सूर्य उषा स्वयंभू नहीं है अपने अस्तित्व के लिये सूर्य पर, पृथ्वी के अपने कील पर घूमने पर आश्रित है। मन्त्र में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि उषाकाल

समाप्त नहीं हुआ है वरन् धीरे-धीरे खिसक रहा है। यह लक्षण सूर्य उषा पर घटित नहीं होता। अस्तु जैसा कहा जा चुका है उषा सृष्टिकाल के लिये प्रयुक्त हुआ है, जो अनादि-अनन्त काल-चक्र में पुनः पुनः उद्भूत होने से अमृत है, अविनाशी है, प्रवाह से शाश्वत है। कर्त्ता ईश्वर तथा द्राव्यिक कारण अदिति (प्रकृति) इन दो स्वयंभू सत्ताओं का सम्मिलित गुण होने से सृष्टि-प्रलय चक्र स्वयंभू एवं अनादि-अनन्त है उसी की चर्चा सूक्त का विषय है। शाश्वत अजर, अमृत, स्वधावान् ये दर्शन (मेटाफिजिक्स) के मूल्य हैं, चरम तत्त्व के लक्षण हैं जो निष्प्रयोजन प्रयुक्त नहीं हुए।

सृष्टि-प्रलय शाश्वत एवं स्वधावान् क्यों हैं इस विषय पर ऋग्वेद मण्डल 3, सूक्त 55 में विशद विवेचन है। सूक्त का ऋषि प्रजापति वैश्वामित्रः वा वाच्यः है। सूक्त का 6वां मन्त्र एक रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है उस पर यहाँ विचार किया जाता है, यथा-(क्र 229)

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्सः एकः,
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकं।

भाषार्थ-परस्तात् सृष्टिकाल के परे, पूर्व **शयुः** व्यापक होकर कारण रूप से सोने वाला **अध** अनन्तर **नु** निश्चय ही **द्विमाता** दो माताओं-सृष्टि, प्रलय का **एकः वत्सः** एक ही पुत्र-यह भौतिक कार्य जगत् **अबन्धनः** अप्रतिबंधित, निर्द्वन्द्व होकर **मित्रस्य वरुणस्य ता व्रतानि** मित्र वरुण के अनेक नियमों में चरति विचरण करता है देवानां प्राकृतिक दिव्य शक्तियों का महत् असुरत्वं महान् प्राण रूप धारक बल एकं एक ही केन्द्रिय व्यवस्था में है।

यहाँ अबन्धन शब्द का प्रयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सृष्टि और प्रलय प्राकृतिक नियमों पर आधारित हैं। ये ऋतानुसार प्राकृतिक बहाव के अनुसार होते हैं। मूल प्रकृति से, मूल तत्त्वों से विकास की क्रिया कालान्तर में सृष्टि के रूप में प्रस्फुटित होती है। तथा लय भी शनैः शनैः विपरीत क्रम में होता है। यह समस्त प्रक्रिया प्रकृति की, मूल तत्त्वों की स्वयंभू, अप्रतिबंधित स्व-शक्ति पर अर्थात् प्रकृति के गुणों पर आधारित है। ईश्वर ने अपनी सर्वज्ञता से इस अप्रतिबंधित शक्ति को एक केन्द्रिय व्यवस्था में पिरो दिया है, अतः यह भौतिक कार्य जगत् इन दो धुरियों, इन दो छोरों-सृष्टि-प्रलय, रचना-लय के बीच में गमन करता है, घड़ी के पेन्डुलम की तरह दो छोरों के बीच अप्रतिबंधित गति करता है। (घड़ी के पेन्डुलम के सिम्पल हारमोनिक मोशन की तरह)।

वैदिक सिद्धांत धार्मिक सिद्धांतों से विलक्षण हैं। वेद का ईश्वर सर्व शक्तिमान नहीं है, जिस अर्थ में धार्मिक सिद्धांतों का ईश्वर है। वेद के ईश्वर की शक्ति प्रकृति की स्वयंभू शक्ति से प्रतिबंधित है। ईश्वर केवल ऋतानुसार, स्वयंभू प्रकृति के गुण, स्वभावानुसार ही सृष्टि रचना एवं प्रलय कर सकता है।

इसी सूक्त के प्रथम मन्त्र में यह बताया गया है कि प्राकृतिक नियम किस प्रकार उद्भूत होते हैं, मन्त्र है-(क्र० 230)

उषसः पूर्वाः अध यद् व्यूषुर्महद्विजज्ञे अक्षरं पदे गोः।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन् महद्देवानामसुरत्वमेकं।।

भाषार्थ-(गोः, गौः इति पृथिव्याः, आदित्यः, अपि गौः, निरुक्त अ० 2, पाद 2, अतः सामान्यतः गौः=लोक) लोकों की **पदे** उत्पत्ति के प्रथम चरण में, मूल में **महत् अक्षरं** महान् अविनाशी शक्ति **विजज्ञे** प्रकट हुई थी।

पूर्वाः उषसः विगत सृष्टि कालों की भाँति **अध** तब **यत्** जो वि-ऊषु उषाकाल सर्गारम्भ हुआ **नु** निश्चय ही **देवानाम् व्रता** समस्त महाभूतों, ज्योतिपिण्डों के प्राकृतिक नियमों ने (**उपसर्ग उप**=समीपता) **प्रकृति** (मूल तत्त्वों) के गुणों की सन्निकटता से **प्र** प्रकर्षता से **भूषन्** सुशोभित करते हुए **देवानां** प्राकृतिक दिव्य शाक्तियों, लोकों की **महत् असुरत्वं** महान् शक्ति को **एकं** बाँधने वाली एक केन्द्रिय व्यवस्था में किया।

मन्त्र में यह कहा गया है कि लोकों की, सृष्टि की उत्पत्ति के मूल में, आदि कारण रूप शाश्वत मूल तत्त्वों की अविनाशी, आधारभूत महान् शक्ति प्रकट होती है। इसी शक्ति की वृद्धि और विकास के समस्त भौतिक प्राकृतिक नियम अस्तित्व में आते हैं। प्रत्येक उषाकाल-सर्गारम्भ में, सृष्टि आरम्भ काल में लगभग एक-सी ही प्रक्रिया एक केन्द्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत होती है।

ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 62 का ऋषि नोधा गौतम है वा देवता इन्द्र है। सूक्त के 10वें मन्त्र में सृष्टिकाल-प्रलयकाल को ईश्वर की दो अमर धर्म वाली पत्नी के रूपक से व्यक्त किया गया है, मन्त्र है-(क्र० 231)

सनात् सनीला अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्त्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारः अह्रयाणम्।।

भाषार्थ-**सनीडाः** एक स्थान में रहने वाली, **अवाता** न प्रवाहित होने वाली अर्थात् प्रवाह से स्थिर **अमृताः पत्नीः** सनातन पत्नियाँ **अवनीः** धरती की तरह

विशाल, **जनयः न** पुरुष जैसे स्त्रियों की रक्षा करते हैं वैसे **सहोभिः** बलों से **सनात्** सदा ही, सनातन काल से **पुरु सहस्रा वृता रक्षन्ते** अनेक (प्राकृतिक) नियमों की रक्षा करती हैं। **स्वसारः** वे बहनें (**अह्रयाणम्**, ह्री=लज्जित होना के शानजन्त ह्रयाण से पृ० 580) साहसी (इन्द्र) की **दुवस्यन्ति** सेवा करती है।

सृष्टि रूपी उषाकाल तथा प्रलयावस्था रूपी रात्रिकाल ये दोनों (इन्द्र) ईश्वर की सनातन पत्नी हैं, सूर्य की नहीं अर्थात् शाश्वत ईश्वर द्वारा सृष्टि-प्रलय अबाध क्रम रूपी शाश्वत (दिन रात की तरह बार-बार आने के कारण बहुवचन का प्रयोग हुआ है।) चक्र नियंत्रित है। यह शाश्वत चक्र सहस्रों नियमों, प्रकृति के शाश्वत गुणों और मूल्यों पर आधारित है। जिस प्रकार पत्नी का पति के आश्रयभूत स्वतंत्र अस्तित्व होता है वैसे ही इन सनातन पत्नियों का ईश्वरीय छत्रछाया में स्वतंत्र अस्तित्व है और ईश्वर उन पत्नियों का रक्षक है।

इसी सूक्त के 8वें मन्त्र पर विचार किया जाता है, मन्त्र है (क्र 232)-

सनात् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः।
कृष्णेभिरक्तोषा रुषद्भिर्वपुर्भिराचरतो अन्यान्या।।

भाषार्थ-विरूपे पुनर्भुवा विपरीत रूप वाली, बार-बार उत्पन्न होने वाली **युवती** सदा युवा रहने वाली, **नित्य स्वेभिः एवैः** अपनी स्वशक्तियों के द्वारा ही (**सनात्**, सना=पुरातन से, अनादि, पृ० 345, चिरकाल, पृ० 280 वै०व्या०) अनादि काल से **दिवं** द्युलोक से **भूमा** पृथ्वी तक की **परि** परिक्रमा कर रही हैं। **अक्ता कृष्णेभिः** रात्रि काली देहों के द्वारा **उषा** सृष्टिकाल **रुषद्भिः** चमकीली **वपुभिः** देहों से **अन्या अन्या आ चरतः** एक दूसरे के पीछे स्वभाव से चलती है।

मन्त्र में उषा और रात्रि को एक अनन्त काल चक्र में एक दूसरे के पीछे घूमने वाला निरूपित किया गया है। विदित है कि रात्रि के अनन्तर उषाकाल आता है किन्तु सामान्य सूर्य उषाकाल के अनन्तर रात्रि नहीं आती। अतः मन्त्र आख्यात रात्रि-उषा, प्रलयकाल व सृष्टिकाल के द्योतक हैं। दूसरा तथ्य यह है कि सूर्य उषाकाल व रात्रि (स्वेभिः) स्वशक्तियों से उदय अस्त नहीं होते, पृथ्वी के भ्रमण पर आधारित हैं। अतः मन्त्र में सृष्टि, प्रलयकाल ही अभिप्रेत हैं। इस सूक्त के 7, 9, 11, 12 व 13वें मन्त्र में सनातन शब्द प्रयुक्त हुआ है जो निरुद्देश्य नहीं है। 13वें मन्त्र में यह पद आता है-

'सनातये ब्रह्म अतक्षत्'।

शाश्वत मूल्यों के लिये वेद मन्त्र रचा गया है।

स्थल 2 पर ऋग्वेद में शाश्वत मूल्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 5 का 4 था मन्त्र कहता है-(क्र० 233)

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्द्धयन्ती,
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः।

भाषार्थ-**ऋतायिनी** ऋत=सत्य प्राकृतिक नियमों को धारण करने वाली सृष्टि तथा **मायिनी** विनाशकारी प्रलय रात्रि दोनों **सं दधाते** सम्यक् रूप से धारण करती हैं। उन दोनों ने **शिशुं** बालक को (**मित्वा**, मा=मापना धातु का क्त्वान्त, पृ० 537) युक्त परिमाण से **वर्द्धयन्ती** बढ़ाते हुए **जज्ञतुः** प्रकट किया। **विश्वस्य** समस्त (**चरतः**) परिवर्तनशील व (**ध्रुवस्य**) शाश्वत के (**नाभिं चित् तन्तुं**) बाँधने वाले कुछ धागों को, कुछ सूत्रों को (**वियन्तः**) विशेषता से आगे ले जाने वाले हुए।

तो बात विश्व की नाभि की है, जगत के मूल कारण की है, शाश्वत तत्त्वों की है, ध्रुव मूल्यों की है, यहाँ कोई घटिया किस्म की चर्चा नहीं है, सूर्य उषा की चर्चा नहीं है, यहाँ सृष्टि-उत्पत्ति-प्रलय के सूत्रों को परिकल्पना में पिरोया जा रहा है। जगत के मूल में शाश्वत कारण क्या है और परिवर्तनशील द्रव्य का उद्भव कैसे हुआ इन दोनों के बीच तत्त्वदर्शियों ने विवेक किया है।

ऋग्वेद मण्डल 7 के सूक्त 76 का ऋषि वसिष्ठ है और देवता उषा है। सूक्त के 3 रे मन्त्र में ईश्वरीय (रचनात्मक) शक्ति रूपी वेद प्रतिपादित प्रतीक उषा और सूर्य से उत्पन्न उषा में स्पष्ट रूप से भेद का निरूपण किया है। मन्त्र है-(क्र० 234)

तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य,
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव।

भाष्य-तानि उन उषाओं के, उन सृष्टि कालों के (या बहुव०, नपु०लि० वै०व्या०) वे **इत्** ही **बहुलानि** बहुत से **अहानि** दिन **सूर्यस्य** सूर्य के **उदिता** उदय के, जन्म के **प्राचीनं** बहुत पूर्व काल के, **आसन्** हुए थे। अनेक सृष्टियों में होने वाले रचना काल को निहित करने के तात्पर्य से बहुवचन "तानि" का प्रयोग है।

पार्थिव उषाकाल की अवधि सूर्योदय पूर्व अति संक्षिप्त होती है। तथा उषाकाल सूर्योदय से अभिन्न रूप से संयुक्त है, सूर्योदय के अभाव में अर्थात् सूर्य के अभाव में उषाकाल का होना असम्भव है किन्तु मन्त्र में जिस उषा की बात है वह सूर्य के अभाव में अति प्राचीन काल से विद्यमान थी, वह सूर्य से किञ्चित मात्र भी संबद्ध नहीं थी। ध्यान रहे मन्त्र में आया पद **"उदिता प्राचीनं"** है, **"उदिता पूर्वम्"** नहीं है, यह

उषाकाल सूर्योदय के पर्याप्त अवधि पूर्व बहुत दिनों तक वर्तमान रहा तब जाकर सूर्योदय हुआ। उषा के दिनों की बात भी एक पहेली है। उषाकाल का बहुत दिनों तक वर्तमान रहना सूर्य उषा पर घटित नहीं होता।

मान लो उषा के 10 वर्ष व्यतीत हो जाने पर सूर्योदय हुआ तो क्या सूर्योदय 10 वर्ष तक स्थगित रहा? अतः यहाँ बात सूर्य उत्पत्ति की हो रही है। उषाकाल सृष्टिकाल का बोधक है। मन्त्र में '**तानि**' बहुवचन है अर्थात् अनेक उषाएँ हो चुकी हैं, अनेक सृष्टिकाल बीत चुके हैं। उसके अनन्तर ही यह वर्तमान सृष्टिकाल प्रादुर्भूत हुआ है। तथा इस सृष्टिकाल का पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर सूर्य की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार मन्त्रोक्त उषाकाल सृष्टिकाल का ही द्योतक है। मन्त्र रचना में यह अभिप्रेत है कि उषा के बहुत से दिन सूर्य उत्पत्ति के अनन्तर भी हो गये हैं अर्थात् पर्याप्त सृष्टिकाल व्यतीत हो चुका है।

यतः क्योंकि **जारः** पति परमेश्वर **इव** की तरह **आचरन्ती** आचरण करती हुई **उषः** उषा **पुनः** फिर कभी **यती** संन्यासिनी, पति को त्यागने वाली **इव** की तरह **न ददृक्षे** नहीं दिखाई दी।

पूर्व मन्त्रों में यह बताया जा चुका है कि उषा और प्रलय रात्रि ईश्वर की दो सनातन पत्नियाँ हैं। ये पति के नियमों के, परम्परा के अनुरूप वर्तती हैं अर्थात् वे ईश्वरीय शाश्वत नियमों में बँधी हैं। उनका परित्याग नहीं कर सकती।

वस्तुतः में ईश्वरीय दो शक्तियों सर्जनात्मक शक्ति को उषा और विघटनात्मक शक्ति, विसर्जनात्मक शक्ति को रात्रि की संज्ञाओं से विभूषित किया गया है। ईश्वर के दो बाहु हैं, एक बाहु मूल कारण को जगत् के रूप में निर्माण करने वाला सर्जनात्मक शक्ति रूप है और दूसरा रचे हुए जगत् को मूल कारण में पुनः परिवर्तित करने वाला प्रलय रूप है। यह तथ्य ऋग्वेद 4/53/3 में निहित पाया जाता है, मन्त्र है–(क्र. 235)

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्म्मणे।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत्।।

भाषार्थ–सविता जगत् उत्पादक ईश्वर ने (**सवीमनि**, प्रेरित होने पर, निरु० 6/7) प्रेरित होने पर **बाहू** दो शक्तियाँ (**प्र-अस्राक्**, धातु सृज् = बाहर निकालना, लुङ् धातु स् रूप प्र०पु० एक व० पृ० 214) विशिष्टता से बाहर निकाली **अक्तुभिः** प्रलय रात्रियों के द्वारा जगत् को **निवेशयन्** मूल कारण में छुपाता हुआ तथा दिन

काल में (**दिव्यानि रजांसि, लोका: रजांसि उच्यन्ते**–निरुक्त 4/19) दिव्य लोकों व **पार्थिवा** जीव प्रजा के आश्रय योग्य पृथ्वीवत् लोकों को **प्र-सुवन्** विविध रूप में उत्पन्न करता हुआ उनमें (आ अप्रा:√प्रा लुङ् स्) व्याप्त हुआ है। **स्वाय धर्म्मणे** अपनी धर्म व्यवस्था को प्रकट करने के लिये **देव:** परमात्मक देव **श्लोकं** वेदवाणी को **कृणुते** रचता है।

लगभग इसी बात को गीता ने अपने श्लोक (18/18) में व्यक्त किया है–

अव्यक्ताद् व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।।

अव्यक्त, सूक्ष्म, मूल तत्त्व से सब जगत् व्यक्त दशा में हुआ है। दिन के आगमन पर प्रगट होता है तथा रात्रि के आगमन पर तत्र एव उसी पूर्व अव्यक्त अवस्था में प्रवेश करता है। पदार्थ का नाश नहीं होता। यह अव्यक्त से व्यक्त और व्यक्त स्थूल अवस्था से पुन: उसी पूर्व अव्यक्त सूक्ष्म मूलभूत रूप में जाता है। इन दो अवस्थाओं के बीच परिभ्रमण करता है। यह वैदिक विचारधारा का प्रसार है।

ऐतरेय ब्राह्मण की आख्यायिका में उषा का स्वरूप

ऐतरेय ब्राह्मण का एक आख्यान (पञ्चिका 1/अ०2/खं०1); उषा के वास्तविक स्वरूप के विषय में प्रकाश डालता है।

यज्ञ देवों के पास से चला गया। वे देव न कुछ कर सके, न ही कुछ जान सके। उन्होंने अदिति से प्रार्थना की कि तुम्हारे प्रसाद से हम यज्ञ को जानने में समर्थ होवें। उसने कहा–अच्छा, किन्तु मैं तुम लोगों से एक वर का वरण करती हूँ। उसने यह वर माँगा कि यज्ञ मुझसे ही प्रारम्भ हो तथा मुझ पर ही समाप्त हो। उन्होंने कहा–ऐसा ही होगा। उसने यह वर भी माँगा कि मेरे ही द्वारा तुम सब प्राची दिशा को जानो।

इस कथा का तात्पर्य यह है कि अदिति मूल शक्ति है, सृष्टि यज्ञ अदिति से आरम्भ होता है, अदिति से सभी भौतिक शक्तियाँ (देव) उद्‌भूत होती हैं, प्रलयकाल में अदिति में ही लीन होती हैं। देव अपनी सत्ता के लिये अदिति पर आश्रित हैं। प्राची दिशा का महत्त्व क्या है। इस विषय पर आगामी सूत्र में प्रकाश डाला गया है।

पूर्व दिशा में अवस्थित पथ्या देवता का यजन होता है। इसलिये यह आदित्य पूर्व दिशा में उदित होता है। यह पथ्या देवता कौन है? इस विषय पर भाष्यकार भट्ट भास्कर (ऐतरेय ब्रा० भाष्य से उद्‌धृत) कहते हैं–(क्र 31)

अदितेरेव खल्ववस्थान्तरम् उषोलक्षणं पथ्या स्वस्तिरुच्यते। पथि साध्वी पथ्या शोभनविभूति हेतुः प्रजानां स्वस्तियत्र चोषा उदेति सा प्राची भवति।

इसका तात्पर्य यह है कि उषा लक्षण वाली सभी अवस्थाओं में अवस्थान्तरित होने वाली मूल शक्ति अदिति को ही 'पथ्या स्वस्ति' कहा जाता है।

पथ की रक्षा करने वाली पतिव्रत पारायणी होने से साध्वी है। क्रमांक 7 के मन्त्र में उषा को ईश्वर की सनातन पत्नी कहा गया है जो पति ईश्वर के **व्रता रक्षन्ते अमृता सहोभिः** व्रत की पारायण है ईश्वर के निर्देशानुसार प्रलय के अनन्तर सृष्टि उद्भव करती हुई सनातन काल चक्र में परिभ्रमण कर रही है। सृष्टिकाल के उदय का सूर्य उदय से साम्य के आधार पर उषा देवता के लिये प्राची दिशा निर्धारित की गयी है। यज्ञ में किया जाने वाला यह यजन अदिति (या उषा) से सर्गारंभ होने का द्योतक है। सोमयाग में किया जाने वाला कर्मकाण्ड सृष्टि उत्पत्ति विषयक परिकल्पना की प्रकारान्तर से पुनरुक्ति है।

इस प्रकार सृष्टिकाल रूपी उषा अनादि-अनन्त काल-चक्र में अवस्थित होने के कारण अदिति है, अखंड है, अभेद्य है। अदिति मूल तत्त्व संघात (aggregate) है, मूल आद्या शक्ति है, उषा मूल शक्ति की कला है जो इस प्रकार तत्त्व से जानता है वह ऋग्वेद के रहस्य को जानता है।

डॉ० विष्णुकान्त वर्मा (1922-2005) मूलतः गणित के प्राध्यापक थे। उन्होंने राजकीय इन्जीनियरिंग कालेज बिलासपुर (छ० ग०) में गणित के आचार्य एवं अध्यक्ष के रूप में शैक्षिक जगत् को अपना योगदान दिया और वहीं कार्यकारी प्रिंसिपल के पद से सेवा निवृत्त हुए।

गणित के प्राध्यापक होते हुए भी डॉ० वर्मा की विशेष अभिरुचि प्राचीन भारतीय विद्या एवं वेदों के अध्ययन की रही। भारतीय दर्शन, पुरातत्त्व एवं गौरवशाली भारतीय अतीत के प्रख्यापन एवं स्थापना हेतु उनकी सशक्त लेखनी जीवन पर्यन्त क्रियाशील रही। परिणामतः उन्होंने गणित के अनेक शोधलेखों के साथ प्राचीन भारतीय इतिहास एवं वेद विषयक अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उनकी इसी विचारधारा को सम्पुष्ट करता है।

डॉ० वर्मा अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन, तथा इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस के सम्मेलनों में नियमित रूप से अपने सशक्त एवं विचारोत्तेजक शोध पत्रों के द्वारा विद्वानों को प्रायः आकृष्ट करते थे।

ISBN : 81-7702-154-0 (सेट)